

MAPSY-104

सामाजिक एवम् सांस्कृतिक मनोविज्ञान  
Social and Cultural Psychology



उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय—हल्द्वानी 263139  
फोन नं : 05946—286001  
टोल फ्री नं. 18001804025  
ई—मेल [info@uou.ac.in](mailto:info@uou.ac.in), <http://uou.ac.in>

---

अध्ययन मण्डल

---

अध्यक्ष

कुलपति,  
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

संयोजक

निदेशक,  
शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा  
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

---

अध्ययन मण्डल के सदस्य

---

डॉ० आर.आर . सिंह (सदस्य)

असिस्टेंट प्रोफेसर  
शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा  
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

डॉ० स्मिता गुप्ता

मनोविज्ञान विभाग  
इमू

डॉ० ए०पी० सिंह (सदस्य)

एसोसिएट प्रोफेसर  
मनोविज्ञान विभाग  
राजकीय रजा पी जी कॉलेज, रामपुर

डॉ० संगीता सिंह

अकादमिक परामर्शदाता  
मनोविज्ञान विभाग  
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

---

पाठ्यक्रम समन्वयक

---

डॉ. सीता

मनोविज्ञान विभाग  
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

---

इकाई लेखन

इकाई संख्या

डॉ. के० के० अंगीरा, एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय रजा पी० जी० कॉलेज, रामपुर

1, 2, 3, 4, 5, 6

डॉ. ओ०पी० चौधरी, मनोविज्ञान विभाग, अग्रसेन कन्या पी० जी० कॉलेज, शाखा परमानंदपुर शिवपुर, वाराणसी

10,11,12,16,17,18

डॉ. रिक्तु मित्तल, मनोविज्ञान विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, हल्द्वानी

4,5,6,7,8,9, 13,14, 15

डॉ. रेखा जोशी, मनोविज्ञान विभाग, एम०बी०पी०जी० कॉलेज, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

13,14,15,16

डॉ. दीपा वर्मा, मनोविज्ञान विभाग, एम०बी०पी०जी० कॉलेज, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

17, 18, 19 एवम 20

---

पाठ्यक्रम संपादन

---

गरिमा बिष्ट,

अकादमिक परामर्शदाता  
मनोविज्ञान विभाग  
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय  
हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

---

प्रकाशन वर्ष : 2019 ISBN No.

---

इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

कॉपीराइट : @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक : सामग्री उत्पादन तथा वितरण निदेशालय,  
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139, नैनीताल

Mail : books@uou.ac.in

मुद्रक : डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर मुद्रित प्रतियाँ 200

---

### सामाजिक एवम् सांस्कृतिक मनोविज्ञान Social and Culrural Psychology

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
	<b>खण्ड 1: सामाजिक व्यवहार के नियम (Principles of Social Behavior)</b>	
1	सामाजिक व्यवहार का अवबोधन-अनुकरण, सुझाव एवं सहानुभूति (Understanding of Social Behavior- Imitation, Suggestion and Sympathy)	1- 19
2	सामाजिक मनोविज्ञान का स्वरूप, विषय-क्षेत्र एवं सार्थकता (Nature, Scope and Significance of Social Psychology)	20- 28
3	सामाजिक व्यवहार की अध्ययन विधियाँ- अवलोकन, सर्वेक्षण, व्यक्ति अध्ययन, समाजमिति एवं प्रयोगात्मक (Approaches of Social Behavior:- Observation, Survey, Case study, Sociometry and Experimental)	29- 51
	<b>खण्ड 2: अभिवृत्ति एवं उसका मापन (Attitude and its Measurement)</b>	
4	अभिवृत्ति का अर्थ, स्वरूप एवं अवयव (Meaning, Nature and Components of Attitude)	52- 64
5	अभिवृत्ति का विकास एवं उसका मापन (Development of attitude and its Measurement)	65- 79
6	अभिवृत्ति परिवर्तन के सिद्धान्त एवं कारक (Theories and Factors of Attitude Change)	80- 95
	<b>खण्ड 3: पूर्वाग्रह, विभेद एवं साम्प्रदायिकता (Prejudice, Discrimination and Communalism)</b>	
7	पूर्वाग्रह का अर्थ, विशेषताएँ एवं प्रकार (Meaning, Characteristics and Types of Prejudice)	96- 104
8	पूर्वाग्रह के कारण; पूर्वाग्रह, विभेद एवं रूढ़ियुक्ति में अंतर (Causes of Prejudice; Difference between Prejudice, Discrimination and Stereotype)	105- 113
9	पूर्वाग्रह दूर करने की विधियाँ, भारत में साम्प्रदायिकता (Methods of reducing prejudice, Communalism in India)	114- 122
	<b>खण्ड 4: समूह गतिकी (Group Dynamics)</b>	
10	समूह का अर्थ, प्रकार, संरचना एवं कार्य (Meaning, Types, Structure and Functions of Group)	123- 147
11	समूह प्रभावकता व समूह समग्रता:- आशय एवं निर्धारक तत्व (Group Effectiveness and	148- 162

	Group Cohesiveness:- Meaning and Determinates)	
12	सामाजिक सरलीकरण, जन-संकलन, सामाजिक श्रमावनयन, अवैयक्तिकरण (Social Facilitation, Crowding, Social Loafing, Deindividualization)	163- 178
	<b>खण्ड 5: संस्कृति एवं व्यक्तित्व (Culture and Personality)</b>	
13	संस्कृति का अर्थ, विशेषताएँ एवं प्रकार (Meaning, Characteristics and Types of Culture)	179- 192
14	संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध, व्यक्तित्व विकास पर संस्कृति का प्रभाव (Relationship between Culture and Personality, Effects of culture on Personality Development)	193- 207
15	राष्ट्रीय चरित्र:- अर्थ एवं सिद्धान्त (National Character:- Meaning and Theory)	208- 222
16	नेतृत्व का अर्थ, स्वरूप, उत्पत्ति एवं विशेषता; सत्तावादी एवं प्रजातांत्रिक नेतृत्व में अन्तर (Meaning, Nature, Origin and Traits of Leadership; Difference between Authoritarian and Democratic Leader)	223- 240
	<b>खण्ड 6: सामाजिक समस्याएँ (Social Problems)</b>	
17	सामाजिक समस्याओं का अर्थ, विशेषताएँ एवं प्रकार (Meaning, Characteristics and Types of Social Problems)	241- 250
18	निरक्षरता, गरीबी एवं बेरोजगारी (Illiteracy, Poverty and Unemployment)	251- 268
19	जनसंख्या विस्फोट, लैंगिक पक्षपात, आधुनिकीकरण एवं शहरीकरण (Population Explosion, Gender Biasness, Modernization and Urbanization)	269-285
20	सामाजिक शोषण, बाल-श्रम, सामाजिक एवं घरेलू हिंसा, कार्यस्थलीय शोषण, सामाजिक समस्याओं के विभिन्न समाधान (Social Exploitation, Child Labor, Social and Domestic Violence, Workplace Exploitation, Various solutions of Social Problems)	286-303

---

**इकाई-1 सामाजिक व्यवहार को समझना-अनुकरण, सुझाव, सहानुभूति**  
**(Understanding of Social Behavior- Imitation, Suggestion and Sympathy)**

---

**इकाई संरचना**

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 अनुकरण
  - 1.3.1 सामाजिक व्यवहार के विकास में अनुकरण का महत्व
  - 1.3.2 अनुकरण के प्रकार
  - 1.3.3 अनुकरण के सिद्धान्त
  - 1.3.4 सामाजिक जीवन में अनुकरण का महत्व
- 1.4 सुझाव
  - 1.4.1 सुझाव का वर्गीकरण
  - 1.4.2 सुझाव को प्रभावकारी बनाने के लिए कुछ आवश्यक परिस्थितियां
  - 1.4.3 सामाजिक जीवन में सुझाव का महत्व
- 1.5 सहानुभूति
  - 1.5.1 सहानुभूति के प्रकार
  - 1.5.2 सहानुभूति उत्पन्न करने वाले कारक या परिस्थितियां
  - 1.5.3 सामाजिक जीवन में सहानुभूति का महत्व
- 1.6 सारांश
- 1.7 शब्दावली
- 1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

**1.1 प्रस्तावना**

व्यक्ति को सामाजिक प्राणी होने के कारण भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न तरह का सामाजिक व्यवहार करना पड़ता है इन सामाजिक व्यवहारों को समझने के लिए समाज मनोवैज्ञानिकों ने कुछ नियमों का प्रतिपादन

क्रिया है। इन नियमों के आधार पर ही सामाजिक अन्तःक्रिया होती है और हमारे सामाजिक व्यवहार का विकास होता है।

प्राणी के सामाजिक व्यवहार को समझने के लिए मैकडुगल ने चौदह विशिष्ट मूल प्रवृत्तियों के वर्णन के साथ-साथ कुछ सामान्य प्रवृत्तियों का वर्णन भी किया है। जिनमें अनुकरण, सुझाव और सहानुभूति भी है। जिन्हें छदम मूल प्रवृत्तियां कहा है। मैकडुगल के अनुसार छदम मूल प्रवृत्तियां बाह्य रूप से मूल प्रवृत्तियां न होते हुए भी मूल प्रवृत्तियां हैं जो जन्मजात न होकर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं हैं। व्यक्ति की क्रियाओं तथा मानसिक स्थितियों का दूसरे व्यक्ति की क्रियाओं और मानसिक स्थितियों के साथ समायोजन स्थापित होने के कारण यह तीनों सामाजिकरण की प्रक्रिया एक ही है। सामाजिक समायोजन का ज्ञानात्मक पक्ष सुझाव, भावात्मक पक्ष सहानुभूति तथा क्रियात्मक पक्ष अनुकरण हैं सुझाव, सहानुभूति तथा अनुकरण यह तीनों ही एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं। इन तीनों में से प्रत्येक की प्रक्रिया में दो या दो व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया अवश्य होती है। मैकडुगल (1919) के अनुसार प्राणी के सामाजिक व्यवहार को निम्न 3 मूल प्रवृत्तियों के आधार पर समझा जा सकता है:-

- 1- अनुकरण (Imitation)
- 2- सुझाव (Suggestion)
- 3- सहानुभूति (Sympathy)

इस अध्याय में हम इनके बारे में विस्तार से समझेंगे और यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि ये प्रक्रियाएं किस प्रकार हमारे सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करती हैं।

---

## 1.2 उद्देश्य

---

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- सामाजिक व्यवहार के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- अनुकरण तथा इसकी प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
- सुझाव के बारे में पढ़ने का अवसर प्राप्त करेंगे।
- सहानुभूति की महत्वपूर्ण प्रक्रिया के बारे में जानने का मौका मिलेगा।

### 1.3 अनुकरण

#### अनुकरण का अर्थ एवं स्वरूप:

अनुकरण की प्रक्रिया सभी प्राणियों, पशु, पक्षियों के दैनिक जीवन में पाई जाती है। बंदरो में अनुकरण की योग्यताओं से तो हम भली भांति परिचित होंगे ही। यह देखा जाता है कि पशु, पक्षी भी अपने बच्चों को अनुकरण के लिये प्रेरित करते हैं।

#### परिभाषाएँ :

समाज मनोविज्ञानिकों ने अनुकरण की निम्न परिभाषाएँ दी हैं:-

मैकडुगल के अनुसार:-

“एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के क्रियाकलाप और शरीर संचालन की नकल मात्र को अनुकरण कहते हैं।”

लिनटन के अनुसार:-

“अनुकरण से तात्पर्य दूसरों के व्यवहारों की नकल करने से है, चाहे नकल करने वाले व्यक्ति को उस व्यवहार की जानकारी प्रत्यक्ष निरीक्षण द्वारा या किसी दूसरे द्वारा सुनकर या अधिक प्रगतिशील समाज में पढ़कर मिली हो।”

इन विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें यह स्पष्ट होता है कि अनुकरण की प्रक्रिया में निम्न तीन विशेषताएं पाई जाती हैं:-

1. अनुकरण करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार या शारीरिक क्रियाओं का होना अनिवार्य है।
2. व्यवहार या शारीरिक क्रियाएं ऐसी हो जिसे अनुकरण करने वाला व्यक्ति अधिक महत्व देता हो अगर व्यक्ति के लिए वह व्यवहार या शारीरिक क्रिया अधिक महत्वपूर्ण नहीं होगी तो व्यक्ति उसका अनुकरण नहीं करेगा।
3. व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों का अनुकरण चेतन तथा अचेतन दोनों ढंगों से करता है। जब अनुकरण चेतन ढंग से या जानबूझकर किया जाता है तो उसे नकल कहा जाता है और जब अनुकरण अनजाने में या अचेतन ढंग से किया जाता है तो उसे समेल निर्भरता कहा जाता है। इस प्रकार समाज मनोवैज्ञानिकों ने अनुकरण की प्रक्रिया को चेतन तथा अचेतन स्तर पर होने वाली प्रक्रिया माना है।

#### 1.3.1 सामाजिक व्यवहार के विकास में अनुकरण का महत्व (Importance of

#### Imitation in development of Social Behaviour)-

अनुकरण की प्रक्रिया सामाजिक और नैतिक व्यवहार के विकास में बहुत महत्वपूर्ण है। हम व्यवहार के आदर्श प्रतिमान, रीतिरिवाज और नैतिकता को अपने बुजुर्गों से सीखते हैं इस प्रकार हम अपनी भाषा, संस्कृति और

सभ्यता को भी अनुकरण के माध्यम से सीख पाते हैं। यदि यह अनुकरण की प्रक्रिया न होती तो आज हमारे लिए अपने वर्तमान स्थिति तक पहुंच पाना कठिन हो जाता। हम अपने जीवन की महत्वपूर्ण योग्यताएं तथा कलाएं जैसे साइकिल चलाना, घुड़सवारी करना, तैरना तथा कुशल वक्ता बनना आदि भी इसी अनुकरण से ही सीख पाते हैं। हमें अनुकरण के माध्यम से ही अपने पहनावे जैसे किसी चलचित्र में नायक-नायिका के पहनावे से फैशन को हजारों व्यक्ति अनुकरण करते हैं।

जेम्स ने सामाजिक जीवन में अनुकरण के महत्व के बारे में कहा है “मानव प्रगति अविष्कार तथा अनुकरण की टांगों की सहायता से पूर्ण रूप से चलती रहती है।” (The human race has all along been walking with the help of two legs of invention and Imitation).

इस प्रकार ड्रेबर तथा मैकडूगल ने अनुकरण को सीखने का आधार माना है। यद्यपि अनुकरण का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनुकरण का महत्व अलग-अलग होता है। एक व्यक्ति के लिए एक अनुकरण महत्वपूर्ण हो सकता है जबकि वैसा ही अनुकरण दूसरे व्यक्ति के लिए भी महत्वपूर्ण हो ऐसा आवश्यक नहीं है तथापि सामाजिक व्यवहार को सीखने तथा समझने के लिए अनुकरण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

### 1.3.2 अनुकरण के प्रकार-

- मैकडूगल ने अनुकरण के पांच प्रकार बतलाये हैं जिसमें प्रथम तीन को मुख्य अनुकरण तथा अन्तिम दो को गौण अनुकरण कहा है:-

A. मुख्य अनुकरण (Main Imitation) - मुख्य अनुकरण निम्न प्रकार के होते हैं -

1. सहानुभूतिपूर्ण अनुकरण (Sympathetic Imitation)- इस तरह के अनुकरण में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों का अनुकरण सहानुभूति की भावना से प्रेरित होकर अचेतन रूप से करता है। प्रायः यह देखा गया है कि एक बच्चा दूसरे बच्चे को रोते देखकर स्वयं भी रोने लगता है तथा एक बच्चा अपने मां या पिता को रोते देखकर सहानुभूतिवश स्वयं भी रोने लगता है। ये सभी अनुकरण सहानुभूतिपूर्ण अनुकरण के उदाहरण हैं। सहानुभूति पूर्ण अनुकरण बच्चों और स्त्रियों में ज्यादा देखने को मिलता है।
2. विचार चालक अनुकरण (Ido-Motor Imitation)- यह बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सामान्य अनुकरण है। जब कोई व्यक्ति अपनी क्रियाओं द्वारा दूसरों के मस्तिष्क में इस प्रकार का विचार उत्पन्न कर देता है कि वह व्यक्ति भी उसी प्रकार की क्रियाएं करना आरम्भ कर देता है तो इसे विचार चालक अनुकरण की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण, जब स्टेज पर किसी नर्तकी को झूम-झूमकर नाचते देखकर दर्शक भी अपने हाथ-पैर तथा सिर को नृत्य भंगिमा में हिलाना प्रारम्भ कर देते हैं तो इसे हम विचार चालक अनुकरण की संज्ञा देते हैं।



3. ऐच्छिक अनुकरण (Deliberate Imitation)- इस अनुकरण में एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को आदर्श मानकर ऐच्छिक रूप से उनका अनुकरण करता है। ऐसा देखा गया है कि बहुत से युवक या युवतियां अपने मनपसंद फिल्मी कलाकारों के व्यवहारों, मुद्राओं एवं उनके भिन्न-भिन्न तरह की शैलियों को आदर्श मानकर स्वयं वैसा ही व्यवहार या मुद्रा या शैली अपना लेते हैं। ये सभी आत्मसचेत अनुकरण के उदाहरण हैं।

**B. गौण अनुकरण (Secondary Imitation):-** इसके निम्नलिखित प्रकार होते हैं -

1) विचार चालक सचेत अनुकरण- मैकडुगल के अनुसार यह एक प्रकार का गौण अनुकरण है जिसमें ऊपर वर्णन किये गये अन्तिम दोनों अनुकरण यानी विचार चालक अनुकरण तथा ऐच्छिक अनुकरण का मिश्रण देखने को मिलता है। जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करता है तो उसके मस्तिष्क पर उस क्रिया की एक गहरी छाप पड़ती है। इस प्रकार का अनुकरण प्रायः बच्चों और कम तर्क योग्यताओं वाले युवकों में मिलता है।

2) अनुपयोगी अनुकरण- इस तरह का अनुकरण बिना सोच-समझे किया जाता है ऐसे अनुकरण द्वारा व्यक्ति में न तो किसी तरह का संवेग और न ही किसी तरह के भाव की ही अभिव्यक्ति होती है। यह अनुकरण हमें मूर्खों और युद्ध बंदियों में देखने को मिल सकता है।

• गिन्सवर्ग ने अनुकरण को तीन भागों में बांटा है:-

1. जैविक अनुकरण- जैविक समानता के कारण कुछ जीवों में दूसरे के व्यवहारों का अनुकरण अचेतन रूप से मूलप्रवृत्त्यात्मक स्तर पर होता है। उदाहरण, पक्षियों में उड़ने की मूलप्रवृत्ति है और इसके लिए जैविक समानता जैसे - पंख, डैना आदि भी उनमें होते हैं। इस मूलप्रवृत्ति एवं जैविक समानता के कारण ही एक पक्षी के लिए दूसरे पक्षी को उड़ता देखकर इस क्रिया की नकल करना संभव हो पाता है।

2. विचार चालक अनुकरण- इस प्रकार के अनुकरण की चर्चा मैकडुगल द्वारा किये गये अनुकरण के प्रकार के अन्तर्गत समानता लिए होने के कारण की जा चुकी है।

3. विवेकी या उद्देश्यपूर्ण अनुकरण- जब व्यक्ति किसी उद्देश्य को लेकर एवं सोच समझकर किसी दूसरे के व्यवहार का अनुकरण करता है तो इसे विवेकी या उद्देश्यपूर्ण अनुकरण कहा जाता है। इस तरह का अनुकरण मैकडुगल द्वारा बताये गये आत्म-सचेत अनुकरण के ही समान है। इसके एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है। मेडिकल कालेज में एक विद्यार्थी सफल डाक्टर बनने के उद्देश्य से बड़े डाक्टरों के (जो उनके शिक्षक भी होते हैं) व्यवहारों का अनुकरण करता है। इस तरह का अनुकरण विवेकी या उद्देश्यपूर्ण अनुकरण का उदाहरण है।

• जेम्स ड्रेवर के अनुसार अनुकरण को चार भागों में बांटा गया है:-

1. अचेतन अनुकरण- अचेतन अनुकरण, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, ऐसे अनुकरण को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति जान बूझकर नहीं, बल्कि अचेतन रूप से दूसरों के व्यवहारों की नकल करता है। एक बच्चा प्रायः अपने से बड़े के कुछ व्यवहारों का अचेतन रूप से अनुकरण करता है वह समाज की रीति-रिवाजों का भी अनुकरण इसी अचेतन रूप से करता है।
2. प्रत्यक्षात्मक अनुकरण- इस तरह के अनुकरण में अनुकरण करने वाला व्यक्ति तथा जिस व्यक्ति के व्यवहारों का अनुकरण किया जा रहा है वे दोनों ही आमने-सामने होते हैं। दूसरे दूसरों में यह कहा जा सकता है कि अनुकरण करने वाले व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों का अनुकरण उसकी मौजूदगी में ही करता है। जैसे, प्रायः देखा जाता है कि स्कूल या कालेज के किसी समारोह में छात्र शिक्षकों की उपस्थिति में ही किसी विशेष शिक्षक (जो उस समारोह में मौजूद होते हैं) के बोलने तथा व्यवहार करने की नकल प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर देते हैं। यहां अनुकरण करने वाला छात्र तथा वह शिक्षक जिसमें व्यवहार का अनुकरण किया जा रहा है, दोनों ही प्रत्यक्ष रूप से मौजूद रहते हैं।
3. अनुकरण काल्पनिक अनुकरण- काल्पनिक अनुकरण में व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या घटना का अनुकरण उसकी मौजूदगी में नहीं बल्कि अनुपस्थिति में ही करता है। अधिकतर अनुकरण काल्पनिक अनुकरण ही होते हैं क्योंकि अनुकरण किया जाने वाला व्यक्ति साधारणतया अनुपस्थित ही रहता है।
4. विचारपूर्ण अनुकरण- जब अपनी इच्छानुसार व्यक्ति दूसरों के व्यवहारों की नकल करता है तो उसे विचारपूर्ण अनुकरण कहा जाता है। इस तरह का अनुकरण पूर्ण रूपेण चेतन होता है। जैसे कोई छात्र अपने शिक्षक के आदर्श व्यवहारों का नियमपूर्वक नकल कर अनुकरण करता है तो ऐसे अनुकरण की श्रेणी में रखा जायेगा।

### 1.3.3 अनुकरण के सिद्धान्त (Theories of Imitation)-

समाज मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने अनुकरण को वैज्ञानिक ढंग से समझने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त बतलाए हैं:-

- i) बेगहॉट का सिद्धान्त
- ii) टार्ड का सिद्धान्त
- iii) अनुकरण का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त
- iv) अनुकरण का सामाजिक सिद्धान्त
- i) **बेगहॉट का सिद्धान्त (Theory of Bagehot)-** इस सिद्धान्त के अनुसार अनुकरण करने की प्रवृत्ति व्यक्ति में जन्म से ही मौजूद होती है। इसका मतलब यह हुआ कि इन्होंने अनुकरण को एक मूलप्रवृत्ति की श्रेणी में रखा है। इस तरह के अनुकरण के बारे में बेगहॉट का विचार बहुत कुछ मैकडुगल के विचार से मिलता जुलता है। क्योंकि मैकडुगल ने भी अनुकरण की प्रक्रिया को एक जन्मजात प्रक्रिया कहा है।

इन्होंने यह भी कहा है कि बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक होती है। क्योंकि बच्चे मूलप्रवृत्ति द्वारा अधिक नियंत्रित होते हैं परन्तु वयस्कों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति बच्चों की अपेक्षा कम होती है क्योंकि इनके मूल स्वभाव पर सामाजिक सीखने का प्रभाव अधिक होता है। इन्होंने यह भी कहा है कि जनजाति के व्यक्तियों में सभ्य जाति के व्यक्ति की अपेक्षा अनुकरण करने की क्षमता अधिक होती है। क्योंकि इन व्यक्तियों का व्यवहार मूलप्रवृत्ति द्वारा ही अधिक नियंत्रित होता है तथा साथ ही साथ इनके स्वभाव पर विकास का प्रभाव कम पाया जाता है।

- ii) **टार्ड का सिद्धांत (Theory of Tarde)**- टार्ड ने भी अपने सिद्धांत में अनुकरण को एक मूलप्रवृत्ति ही कहा है। परन्तु साथ ही साथ इसमें अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के भी महत्व को कुछ हद तक उन्होंने स्वीकार किया है। उन्होंने अनुकरण को इतना प्रभावकारी बतलाया है कि इनके बिना समाज का अस्तित्व संभव नहीं है। उनके अनुसार सचमुच में पूरा समाज ही एक साकार अनुकरण है।

टार्ड के अनुसार किसी समाज का विकास उनके सदस्यों के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं पर निर्भर करता है। इन अन्तःक्रियाओं के मुख्य तीन रूप होते हैं - पुनरावृत्ति, विरोधी और अनुकूलन। इन तीनों तरह की प्रक्रियाओं में से प्रत्येक के तीन स्वरूप होते हैं- भौतिक स्वरूप, प्राणीशास्त्रीय स्वरूप तथा सामाजिक स्वरूप। टार्ड ने अनुकरण की व्याख्या करने के लिए पुनरावृत्ति के इन तीनों स्वरूपों की चर्चा को ही पर्याप्त माना है उनके अनुसार पुनरावृत्ति के तीन स्वरूप इस प्रकार होंगे - भौतिक पुनरावृत्ति, प्राणी शास्त्रीय पुनरावृत्ति तथा सामाजिक पुनरावृत्ति। हवा के माध्यम से हम प्रतिध्वनि सुनते हैं, यह भौतिक पुनरावृत्ति का उदाहरण है। अपने पुत्र या पुत्रियों में माता-पिता के गुणों एवं लक्षणों का दिखाई देना प्राणीशास्त्रीय पुनरावृत्ति का उदाहरण है। किसी एक व्यक्ति के व्यवहार एवं गुणों को दूसरे व्यक्ति द्वारा उसी रूप में दोहराया जाना सामाजिक पुनरावृत्ति का उदाहरण है।

टार्ड ने उन सामाजिक आर्थिक कारकों पर भी प्रकाश डाला है जिनसे प्रेरित होकर व्यक्ति नये-नये विचारों एवं रीति रिवाजों का अनुकरण करता है।

- iii) **अनुकरण का मनोवैज्ञानिक सिद्धांत (Psychological Theory of Imitation)**- हाल्ट तथा आलपोर्ट ने अनुकरण की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। हाल्ट के अनुसार अनुकरण की व्याख्या सहज चक्र सिद्धांत के आधार पर आसानी से की जा सकती है। इनका कहना है कि अनुकरण की प्रक्रिया का आधार स्नायुमण्डल होता है। जब व्यक्ति किसी दूसरे के व्यवहार को देखता है या उसके बारे में सुनता है या उसके बारे में पढ़ता है तो उसे एक वाह्य उत्तेजना प्राप्त होता है और उस उद्दीपन से स्नायुमण्डल में एक सहज क्रिया उत्पन्न होती है इस सहज क्रिया द्वारा पुनः उस उत्तेजना की पुनरावृत्ति होती है और यही पुनरावृत्ति अनुकरण का आधार होती है।

आलपोर्ट का विचार हाल्ट के विचार से काफी मिलता-जुलता है इन्होंने ने भी अनुकरण की व्याख्या करने के लिए सहज क्रिया का सहारा लिया है। इन्होंने अनुकरण की व्याख्या पूर्व प्रबल सहज सिद्धांत के आधार पर की है। आलपोर्ट के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में सुनने एवं बोलने की इन्द्रियां एक दूसरे से इस तरह से संबंधित होकर पूर्व प्रबल बन जाती हैं कि व्यक्ति को कोई देखी हुई घटना एवं सुनी हुई बात का अनुकरण करने में काफी आसानी होती है।

iv) **अनुकरण का सामाजिक सिद्धांत (Psychological Theory of Imitation)**- थॉर्नडाइक, लापियरी, कूली जॉन डीवी आदि मनोवैज्ञानिकों ने अनुकरण का सामाजिक सिद्धांत प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि अनुकरण की आदत अन्य सभी आदतों के समान ही विकसित होती है। इसके निर्माण एवं विकास में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का अधिक महत्व होता है। इन लोगों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि व्यक्ति उन व्यवहारों एवं क्रियाओं का अनुकरण तेजी से करता है जिन्हें अपनाने पर समाज द्वारा उसे पुरस्कार मिलता है एवं समाज के लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। जैसे- जब कोई बच्चा दूसरे बच्चे को अपने बड़े के पैर छूकर प्रणाम करते देखता है और फिर वह भी वैसा ही करता है तो इससे लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। इस तरह की प्रशंसा का एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव उस बच्चे पर पड़ता है और इसमें अनुकरण की प्रक्रिया और भी सुदृढ़ हो जाती है। वही दूसरी तरफ व्यक्ति उन क्रियाओं एवं व्यवहारों का अनुकरण नहीं करता है जो सामाजिक तिरस्कार एवं घृणा लिये हुए होते हैं।

#### 1.3.4 सामाजिक जीवन में अनुकरण का महत्व

अनुकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसकी हमारे सामाजिक एवं नैतिक विकास में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। अनुकरण का व्यक्ति के विकास के महत्वपूर्ण चरणों में बड़ा महत्व है:-

1. **सीखने की प्रक्रिया में:-** इसका हमारे जीवन में बहुत महत्व है। मानव को सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे भिन्न तरह के सामाजिक व्यवहारों एवं वैयक्तिक व्यवहारों को सीखना आवश्यक हो जाता है। अनुकरण की प्रक्रिया इसमें काफी मदद करती है। एक बच्चा घर में अपने माता पिता एवं भाई बहनो के व्यवहारों के अनुकूल व्यवहार करना अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा सीख लेता है।
2. **भाषा विकास में:-** अनुकरण की प्रक्रिया का भाषा विकास में काफी महत्व है। बच्चे जब भाषा सीखने की अवस्था में होते हैं तो वे अपने से बड़े बच्चों की भाषा का अनुकरण तेजी से करके उसे सीख लेते हैं। इस प्रकार बच्चे भाषा को अनुकरण की प्रक्रिया सीख लेते हैं।
3. **व्यक्तित्व के विकास में:-** व्यक्तित्व के विकास में भी अनुकरण की भूमिका काफी है। जैसा कि हम जानते हैं कि व्यक्तित्व शीलगुणों, आदतों, विचारों, भावनाओं आदि का एक गत्यात्मक संगठन होता है। व्यक्तित्व

- के इन सभी तत्वों के निर्माण में अनुकरण की भूमिका अद्वितीय है। एक छोटा बच्चा अन्य बच्चों को मिल-जुलकर खेलते देखकर उसके व्यवहारों का अनुकरण करता है।
4. **समाज एवं संस्कृति के अस्तित्व को बनाये रखने में:-** अनुकरण द्वारा समाज एवं संस्कृति के मानदण्डों, तौर तरीकों आदि को आसानी से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक बनाये रखा जाता है। दूसरे शब्दों में, अनुकरण द्वारा ही समाज एवं संस्कृति के अस्तित्व को सही मायने में एक पीढ़ी तक कायम रखा जाता है।
  5. **सामाजिक एकरूपता एवं संगठन को जन्म देने में:-** अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक एकरूपता एवं संगठन को कायम रखने में काफी मदद मिलती है। अनुकरण द्वारा ही सामाजिक जीवन के प्रमुख व्यवहार, विचार, आदर्श एवं रीति-रिवाज काफी तेजी से समाज के भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों में फैल जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि इन व्यवहारों, आदर्शों एवं विचारों के प्रति समाज के सभी वर्गों के लोगों की अनुक्रिया करीब-करीब एक समान होती है। इससे सामाजिक एकरूपता उत्पन्न होती है।
  6. **आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति करने में:-** व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति करने में भी अनुकरण का महत्वपूर्ण हाथ है जैसे जो व्यक्ति एक बड़ा कलाकार बनने की इच्छा रखता है। वह नामी कलाकारों के कार्यों एवं व्यवहारों पर अत्यधिक ध्यान देकर उनके उल्लेखनीय व्यवहारों और कार्यों का अनुकरण करता है। इस अनुकरण का यह परिणाम होता है कि उसकी कुशलता धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। इस प्रकार सामाजिक व्यवहारों एवं सांस्कृतिक मानदण्डों का सही अनुकरण करके हमारा सम्पूर्ण विकास हो सकता है।

#### 1.4 सुझाव

परिभाषाएँ :-

मनोवैज्ञानिकों ने सुझाव की परिभाषा अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत की है:-

मैकडुगल के अनुसार:-

”सुझाव संचार या संप्रेषण की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप एक व्यक्ति द्वारा दी गयी राय उपयुक्त तार्किक आधार के बिना ही दूसरों के द्वारा विश्वास के साथ स्वीकार की जाती है।”

किम्बल यंग के अनुसार:-

”सुझाव, शब्दों, चित्रों या ऐसे ही किसी अन्य माध्यम द्वारा किये गये प्रतीक संचार का एक ऐसा स्वरूप है जिसका उद्देश्य उस प्रतीक को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करना होता है।”

थाउलेस के अनुसार:-

”सुझाव शब्द का प्रयोग अब साधारणतः उस प्रक्रिया के लिए किया जाता है। जिसमें विचार, विशेष के प्रति मनोवृत्ति विवेकपूर्ण अनुमान्य को छोड़कर अन्य माध्यम से एक व्यक्ति द्वारा दूसरे तक संचारित की जाती है।”

- परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर सुझाव की प्रक्रिया के बारे में निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं।
1. सुझाव के दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं और दोनों ही सक्रिय एवं सचेत होते हैं। एक पक्ष सुझाव देने वाला होता है तथा दूसरा पक्ष सुझाव ग्रहण करने वाला व्यक्ति होता है।
  2. सुझाव की प्रक्रिया में जिस व्यक्ति को सुझाव दिया जाता है, वह बिना तर्क, शंका तथा अलोचना के ही, दिये गये विचारों को स्वीकार कर लेता है। इस तथ्य पर मैकडुगल, थाउलेस आदि ने बल डाला है।

#### 1.4.1 सुझाव का वर्गीकरण

समाज मनोवैज्ञानिकों ने सुझावों को पांच भागों में बांटा है:-

1. **विचार चालक सुझाव (Ido-motor Suggestion)**- विचार चालक सुझाव मस्तिष्क के ज्ञान-स्नायुओं में शुरू होता है तथा सुझाव ग्रहण करने वाला व्यक्ति इसे अचेतन रूप से स्वीकार करता है। वास्तव में इस ढंग का सुझाव बहुत हद तक विचार चालक अनुकरण के समान होता है विचार एवं भावना के द्वारा ही इस तरह का सुझाव एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक संचारित होता है। प्रायः यह देखा गया है कि नर्तकी को मनपसंद संगीत के साथ नाचते देखकर कुछ व्यक्ति अपने पास की जमीन थपथपाना शुरू कर देते हैं। देखने वाला व्यक्ति यहां नर्तकी में भिन्न-भिन्न मुद्राओं से एक तरह का विचार या भावना प्राप्त कर रहा होता है।
2. **प्रतिष्ठा सुझाव (Prestige Suggestion)**- प्रतिष्ठा सुझाव ऐसे सुझाव को कहा जाता है जो किसी प्रतिष्ठित या सम्मानित व्यक्ति के द्वारा दूसरों को दिया जाता है। चूंकि ऐसे व्यक्तियों को साधारण व्यक्ति इज्जत एवं श्रद्धाभाव से देखते हैं। इसलिए वे उनके सुझाव को तुरन्त मान लेते हैं। उदाहरणार्थ, मुख्यमंत्री स्वयं ही अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं को यदि कुछ सलाह देते हैं तो कार्यकर्तागण उन्हें तुरन्त मान लेते हैं। क्योंकि वे लोग उन्हें इज्जत एवं श्रद्धा की नजर से देखते हैं।
3. **आत्म सुझाव (Auto Suggestion)**- आत्म सुझाव, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, में व्यक्ति अपने आपको सुझाव देता है। इस तरह के सुझाव में व्यक्ति का मन या आत्मचेतना ही सुझाव देने वाला होता है। उदाहरणार्थ, बहुत दिनों तक अपनी पढ़ाई में लापरवाही बरतने के बाद एक छात्र अपने आपको यह सुझाव देता है, ”अब परीक्षा नजदीक आ गयी है। पढ़ाई में तन-मन से जुट जाओ नहीं तो परीक्षाफल खराब हो जायेगा” इस तरह का सुझाव निश्चित रूप से आत्म-सुझाव है। क्योंकि यहां व्यक्ति अपने आपको स्वयं ही सुझाव दे रहा है।

4. **विरोधी सुझाव (Contra Suggestion)**- विरोधी सुझाव में व्यक्ति को जो राय दी जाती है वह ठीक उसका उल्टा करता है। समाज मनोवैज्ञानिकों का सामान्य मत यह है कि इस प्रकार के सुझाव की ग्रहणशीलता छोटे-छोटे बच्चों एवं कम पढ़ी-लिखी स्त्रियों में अधिक होता है। जैसे - पापा या मम्मी द्वारा जब घर में छोटे बच्चों को यह सलाह दी जाती है कि वह टेलीविजन या क्रीज को न छूये तो वह उसे और भी छूने की कोशिश करता है। उसी तरह किसी कम पढ़ी-लिखी औरत को कोई बात यह समझाते हुए कहा जाता है कि इसे वह अपने तक गोपनीय रखेगी।
5. **सामूहिक सुझाव (Mass Suggestion)**- इस तरह के सुझाव में व्यक्ति को सुझाव कुछ अन्य व्यक्तियों के समूह से प्राप्त होता है। इसमें व्यक्ति यह अनुभव करता है कि जिस कार्य को समूह के अधिकतर लोग कर रहे हैं उसे भी वही कार्य करना चाहिए। दूसरे दूसरों में, सामूहिक सुझाव में व्यक्ति पर समूह का प्रभाव काफी पड़ता है और व्यक्ति को समूह का सुझाव स्वीकार करना पड़ता है। उदाहरण यदि कोई सभ्य आदमी गुंडो-बदमाशों के समूह से घिर जाता है तो वह भी समूह के निर्देशानुसार कार्य करता है तथा समूह के सुझाव को स्वीकार कर लेता है।

#### 1.4.2 सुझाव को प्रभावकारी बनाने के लिए कुछ आवश्यक परिस्थितियां

समाज मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर विशेष रूप से बल डाला है कि कुछ परिस्थितियां या दशाएं ऐसी होती हैं जो सुझाव को अधिक से अधिक प्रभावकारी बना देती हैं। समाज मनोवैज्ञानिकों ने इन परिस्थितियों को दो भागों में बांटा है

1. बाह्य परिस्थितियां
2. आन्तरिक परिस्थितियां

##### 1. बाह्य परिस्थितियां:-

सुझाव की प्रक्रिया में दो पक्ष होते हैं पहला पक्ष सुझाव देने वाला होता तथा दूसरा सुझाव ग्रहण करने वाला। बाह्य परिस्थिति में वे सभी कारक सम्मिलित होते हैं जो निम्न प्रकार हैं:-

- i) **बाह्य वातावरण:-** बाह्य वातावरण से तात्पर्य उस वातावरण से होता है जिसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सुझाव दिया जाता है। इस वातावरण में प्रकाश, अंधेरा, सजावट, रंग तथा व्यक्ति के चारों ओर की अन्य वस्तुओं की स्थिति आदि सभी महत्वपूर्ण होते हैं। बाह्य वातावरण की ये सभी चीजे सुझाव ग्रहण करने वाले व्यक्ति में एक विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति उत्पन्न कर देती हैं जिससे उसमें सुझाव-ग्रहणशीलता अधिक तेज हो जाती है। उसी तरह से दशकों में सुझाव ग्रहणशीलता को बढ़ाने के लिए जादूगर विचित्र प्रकार की पोशाक पहनता है तथा नरककाल से लेकर जादुई छड़ी तक को दर्शकों के सामने प्रस्तुत करता है ताकि दर्शकों में उत्सुकता बढ़े।

- ii) **विश्वासपूर्ण स्तर:-** यदि सुझाव देने वाला व्यक्ति आत्मबल पर भरोसा रखते हुए विश्वासपूर्ण स्तर से सलाह देता है तो दूसरे लोग उसे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। विश्वासपूर्ण या विश्वस्त स्तर होने से दूसरा व्यक्ति यही समझता है कि जो कुछ भी कहा जा रहा है वह सत्य तथा उचित है इस तरह से सुझाव देने वाले व्यक्ति का स्वार्थ सिद्ध हो जाता है।
- iii) **पुनरावृत्ति:-** सुझाव की ग्रहणशीलता पुनरावृत्ति द्वारा भी काफी प्रभावित होती है। यदि एक ही बात को बार-बार कहा जाता है तो सुझाव ग्रहणशीलता करने वाला व्यक्ति उसे सच मानकर स्वीकार कर लेता है तथा सुझाव देने वाले के स्वार्थ की सिद्धि हो जाती है। शायद यही कारण है कि व्यापार-सम्बन्धी विज्ञापनों को रेडियो या टेलीविजन पर बार-बार दिखलाया जाता है या सुनाया जाता है।
- iv) **संकट:-** समाज मनोवैज्ञानिकों का सामान्य मत यह है कि संकटकालीन परिस्थिति में सुझाव ग्रहणशीलता व्यक्तियों में काफी बढ़ जाती है। ऐसा देखा गया है कि आकस्मिक संकट सुझाव ग्रहणशीलता को काफी बढ़ा देता है। ऐसी परिस्थिति में जो सुझाव व्यक्ति को दिया जाता है उसे तुरन्त मान लिया जाता है। किसी प्रियजन की मृत्यु, दुर्घटना, बाढ़, भूकम्प, अकस्मात नौकरी से निकाल दिया जाना आदि ये सब संकटकालीन परिस्थिति के उदाहरण हैं।
- v) **सुझाव देने वाले की प्रतिष्ठा:-** सुझाव की ग्रहणशीलता सुझाव देने वाले व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं इज्जत पर भी निर्भर करती है। सुझाव देने वाले व्यक्ति का प्रतिष्ठा सुझाव ग्रहण करने वाले व्यक्ति की निगाह में जितनी ही अधिक होगी, उस व्यक्ति का सुझाव उतनी ही तत्परता के साथ स्वीकार किया जायेगा। इसका मात्र कारण यह है कि लोग प्रतिष्ठित व्यक्ति को आदर्श व्यक्ति मानते हैं और यह भी समझते हैं कि ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति कभी गलत या झूठ नहीं बोलते हैं।
- vi) **जनमत:-** साधारणतः जनता के मत को जनमत कहा जाता है। समाज मनोवैज्ञानिकों का सामान्य विचार यह है कि जो सुझाव अधिकतर व्यक्तियों की ओर से रखा जाता है उसे कोई व्यक्ति टाल नहीं पाता है और वह सुझाव को आसानी से स्वीकार कर लेता है। शायद यही कारण कि आज भी गांव में पंच को परमेश्वर माना जाता है और उसके फैसले, राय, विचार या सुझाव को व्यक्ति चुपचाप स्वीकार कर लेता है जनमत में चूंकि एक जनशक्ति या सामूहिक इच्छा निहित होती है। यही कारण है कि जनमत काफी प्रभावकारी होता है।

2. **आन्तरिक परिस्थितियां:-** सुझाव की ग्रहणशीलता सिर्फ बाह्य परिस्थितियों पर ही नहीं बल्कि व्यक्ति की आन्तरिक परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है। आन्तरिक परिस्थितियों में सुझाव ग्रहण करने वाले व्यक्ति का स्वभाव, लिंग, आयु, शारीरिक अवस्था, वृद्धि आदि सम्मिलित होते हैं। जो इस प्रकार हैं:-



- i) **आयुः-** व्यक्ति की आयु द्वारा सुझाव ग्रहणशीलता प्रभावित होती है। दूसरे दूसरों में, आयु सुझाव ग्रहणशीलता घटती या बढ़ती है। प्रायः देखा गया है कि बच्चों में सुझाव ग्रहणशीलता अधिक होती है क्योंकि उनकी आयु कम होने से उनमें विवेक एवं अनुभव की कमी होती है। वयस्को में सुझाव ग्रहणशीलता कम होती है। क्योंकि उनके मस्तिष्क की परिपक्वता अधिक होने से उनमें विवेक एवं अनुभव की अधिकता होती है। बुढ़ापे में अधिक उम्र बीत जाने से सामान्यता सुझाव ग्रहणशीलता बढ़ जाती है क्योंकि इस अवस्था में मस्तिष्क कमजोर हो जाने से विवेक शक्ति कम हो जाती है।
- ii) **शारीरिक कष्टः-** विशेष शरीर कष्ट जैसे - भूख, बीमारी, थकान, चोट इत्यादि ऐसी कुछ परिस्थितियां होती हैं जिनके होने पर व्यक्ति दूसरों के सुझाव को बिना तर्क या शंका के ही स्वीकार कर लेता है। इन शारीरिक कष्टों की स्थिति में व्यक्तियों में तर्क या विवेक की शक्ति कम हो जाती है और उनका ध्यान कष्ट पर तथा उसे दूर करने के उपायों पर केन्द्रित अधिक होता है। शायद यही कारण है कि डाक्टर द्वारा दिये गये सुझाव को रोगी तत्परता से स्वीकार कर लेता है। परन्तु रोग समाप्त होने के बाद, स्वास्थ्य की देख-रेख सम्बन्धी डाक्टर की मामूली राय पर अधिक ध्यान नहीं देता है।
- iii) **लिंगः-** कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा सुझाव ग्रहणशीलता सामान्यतः अधिक होती है। वे दूसरों की बातों को आसानी से सच समझकर स्वीकार कर लेते हैं। इसके दो कारण बतलाये गये हैं पहला तो यह है कि अधिकतर महिलाएं अपना समय घर में ही व्यतीत करती हैं। जिसके फलस्वरूप उन्हें बाहरी दुनिया का ज्ञान अधूरा एवं अल्प होता है। दूसरा यह कि महिलाओं के स्वभाव में परम्परा, धर्म, अन्धविश्वास आदि अधिक होता है। फलतः उनमें विवेकशीलता कम होती है और वे दूसरे की राय को आसानी से स्वीकार कर लेती हैं। परन्तु इस तरह की सुझाव ग्रहणशीलता सभी तरह की स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक होगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता है क्योंकि कुछ महिलाएं ऐसी होती हैं जिनकी आलोचनात्मक क्षमता अधिक विकसित होती है।
- iv) **अज्ञानताः-** व्यक्ति की अज्ञानता का भी प्रभाव सुझाव ग्रहणशीलता पर पड़ता है यदि सुझाव किसी ऐसी वस्तु, व्यक्ति या घटना के बारे में दिया जाता है जिससे व्यक्ति अनभिज्ञ है या जिसके बारे में वह कुछ नहीं जानता है, तो उसे व्यक्ति तुरन्त स्वीकार कर लेता है। इसका प्रधान कारण यह है कि इस तरह की अज्ञानता व्यक्ति की तर्क शक्ति तथा विवेक शक्ति पर एक तरह का पर्दा डाल देती है। फलस्वरूप, वह किसी सुझाव को तत्परता से बिना किसी छानबीन के ही स्वीकार कर लेती है।
- v) **बुद्धिः-** कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि अधिक बुद्धि वाले व्यक्ति में तर्क क्षमता तथा विवेकशक्ति भी अधिक होती है। फलस्वरूप उनमें सुझाव ग्रहणशीलता कम होती है क्योंकि वे किसी सुझाव को तत्परता से स्वीकार नहीं करते हैं। दूसरी तरफ कम बुद्धि वाले व्यक्ति में तर्क तथा विवेक की शक्ति काफी कम

होती है, फलतः वे किसी सुझाव को यथावत तुरन्त मान लेते हैं। परन्तु इस तरह के सिद्धान्त की मान्यता अब करीब-करीब समाप्त हो गयी है। आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगात्मक सबूतों से यह स्पष्ट हो गया है कि बुद्धि के साथ-साथ और भी कारक होते हैं जो व्यक्ति की सुझाव ग्रहणशीलता को प्रभावित करते हैं। उदाहरण, किसी भीड़ में जब व्यक्ति बहुत से व्यक्तियों को भागते देखता है तो वह भी भागना शुरू कर देता है। चाहे उसकी बुद्धि का स्तर कितना ऊंचा क्यों न हो। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि भीड़ में व्यक्ति दूसरे के व्यवहारों को अधिक तत्परता से स्वीकार करता है।

- vi) **मस्तिष्क में असामान्य अवस्था:-** सुझाव ग्रहण करने वाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति यदि कुछ असामान्य हो तो स्वभावता उसमें तर्क एवं विवेक शक्ति काफी कम हो जाती है और उसे जो कुछ भी कहा जा रहा है वह तत्परता के साथ स्वीकार कर लेता है। मस्तिष्क की असामान्य स्थिति कुछ मानसिक बीमारियों जैसे - मनोस्नायुविकृति, मनोविकृति तथा मदिरा एवं नशीली वस्तुओं के खाने एवं सम्मोहन के वश में होने के कारण उत्पन्न हो जाती है। इन मानसिक अवस्थाओं में सुझावग्रहणशीलता अधिक बढ़ जाती है। क्योंकि उनके मस्तिष्क में विवेकशीलता घट जाती है।
- vii) **अनुकूल सुझाव:-** यदि दिया गया सुझाव ऐसा होता है जो ग्रहण करने वाले व्यक्तियों के विचारों, आदर्शों, अभिरूचियों एवं इच्छाओं के अनुकूल है तो उसे स्वीकार करने में व्यक्ति को किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं होती है। इसका प्रधान कारण यह है कि ऐसी स्थिति में व्यक्ति को किसी प्रकार का आन्तरिक द्वन्द्व या विरोध का सामना नहीं करना पड़ता है। शायद यही कारण है कि यदि किसी प्रकार सन्तानरहित महिला को जिसे भगवान तथा उनके पूजा पाठ में अटूट विश्वास है। सन्तान की प्राप्ति के लिये भगवान की सुबह, दोपहर एवं शाम गंगाजल तथा तुलसी के पत्ते को तांबे के पात्र में रखकर पूजा करने की सलाह दी जाती है तो वह उसे तुरन्त तत्परता के साथ स्वीकार कर लेती है।

### 1.4.3 सामाजिक जीवन में सुझाव का महत्व

सुझाव का हमारे सामाजिक जीवन में काफी महत्व है इसकी अवहेलना करना सम्भव नहीं है सुझाव के महत्व को हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत व्याख्या कर सकते हैं:-

- 1) **सुझाव से सामाजिक एकता होती है:-** सुझाव से सामाजिक एकता आती है। सुझाव कई तरह के होते हैं जिनमें से सामाजिक सुझाव द्वारा सामाजिक एकता अधिक आती है। सामाजिक सुझाव एक ऐसा सुझाव है जिसमें व्यक्ति अधिकतर व्यक्तियों के व्यवहारों के अनुकूल अपना व्यवहार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि जब व्यक्ति अन्य लोगों के करीब आता है तो इससे उनमें अपने आप ही एक तरह की सामाजिक एकता या समानता आती है। सामाजिक सुझाव हमें समूह से प्राप्त होते हैं।

- 2) **सुझाव व्यक्ति के समाजीकरण में मदद करता है:-** सुझाव द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण भी होता है। बच्चों को अपने भाइयों, बहनों, माता-पिता, शिक्षक आदि से निर्देश के रूप में बहुत तरह के सुझाव मिलते हैं। जिनके फलस्वरूप वे अनेको तरह के सामाजिक व्यवहार सीखते हैं। यदि बच्चों को बड़ों से उचित निर्देश सुझाव के रूप में मिलते रहते हैं तो इसमें वे कभी भी गलत रास्ते पर नहीं चलते और उनका सामाजीकरण भी तेजी से होता है।
- 3) **सुझाव सामाजिक नियंत्रण का एक साधन है:-** अक्सर यह देखा गया है कि जब हमें किसी बात का सुझाव बड़े एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मिलता है तो हम उसे स्वीकार कर लेते हैं और अपने व्यवहार में उसी तरह का परिवर्तन लाते हैं। यही कारण है कि समाज-सुधारक बड़े-बड़े साधु-संत, नेतागण आदि अपने सुझाव द्वारा हमेशा लोगों के व्यवहारों को एक खास दिशा में मोड़कर नियंत्रित करते हैं और उन्हें वैसे व्यवहारों को करने के लिये प्रेरित करते हैं जो सामाजिक हित के लिये लाभदायक होते हैं।

अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि सुझाव व्यक्ति के सामाजिक जीवन में काफी महत्वपूर्ण योगदान करता है। सच्चाई यह है कि सुझाव द्वारा व्यक्ति और समाज में एक अन्योन्याश्रय संबंध कायम हो जाता है जिससे सामाजिक विकास में तेजी आ जाती है।

### 1.5 सहानुभूति

हम प्रायः सहानुभूति शब्द का प्रयोग करते रहते हैं। मनोवैज्ञानिकों के बीच सहानुभूति एक महत्वपूर्ण चर्चा का विषय रहा है। सहानुभूति एक बहुत ही सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग हम दिन प्रतिदिन जिन्दगी में काफी करते हैं। परन्तु समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ में किया गया है। इस व्यापक अर्थ में सहानुभूति से अभिप्राय समान भावना के संचार या संप्रेषण से होता है। यह समान भाव सिर्फ दया या दुख का ही नहीं होता है। बल्कि क्रोध, द्वेष तथा घृणा का भी हो सकता है। उदाहरण, हम अपने मित्र के दुश्मन के प्रति क्रोध, घृणा तथा द्वेष व्यक्त कर मित्र के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। इस तरह से हम अपने मित्र के प्रति उसके दुश्मन के साथ क्रोध, द्वेष तथा घृणा का भाव दिखला कर सहानुभूति प्रकट करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सहानुभूति प्रकट करने वाले व्यक्ति में वैसा ही भाव या संवेग होना चाहिए जो उस व्यक्ति में होता है।

#### परिभाषाएँ :-

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने सहानुभूति की व्याख्या निम्न ढंग से की है:-

मैकडुगल के अनुसार:-

''साधारण अर्थों में सहानुभूति एक प्रकार की कोमलता है। जो उस व्यक्ति के प्रति होती है, जिसके साथ सहानुभूति प्रकट की जाती है। दूसरे के दुख में दुखी होना या दूसरे किसी व्यक्ति या प्राणी में एक विशेष भावना या

संवेग को देखकर अपने में भी उसी तरह विशेष भावना या संवेग को देखकर अपने में भी उसी तरह की भावना या संवेग का अनुभव करना ही सहानुभूति है।”

जेम्स ड्रेवर के अनुसार:-

”दूसरे के भावो एवं संवेगो के स्वाभाविक अभिव्यक्तपूर्ण चिन्हो को देखकर उसी प्रकार के भावो एवं संवेगो को अपने में अनुभव करने की प्रवृत्ति को सहानुभूति कहते हैं।”

संक्षेप में सहानुभूति का अभिप्रायः ऐसे मनोभाव से होता है जिसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अनुरूप भावना या संदर्भ की अनुभूति करता है। उदाहरणतया एक स्त्री के रोने का विलाप करने पर दूसरी स्त्री के भी आंखों में आंसू आना है। यह उसकी शारीरिक अभिव्यक्ति से प्रमाणित होता है। इस प्रकार कई अच्छी विशेषताओं को व्यक्ति में सहानुभूति द्वारा विकसित किया जा सकता है।

### 1.5.1 सहानुभूति के प्रकार:-

समाज मनोवैज्ञानिको ने मूलतः सहानुभूति के दो प्रकार बतलाये हैं:-

- 1) **सक्रिय सहानुभूति:-** सक्रिय सहानुभूति वैसी सहानुभूति को कहा जाता है जिसमें एक व्यक्ति के दुख-दर्द या कष्ट को अनुभव करने के साथ उसे हल्का करने या कम करने के ख्याल से व्यक्ति क्रियात्मक रूप से प्रयत्नशील रहता है। उदाहरण, दुर्घटना में घायल व्यक्ति के कष्टों का अनुभव करते हुए यदि कोई व्यक्ति उसे अस्पताल तक ले जाकर उसकी चिकित्सा में मदद करता है तो इसे सक्रिय सहानुभूति की संज्ञा दी जायेगी।
- 2) **निष्क्रिय सहानुभूति:-** यह सहानुभूति भावना प्रयास तथा क्रिया रहित होती है इस तरह की सहानुभूति में व्यक्ति दूसरे के दुख या दूसरों की संवेगात्मक अनुभूति के समान ही संवेगात्मक अनुभूति महसूस करता है। इस संवेगात्मक अनुभूति के अलावा वह कोई क्रिया या व्यवहार करने को तत्पर नहीं रहता है। उदाहरण, यदि किसी व्यक्ति को दुःख में पड़ा देखकर या किसी मुसीबत में फंसा देखकर यदि हम मात्र दुख के संवेग का अनुभव कर रह जाते हैं और किसी तरह की सक्रियता नहीं दिखलाते हैं तो इसे निष्क्रिय सहानुभूति कहा जायेगा।

### 1.5.2 सहानुभूति उत्पन्न करने वाले कारक या परिस्थितियां:-

सहानुभूति का आधार व्यक्ति का अपना अनुभव, ज्ञान एवं भिन्न-भिन्न तरह की अनुभूतियां होती हैं। व्यक्ति में सहानुभूति को जाग्रत करने वाले अनेको कारक हैं जिन पर समाज मनोवैज्ञानिको ने बल डाला है। आलपोर्ट ने प्रमुख ऐसे कारक जिनसे व्यक्ति में सहानुभूति उत्पन्न होती है।

- 1) **भावनाओं का पूर्व अनुभव:-** व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की भावना से तभी सहानुभूति रख सकता है जब उसने स्वयं स्वतंत्र रूप से भावना का अनुभव किया हो। यह अनुभव जितना अधिक गहरा होगा सहानुभूति भी उतनी ही अधिक होगी। व्यक्ति अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति कुछ विशेष शारीरिक मुद्राओं जैसे -

- रोने, हंसने, चिल्लाने आदि द्वारा करता है। उदाहरण - जब हम किसी व्यक्ति के रोने तथा कराहने की आवाज सुनते हैं तो समझ लेते हैं कि वह दुखी है। भावना की अभिव्यक्ति का यह रूप देखकर अपनी पूर्व अनुभूति के अनुसार दुख का भाव मन में उत्पन्न हो जाता है।
- 2) **वर्तमान परिस्थिति के स्वरूप का ज्ञान:-** सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए सिर्फ यही आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति में भावनाओं की पूर्व अनुभूति हो बल्कि यह भी आवश्यक है कि सहानुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति की वर्तमान परिस्थिति के स्वरूप या प्रकृति का भी ज्ञान हो। उदाहरण, जब हम किसी औरत की रूलाई सुनते हैं तो हमें उसके प्रति उतनी सहानुभूति नहीं होती जितनी की जब हम यह जान लेते हैं कि उसके रोने का कारण उसके पति का देहान्त हो जाना है। स्पष्ट है कि हमें वर्तमान परिस्थिति के स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर सहानुभूति अधिक उत्पन्न होती है।
  - 3) **कल्पनाशक्ति:-** सहानुभूति का उत्पन्न होना व्यक्ति की कल्पना शक्ति पर निर्भर करता है। जिस व्यक्ति में जितनी ही अधिक कल्पना शक्ति होगी, उसमें दूसरों की भावना, संवेगों एवं परिस्थितियों के संबंध में कल्पना करने की तत्परता उतनी ही अधिक होगी। व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को दुख में देखकर खुद भी काफी दुखी हो जाये, इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने आपको उसकी स्थिति, विचार एवं भावना आदि के साथ काफी घुला-मिला दे और यह कार्य कल्पना शक्ति के अभाव में नहीं हो सकता है।
  - 4) **परिस्थिति के प्रति अभिरूचि की समानता:-** सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए यह भी जरूरी है जिस परिस्थिति में सहानुभूति उत्पन्न होनी है, उनमें दोनों पक्षों की समान अभिरूचि हो। जब तक उस परिस्थिति विशेष के प्रति दोनों व्यक्तियों में समान अभिरूचि नहीं होगी, सहानुभूति उत्पन्न नहीं होगी। उदाहरण यदि कोई व्यक्ति का स्वरूप इस ढंग का है कि वह बच्चों से काफी घृणा करता है तो उसमें उस औरत के प्रति भी कोई सहानुभूति नहीं होगी, जिसके बच्चे की मृत्यु हो गयी है। यदि वह बच्चों से घृणा नहीं करता है तो औरत की रूलाई सुनते ही वह दुखी हो जायेगा और संतानहीन होने की पीड़ा का अंदाजा तुरन्त लगा लेगा।

### 1.5.3 सामाजिक जीवन में सहानुभूति का महत्व

सहानुभूति की उपयोगिता हमारे सामाजिक जीवन में काफी अधिक है क्योंकि इसके द्वारा हम भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक व्यवहारों को सीखते हैं इसके महत्व को हम निम्न बिन्दुओं में बांट सकते हैं:-

- 1) **सहानुभूति भिन्नता की जननी है:-** जब कोई व्यक्ति अन्य व्यक्ति के दुख से दुखी होकर उसके दुख को बांट लेने की कोशिश करता है। तो ऐसी परिस्थिति में स्वभावतः वह दूसरा व्यक्ति अनजान होते हुए भी एक अच्छा मित्र बन जाता है। इस तरह से वैयक्तिक मित्रता स्थापित हो जाती है। इतना ही नहीं, जो राष्ट्र दूसरे

राष्ट्र की घोर विपत्ति जैसे अकाल, भूकम्प आदि समय में मदद करता है तथा उसके दुख से दुखी होता है तो स्वभावतः दोनों राष्ट्रों के बीच मित्रता काफी गहरी हो जाती है तथा व्यापार सहयोग काफी बढ़ जाता है।

- 2) **सहानुभूति सामाजिक एकता तथा संगठन लाती है:-** सहानुभूति से मानव-समाज तथा पशु-समाज दोनों में ही सामाजिक एकता आती है। जब हम किसी के प्रति सहानुभूति दिखलाते हैं तो वह व्यक्ति बहुत जल्द ही हमारे प्रति आकर्षित होता नजर आता है। धीरे-धीरे दोनों की मित्रता गहरी हो जाती है और इस तरह से सामाजिक एकता का विकास होता है। पशु समाज में भी सामाजिक एकता के ख्याल से इस तरह की सहानुभूति कितनी महत्वपूर्ण है इसे मैकडुगल (1908) के दूसरों में इस तरह से व्यक्त किया जा सकता है 'सहानुभूति एक ऐसा बंधन है, जो पशु-समाज को एक साथ बांधे रहता है और समूह के सभी सदस्यों में एकरूपता उत्पन्न करता है।
- 3) **सहानुभूति समाज में परोपकारी कार्यों की आधारशिला है:-** समाज में अधिकतर परोपकारी कार्यों का कारण लोगों में सहानुभूति है। दुखी व्यक्तियों, शारीरिक रूप से लाचार व्यक्तियों, विधवाओं आदि के प्रति सहानुभूति रखने के ख्याल के कारण ही समाज में लोग विधवा आश्रम, अनाथ-आश्रम, अन्धा, बहरां एवं गूंगों के लिये स्कूल आदि का निर्माण करते हैं। इस सहानुभूति के कारण ही घोर प्राकृतिक विपत्ति जैसे - सूखा, बाढ़, आगजनी, भूकम्प आदि की स्थिति आने पर परोपकारी कार्य जैसे - खाना, कपड़ा, दवा आदि मुफ्त बंटवाने का काम करते हैं।

## 1.6 सारांश

अतः संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि सुझाव, अनुकरण और सहानुभूति ये तीनों मूल प्रवृत्तियां ही सामाजिकरण का आधार हैं। सामाजिकरण की प्रक्रिया में सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति घनिष्ठ रूप से परस्पर जुड़कर दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया का कार्य सम्पादित करवाती है। सामाजिक जीवन में सुझाव व्यक्ति के व्यवहार को बदलने का महत्वपूर्ण तरीका है। इसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार को बनाया, बिगाड़ा तथा फिर बनाया जा सकता है। अनुकरण का भी सामाजिकरण के अतिरिक्त व्यक्तित्व विकास में बहुत महत्व है। इसी प्रकार सहानुभूति भी सामाजिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। चाहे मानव जगत हो या पशु जगत यदि इनमें अनुकरण तथा सहानुभूति की प्रक्रिया न हो और मनुष्य सुझाव की प्रक्रिया से अछूता रहे तो सामाजिक जीवन का आनंद समाप्त हो जायेगा और सम्पूर्ण जीवजगत के विकास की प्रक्रिया रूक जायेगी।

## 1.7 शब्दावली

- **सुझावग्रहणशीलता:** सुझावग्रहणशीलता सुझाव करने की वह तत्परता है जिसके कारण व्यक्ति सुझाव मानने के लिए तैयार हो जाता है।

- सहानुभूति: सहानुभूति वह मूल प्रवृत्ति है जिसमें व्यक्तियों के भावों और संवेगों को देखकर उसी प्रकार की भावना या संवेग अनुभव करना सहानुभूति कहलाता है।
- अनुकरण: अनुकरण एक प्रकार का सामाजिक और सीखा हुआ व्यवहार है।

### 1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में उनकी योग्यता के अनुसार ..... की भिन्न-भिन्न मात्रा पायी जाती है।
2. क्या पशु-पक्षी विभिन्न तरह के व्यवहार अनुकरण द्वारा सीखते हैं -  
i. हां ii. नहीं
3. क्या प्राणियों में सहानुभूति के माध्यमों से विभिन्न श्रेष्ठ गुणों का विकास किया जाता है-  
i) हां ii) नहीं
4. दूसरे के संवेगों को देखकर उसी प्रकार के संवेग को अनुभव करना निम्न में से क्या है -  
i) सुझाव ii) अनुकरण iii) सहानुभूति
5. सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति किस प्रकार के व्यवहार है -  
i) तीनों ही अर्जित व्यवहार है।  
ii) तीनों समाज में रहकर सीखे गये व्यवहार है।  
iii) तीनों समाज में रहकर सीखे गये व्यवहार है।  
iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

उत्तर : 1- सुझावग्रहणशीलता 2- हां 3- (i) 4- (iii) 5- (ii)

### 1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Allport, F.H. (1954) : Social Psychology (Houghton Mifflin, Boston).  
 Mc Dougall, W. (1921): Introduction to Social Psychology (Methuen London).  
 Murphy, G. & Newcomb, : Experimental Social Psychology  
 T.M. (2000) York, Harper).

### 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अनुकरण से आप क्या समझते हो ? इसके प्रकारों तथा सामाजिक जीवन में इसके महत्व को समझाइये।
2. सुझाव को परिभाषित कीजिए। सामाजिक जीवन में इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. सहानुभूति किसे कहते हैं ? सहानुभूति के प्रकार बताते हुए इसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।

## इकाई-2 समाज मनोविज्ञान के विषय: अर्थ, स्वरूप, महत्व तथा विषय क्षेत्र

## (Nature, Scope and Significance of Social Psychology)

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 परिभाषाएँ
- 2.4 समाज मनोविज्ञान का महत्व
- 2.5 समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र
- 2.6 सारांश
- 2.7 शब्दावली
- 2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

**2.1 प्रस्तावना**

मनुष्य जन्म से जिज्ञासु होता है। इस कारण मनुष्य व्यवहार और व्यवहार के विभिन्न स्वरूपों को जानने व समझने का प्रयास करता है। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार का व्यवहार करता है। इसी व्यवहार के 'क्यों' 'कैसे' और 'किस लिए' को समझने का प्रयास ही समाज मनोविज्ञान करता है। समाज मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत सामाजिक समस्याओं, सामाजिक व्यवहार तथा मनुष्य की सामाजिक अंतःक्रिया का क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान की शाखा के रूप में समाज मनोविज्ञान का विस्तार तथा विकास मैकडूगल की पुस्तक Introduction to Social Psychology, 1908 के प्रकाशित होने के बाद तेजी से हुआ।

समाज मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यक्ति के सामाजिक पक्ष से है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि समाज मनोविज्ञान का अधिकतम भाग व्यक्तित्व तथा सामाजिक पद्धतियों के परस्पर आपसी प्रभाव से सम्बन्धित है तथा अपेक्षाकृत कम भाग संस्कृति से सम्बन्ध रखता है।

**2.2 उद्देश्य**

इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- समाज मनोविज्ञान के अर्थ, स्वरूप, परिभाषाओं के बारे में जान सकेंगे।
- समाज मनोविज्ञान के महत्व को समझ सकेंगे।



- समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के विषय में विस्तार से जानने का अवसर मिलेगा।

### 2.3 परिभाषाएँ

मनोवैज्ञानिकों ने समाज मनोविज्ञान की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं:-

किम्बल यंग (1961) के अनुसार:-

“समाज मनोविज्ञान व्यक्तियों की पारस्परिक प्रतिक्रिया का और इससे प्रभावित व्यक्ति के विचारों, संवेगों, तथा आदतों का अध्ययन है।”

फिषर (1982) के अनुसार:-

“समाज मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि किस प्रकार से व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक वातावरण में उपस्थित दूसरे लोगों के द्वारा प्रभावित होता है, बदले में उस व्यक्ति का व्यवहार भी प्रभावित होता है।”

फेल्डमैन (1985) के अनुसार:-

“समाज मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि एक व्यक्ति के विचार, भावनाएं तथा क्रियाएं दूसरे व्यक्तियों द्वारा किस प्रकार प्रभावित होती हैं।”

क्रच, क्रचफील्ड तथा बैलेची (1986) के अनुसार:-

“समाज मनोविज्ञान, समाज में व्यक्तियों के व्यवहार के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित है। अतः विस्तृत रूप से समाज मनोविज्ञान की परिभाषा समाज में व्यक्ति के व्यवहारों के अध्ययन के विज्ञान के रूप में की जा सकती है।”

बैरन तथा बाइरनी (2003) के अनुसार:-

“समाज मनोविज्ञान, वह विज्ञान है जो सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार की प्रकृति और कारणों के ज्ञान से सम्बन्धित होता है।”

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि समाज मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें समाज में व्यक्ति के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है तथा जिसमें विशेष रूप से पारस्परिक प्रतिक्रिया से प्रभावित हुए व्यक्ति के विचारों, भावनाओं तथा संवेगों का अध्ययन किया जाता है। समाज मनोविज्ञान में अध्ययन किया जाने वाला व्यक्ति का व्यवहार उस व्यक्ति और उसके वातावरण दोनों का ही प्रकार्य है।

- क्या समाज मनोविज्ञान विज्ञान है ?

समाज मनोविज्ञान की परिभाषाओं की विवेचना से सिद्ध होता है कि समाज मनोविज्ञान विज्ञान है इस तथ्य का परीक्षण विज्ञान के आवश्यक तत्वों के आधार पर कर सकते हैं। विज्ञान के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं:-

- 1) **वैज्ञानिक पद्धति:-** किसी भी विषय को विज्ञान तभी कहा जा सकता है तब उसकी अध्ययन पद्धतियां वैज्ञानिक हो। निरीक्षण विधि, श्रेणी, मापनी विधियां, मनोमिति विधियां तथा सांख्यिकीय विधियां ऐसी वैज्ञानिक विधियां हैं जिनका प्रयोग समाज मनोविज्ञान की समस्याओं के अध्ययन हेतु किया जाता है।
- 2) **प्रमाणिकता:-** किसी भी विषय को विज्ञान तभी कहा जाता है जब उसकी विषय सामग्री में प्रमाणिकता का गुण पाया जाता है अर्थात् उस विषय सामग्री को जितनी बार जांचा जाये उससे एक ही परिणाम प्राप्त हो। समाज मनोविज्ञान की विषय सामग्री प्रमाणिक होने के कारण समाज मनोविज्ञान इस कसौटी पर खरी उतरती है।
- 3) **सार्वभौमिकता:-** वैज्ञानिक विषयों के सिद्धांत तथा नियमों के सार्वभौमिक होने का अर्थ है कि यह सिद्धांत और नियम किसी देश या काल में खरे उतरते हैं। समाज मनोविज्ञान की विषय सामग्री में वस्तुनिष्ठता, प्रमाणिकता और भविष्यवाणी की योग्यता है तो निश्चित रूप से यह सिद्धांत और नियम सार्वभौमिक होंगे।
- 4) **वस्तुनिष्ठता:-** जब हम किसी घटना का परीक्षण वास्तविक रूप में करते हैं और जब शोधकर्ता की मनोवृत्तियों का परीक्षण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो ऐसे परीक्षणों से प्राप्त परिणाम वस्तुनिष्ठ परिणाम कहलाते हैं। शोध करने वाले सभी शोधकर्ता एक ही निष्कर्ष प्राप्त करते हैं तो उस परिणाम में वस्तुनिष्ठता पायी जाती है।
- 5) **भविष्यवाणी की योग्यता:-** वैज्ञानिक विषयों में भविष्यवाणी की योग्यता भी पायी जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी समूह के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाये तो यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि वह भविष्य में किस तरह का व्यवहार करेगा। चूंकि समाज मनोविज्ञान की समस्याओं का परीक्षण वैज्ञानिक विधियों द्वारा किया जाता है अतः समाज मनोविज्ञान के अध्ययनों के आधार पर भविष्यवाणी की जा सकती है।

विज्ञान की उपर्युक्त पांच विशेषताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि समाज मनोविज्ञान विज्ञान है।

## 2.4 समाज मनोविज्ञान का महत्व

समाज मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है। पहले समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र सीमित होने के साथ-साथ इसमें वैज्ञानिक अध्ययनों का अभाव था परन्तु आधुनिक समय में इसका क्षेत्र विस्तृत हो रहा है और इस क्षेत्र में अनेक शोधकार्य हो रहे हैं इसलिए समाज मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकास कर रहा है। सिम्पसन का मत है कि समाज मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विषय के रूप में अपना अस्तित्व रखता है। सामाजिक समस्याओं के समाधान में यह व्यवहारिक शाखा बहुत ही उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

आजकल समाज मनोविज्ञान की सहायता से सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को समझा ही नहीं जा सकता बल्कि इन समस्याओं को दूर भी किया जा सकता है। इस प्रकार मनोविज्ञान की इस

शाखा का महत्व किसी क्षेत्र विशेष में न होकर संसार में जहां समाज है वहां इस विषय के अध्ययन की आवश्यकता तथा उपयोगिता है। हमारे दैनिक जीवन की सामाजिक समस्याएं जैसे विवाह से सम्बन्धित समस्याएं, फैशन, जनमत तथा जातिगत समस्याओं से सम्बन्धित अनेक अध्ययन हो चुके हैं। इसी प्रकार व्यापार, राजनीति आदि क्षेत्रों में भी अनेक समस्याओं का समाधान ही नहीं हुआ है बल्कि इससे समाज को एक नई दिशा भी मिली है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जिन की समस्याओं के अध्ययन में समाज मनोविज्ञान लाभदायक सिद्ध हुआ है।

निम्नलिखित क्षेत्रों में समाज मनोविज्ञान का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है:-

- 1- सामाजिक प्रकृति के अध्ययन में।
- 2- सामाजिक अंतःक्रियाओं के अध्ययन में।
- 3- पक्षपात तथा पूर्वाग्रहों के अध्ययन में।
- 4- अपराध तथा समाज विरोधी व्यवहार के अध्ययन में।
- 5- पारिवारिक समायोजन के अध्ययन में।
- 6- क्रांति, युद्ध आदि गंभीर सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में।
- 7- जनसंचार माध्यमों के अध्ययन में।
- 8- जनमत, प्रचार तथा फैशन आदि क्षेत्र के अध्ययन में।

**सैद्धान्तिक उपयोगिता:-**

1. समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत परोपकारिता के महत्वपूर्ण सिद्धांतों का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया। इनसे परोपकारिता तथा सहायता परक व्यवहार को समझने में मदद मिली।
2. अंतरंग संबंधों के क्षेत्र में हुए अध्ययनों से घनिष्ठ सम्बन्धों के बारे में जानना आसान हो गया है।
3. समाज मनोविज्ञान में सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के कारण व्यक्ति सही निर्णय लेने में सक्षम महसूस करने लगा है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के सिद्धांतों के प्रतिपादन से ही ऐसा संभव हुआ है।
4. आक्रामकता और हिंसा संबंधी व्यवहार को जानने इसे बढ़ाने वाले कारकों तथा नियंत्रित करने वाले कारकों को समझने में समाज मनोविज्ञान सहायक सिद्ध हुआ है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समाज में व्याप्त समस्याओं के अध्ययन तथा निराकरण हेतु समाज मनोविज्ञान का विषय बहुत महत्वपूर्ण है।

## 2.5 समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो चुका है कि समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के सामाजिक व्यवहारों तथा सामाजिक अंतःक्रिया का अध्ययन करता है अतः समाज मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र काफी व्यापक तथा विस्तृत है। समाज

मनोविज्ञान की सीमा तथा क्षेत्र को निर्धारित करना तो संभव नहीं है परन्तु अध्ययन की आसानी के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों में इसका उपयोग किया जाता है:-

1- **सामाजिक मनोवृत्तियों का अध्ययन:-** समाज के विभिन्न पक्षों, व्यक्तियों तथा विचारों के प्रति प्रतिक्रिया करने की मनोवैज्ञानिक तत्परता ही सामाजिक मनोवृत्ति कहलाती है। यह मनोवृत्तियां जन्मजात न होकर अर्जित की हुई होती हैं। हमारे अधिकतर कार्य व्यक्तियों, वस्तुओं और विचारों के प्रति प्रतिक्रियाएं हमारी इन्हीं मनोवृत्तियों से प्रभावित तथा निर्देशित होती है इनमें से कुछ मनोवृत्तियां सकारात्मक होती हैं जो समाज तथा व्यक्ति के विकास में सहायक होती हैं जबकि कुछ मनोवृत्तियां नकारात्मक होने के कारण सामाजिक विकास में बाधा डालती हैं। समाज तथा देश के विकास के लिए इन बाधाओं को दूर करना आवश्यक होता है। समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत मनोवृत्ति निर्माण, परिवर्तन, परिवर्तन की विधियों तथा सिद्धांतों का विस्तार से अध्ययन किया जाता है।

2- **संस्कृति तथा व्यक्तित्व का अध्ययन:-** व्यक्ति जिस समाज में रहता है उसी की संस्कृति के अनुरूप उसका व्यक्तित्व विकसित होता है। पृथक-पृथक संस्कृतियों में पालन पोषण का तरीका भी भिन्न-भिन्न होता है। इसी कारण एक ही समाज में दो भिन्न-भिन्न जातियों में पलने वाले बच्चों के व्यक्तित्व, काम करने का तरीका, सोचने समझने का तरीका, उसकी आदतें आदि भिन्न-भिन्न होती हैं। व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन समाज मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

3- **अंतरवैयक्तिक आकर्षण का अध्ययन:-** जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या समूहों से अंतःक्रिया करता है तो उनके बीच आकर्षण या विकर्षण उत्पन्न होने लगता है। इस आकर्षण-विकर्षण के कई रूप हैं तथा इसे कई तत्व प्रभावित भी करते हैं इन सबका अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत आता है।

4- **सामाजिक व्याधियों का अध्ययन:-** समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत समाज में व्याप्त सामाजिक व्याधिकीय समस्याओं का अध्ययन भी किया जाता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति के अंदर पूर्वाग्रह, पक्षपात तथा गलत विचार होते हैं उसी प्रकार समाज में भी ये व्याधियां हो सकती हैं। वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, बाल अपराध, पारिवारिक विघटन, सामूहिक संघर्ष आदि सामाजिक रोग आज समाज में बढ़ते जा रहे हैं इनका अध्ययन, निदान तथा उपचार करना सामाजिक मनोविज्ञान के अंतर्गत आता है।

5- **संचार माध्यमों का अध्ययन:-** आधुनिक संचार माध्यम जैसे रेडियो, समाचार पत्र, टेलीविजन आदि व्यक्ति के व्यवहार, मत तथा सोचने के तरीके को प्रभावित करते हैं। इन्हीं माध्यमों के आधार पर मनोवृत्ति परिवर्तन सम्भव होता है। इनका अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान के ही अंतर्गत किया जाता है।

6- **समूह तथा सामूहिक व्यवहार का अध्ययन:-** समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत समूह, उसके प्रकार तथा समूह के व्यवहार पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का अध्ययन भी किया जाता है।

7- सामाजिक एकता एवं तनाव का अध्ययन:- आधुनिक युग में विभिन्न जाति, धर्म, भाषा के कारण व्यक्ति में तनाव की स्थिति बनी हुई है। इन लोगों में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या, घृणा और पक्षपात उत्पन्न हो गया है। जिससे राष्ट्रीय एकता का विखण्डन हो रहा है। सामाजिक एकता को स्थापित करके ही किसी भी देश या समाज का विकास सम्भव हो सकता है इसलिए सामाजिक एकता को स्थापित करने वाले घटकों तथा तनावों को दूर करने वाले कारकों का अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है।

8- मनुष्य की सामाजिक प्रकृति का अध्ययन:- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण वह समाज से अपनी विभिन्न सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, जिनमें अनुमोदन की आवश्यकता, यौन आवश्यकता, उपलब्धि आवश्यकता मुख्य होती है। समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत समूह में रहने के लिए आवश्यक इन सभी आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाता है।

9- सामाजिक अंतःक्रियाओं का अध्ययन:- समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत तीन प्रकार की अंतःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है:-

- (क) व्यक्ति तथा व्यक्ति के मध्य अंतःक्रिया।
- (ख) व्यक्ति तथा समूह के मध्य अंतःक्रिया।
- (ग) समूह तथा समूह के बीच अंतःक्रिया।

सामाजिक अंतःक्रियाओं के अंतर्गत प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, सामंजस्य तथा संघर्ष, सहयोग आदि से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

10- आक्रामकता और हिंसा:- आज समूचे विश्व में आक्रामकता सम्बन्धी समस्या बढ़ती जा रही है जिसके फलस्वरूप हिंसा उत्पन्न हो रही है। आक्रामकता और हिंसा को बढ़ाने वाले कारक तथा इसे दूर करने के उपायों का अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है।

11- परोपकारिता:- समाज के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए परोपकारिता का गुण आवश्यक है और यही समाज में सुख शांति स्थापित करने में मुख्य भूमिका निभाता है। परोपकारिता को प्रभावित करने वाले कारक, परोपकारिता की सैद्धांतिक व्याख्या भी समाज मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले प्रश्न हैं।

12- सामाजिक संज्ञान का अध्ययन:- हम विभिन्न संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के द्वारा अपने चारों ओर के वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर मस्तिष्क में उनकी छवि बनाते हैं जिसे व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण कहते हैं इस पर सामाजिक सांस्कृतिक तत्वों के प्रभाव को सामाजिक प्रत्यक्षीकरण कहते हैं।

इन सब प्रक्रियाओं तथा इन्हें प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। इसके अतिरिक्त संज्ञान की सन्नादिता तथा विसन्नादिता का अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान में किया जाता है। उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त और भी अनेक समस्याओं का अध्ययन समाज मनोविज्ञान के

क्षेत्र में किया जाता है। वास्तव में समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र उतना ही व्यापक और विस्तृत है जितना समाज और व्यक्ति का सामाजिक जीवन।

लापियरी और फ्रांसवर्थ (1949) ने समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र की व्यापकता का महत्व बतलाते हुए कहा है:-

“समाज मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में विशिष्ट विज्ञान है, इसके विषय क्षेत्र को निश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि ज्ञान में वृद्धि होने के साथ-साथ उसमें भी परिवर्तन होगा।”

## 2.6 सारांश

उपरोक्त विवरण के आधार पर संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करते हैं ठीक उसी प्रकार समाज मनोविज्ञान में भी व्यक्ति के व्यवहार का ही अध्ययन किया जाता है। समाज मनोविज्ञान में व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार पर सामाजिक अंतःक्रिया का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है यही अध्ययन हम मनोविज्ञान की इस शाखा में करते हैं। इसीलिए सिकोर्ड तथा बैकमैन (1974) ने लिखा है कि “सामाजिक मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन सामाजिक संदर्भ में करता है।” इसलिए समाज मनोविज्ञान को समाज में घटित होने वाले व्यवहार का अध्ययन करने वाला विषय कहा जाता है।

## 2.7 शब्दावली

- **सामाजिक अंतःक्रिया:** समाज में रहने वाले व्यक्तियों के बीच पारस्परिक व्यवहार व आपसी लेन-देन को सामाजिक अंतःक्रिया कहा जाता है।
- **सार्वभौमिकता:** संसार के सभी प्राणियों पर जिसे समान रूप से लागू किया जा सकता है उसे सार्वभौमिकता कहते हैं।
- **सामाजिक संज्ञान:** सामाजिक परिस्थितियों व घटनाओं के बारे में प्राप्त ज्ञान को सामाजिक संज्ञान कहते हैं।
- **परोपकारिता:** बिना अपना हित सोचे दूसरों की सहायता या मदद करना परोपकारिता कहलाता है।

## 2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- क्या समाज मनोविज्ञान विज्ञान है ?

- (i) हां (ii) नहीं

2- मैकडूगल की समाज मनोविज्ञान की पुस्तक कब प्रकाशित हुई -

- (i) सन् 1911 (ii) सन् 1914

(iii) सन् 1905 (iv) सन् 1908

3- समाज मनोविज्ञान में वस्तुनिष्ठता का गुण विद्यमान होता है -

(i) हाँ (ii) नहीं

उत्तर : 1- (i) 2- (iv) 3- (i)

## 2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Allport, F.W. (1929)	:	Social Psychology (Houghton Mifflin, Boston)
Baron and Byrne (1987)	:	Social Psychology, Cambridge, London
Fransworth (1941)	:	Social Psychology, Introduction (Mc Graw Hill, New York)
Freeman, F.(1936)	:	Social Pshyology, Ch. 1 (Henry Holt & Company)
Klinberg, O.	:	Social Psychology, Ch. 1, (Henry Holt & Company, New York 2 <sup>nd</sup> Ed.)
La Piere & Lindzey, G. (1954)	:	Handbook of Social Psychology, Vol. I Chs. 4-5 (Addison Wesley Publishing company Inc, Cambridge)
MC Dougall, W. (1934)	:	An Introduction to Social Pshyology, Ch. 7 (Methuen and Co. Ltd.)
Meyerson, A. (1934)	:	Social Psychology, Ch. 1, (Prentice Hall Inc.)
Newcomb, T.M. (1955)	:	Social Psychology, Ch. 1, (Tavistock Publications Ltd.)
Young, K. (1953)	:	Handbook of Social Psychology,

---

Introduction (Routledge & Kegan  
Paul Ltd., London)

डॉ० आर.एन. सिंह (2008) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान, अग्रवाल  
प्रकाशन, हापुड़ रोड, आगरा

---

### 2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

- 1- समाज मनोविज्ञान के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए इसके क्षेत्र का निर्धारण कीजिए ?
- 2- निम्न पर टिप्पणी लिखिए:-
  - क- क्या समाज मनोविज्ञान, विज्ञान है ?
  - ख- समाज मनोविज्ञान का अर्थ स्वरूप तथा परिभाषाएँ।
- 3- समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र को विस्तार से समझाइए ?



### इकाई-3 सामाजिक व्यवहार की अध्ययन विधियाँ- अवलोकन, सर्वेक्षण, व्यक्ति अध्ययन, समाजमिति एवं प्रयोगात्मक

(Study methods of Social Behavior:- Experimental, Observation, Survey, Case study, Sociometry and)

- 
- 3.1 प्रस्तावना
  - 3.2 उद्देश्य
  - 3.3 अर्थ एवं स्वरूप
  - 3.4 प्रेक्षण विधि
  - 3.5 सर्वेक्षण विधि
    - 3.5.1 वेबर नियम की आलोचना
    - 3.5.2 सर्वेक्षण विधि के मुख्य पद
    - 3.5.3 सामाजिक सर्वेक्षण का महत्व
    - 3.5.4 सामाजिक सर्वेक्षण की सीमाएं
  - 3.6 वैयक्तिक अध्ययन विधि
  - 3.7 समाजमिति विधि
    - 3.7.1 समाजमिति निश्चेषण की प्रविधियां
    - 3.7.2 समाजमिति प्रविधियों के लाभ
    - 3.7.3 समाजमिति प्रविधियों के दोष
  - 3.8 सारांश
  - 3.9 शब्दावली
  - 3.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
  - 3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
  - 3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

---

#### 3.1 प्रस्तावना

समाज मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों से तात्पर्य उस क्रिया विधि से होता है जिसका प्रयोग किसी अध्ययन समस्या के समाधान हेतु किया जाता है। प्रारम्भ में समाज मनोविज्ञान की समस्याओं का अध्ययन अनुमान एवं कल्पना के आधार पर करते थे जिससे निष्कर्ष में वैज्ञानिकता का अभाव मिलता था इसी कारण उनके द्वारा

प्रतिपादित सिद्धांतों में सार्वभौमिकता का गुण भी नहीं पाया जाता था, परंतु जैसे-जैसे समाज मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र विस्तृत होता गया। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार के अध्ययन से वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैध परिणाम प्राप्त करने के लिए जिन विधियों का सहारा लेना शुरू किया उनमें से कुछ अध्ययन विधियों का वर्णन निम्न प्रकार से है:-

- 1- प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)
- 2- प्रेक्षण विधि (Observation Method)
- 3- सर्वेक्षण विधि (Survey Method)
- 4- वैयक्तिक अध्ययन विधि (Case Study Method)
- 5- समाजमिति विधि (Sociometry)

### 3.2 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप -

- सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित अध्ययन में प्रयुक्त विधियों को विस्तार से जानेंगे।
- इन विधियों के अर्थ, परिभाषाओं, प्रकारों के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- इन विधियों के गुण, दोषों तथा समाज मनोविज्ञान में इनके महत्व को जान सकेंगे।

### 3.3 प्रयोगात्मक विधि

समाज मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि का बहुत महत्व है। इस विधि के द्वारा कार्य और कारण सम्बन्ध (cause and effect relation) का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है। समाज मनोविज्ञान में अन्य विधियों की अपेक्षा इस विधि का उपयोग प्रयोग की पुनरावृत्ति के गुण के कारण अधिक होता है। पुनरावृत्ति से प्रयोग की यथार्थता का प्रमाण भी मिल जाता है।

**परिभाषाएँ -**

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगात्मक विधि की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं-

फेस्टिंगर (1953) के अनुसार "प्रयोग का मूल आधार स्वतंत्र चर में परिवर्तन करने से परतन्त्र चर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है।"

जहोदा तथा उसके साथियों (1959) के अनुसार "प्रयोग परिकल्पना के परीक्षण की एक विधि है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रयोगात्मक विधि में चर को योजनानुसार घटा-बढ़ाकर, नियंत्रित दशाओ में निरीक्षण लेकर परिकल्पना को सत्य या असत्य सिद्ध करते हैं।

➤ प्रयोगात्मक विधि के प्रकार -

समाज मनोविज्ञान में सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिए निम्न तीन तरह की प्रयोगविधियां अपनायी गयी हैं।

1. प्रयोगशाला प्रयोग विधि
2. क्षेत्र प्रयोग विधि
3. स्वाभाविक प्रयोग विधि

1) प्रयोगशाला प्रयोग विधि -

प्रयोगशाला प्रयोग विधि वह है जिसमें समाज मनोवैज्ञानिक किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्रयोगशाला में प्रयोग द्वारा करते हैं। इस विधि में वे प्रायः प्रयोज्यों की एक सीमित संख्या का यादृच्छिक रूप से चयन करके उसे आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न समूहों जैसे - प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह में बांटकर प्रयोग करते हैं। स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करने पर उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखा जा सकता परंतु उसके अध्ययन में प्रयोगकर्ता की रुचि नहीं होती, नियंत्रित करके रखा जाता है बहिरंग चर कहा जाता है यदि अन्य चरों को जिनका प्रभाव आश्रित चर पर पड़ जाता है स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करने से आश्रित चर में कुछ परिवर्तन आ जाता है तो सामाजिक मनोवैज्ञानिक इन दोनों चरों में कारण-परिणाम सम्बन्ध के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं। इस तरह से समाज मनोवैज्ञानिक जब प्रयोगशाला विधि द्वारा किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करते हैं, तो वे एक सीमित प्रयोज्यों का यादृच्छिक रूप से चयन करके प्रयोगशाला में एक कृत्रिम परिस्थिति सृजन करते हैं। समाज मनोविज्ञान में प्रयोगशाला प्रयोग विधि के प्रयोग को एक मशहूर प्रयोग जिसे लाइबर्ट तथा बेरोन (1972) ने किया है। इस प्रकार दिखला सकते हैं। इस प्रयोग का उद्देश्य यह देखना था कि टेलीविजन पर लड़ाई-झगड़ा तथा हिंसा की बहुलता वाले दृश्य देखकर क्या बच्चों में आक्रमकण शीलता के स्तर में वृद्धि हो जाती है ? इस प्रयोग में दोनों लिंग के छोटे-छोटे बच्चों ने भाग लिया। बच्चों को यादृच्छिक रूप से दो समूह में बांट दिया गया - आक्रमणशील दृश्य दिखाये जाने वाला समूह तथा तटस्थ दृश्य दिखाये जाने वाला समूह। टेलीविजन देखने के तुरन्त बाद दोनों समूह के बच्चों को एक ऐसी परिस्थिति में रखा गया जिसमें प्रत्येक बच्चों को दूसरे बच्चों को हानि या आघात पहुंचाने का पर्याप्त सुअवसर था। परिणाम में देखा गया कि आक्रमण दृश्य देखने वाले बच्चों में तटस्थ दृश्य देखने वाले बच्चों की अपेक्षा आक्रमणशीलता का स्तर काफी अधिक थी।

प्रयोगशाला प्रयोग विधि के गुण:-

- इस विधि के प्रमुख गुण निम्न हैं:-

1. प्रयोगशाला प्रयोग विधि में चूकि प्रयोग एक काफी नियंत्रित अवस्था में किया जाता है। अत इसके परिणाम की आन्तरिक वैधता काफी अधिक होती है। इसके फलस्वरूप परिणाम अधिक निर्भर योग्य होता है।

2. चूंकि प्रयोग की अवस्था काफी नियंत्रित होती है। अतः चाहकर भी प्रयोगकर्ता किसी प्रकार का पक्षपात तथा पूर्वाग्रह आदि नहीं दिखला पाता है। फलस्वरूप प्रयोगशाला प्रयोग में आत्मनिष्ठता नहीं होती है। प्रयोगकर्ता वैज्ञानिक प्रयोगात्मक डिजाइन का उपयोग कर भिन्न-भिन्न तरह के पक्षपात जैसे - प्रयोगकर्ता से संबंधित पक्षपात, प्रयोज्यों से संबंधित पक्षपात आदि को पूर्णतः नियंत्रित कर लेता है।
3. प्रयोगशाला प्रयोग विधि में चूंकि चरों में जोड़-तोड़ संभव है। अतः प्रयोगकर्ता हर तरह से अपने आप को संतुष्ट कर प्रयोग को अधिक विश्वसनीय बना लेता है। इतना ही नहीं, इस विधि में चूंकि प्रयोगकर्ता एक निश्चित डिजाइन, विधि, सांख्यिकीय विश्लेषण आदि को अपनाता है। अतः कोई भी प्रयोगकर्ता यदि बाद में उस प्रयोग को दोहराना चाहे, तो उसे वह आसानी से दोहरा सकता है।
4. चूंकि प्रयोगशाला प्रयोग के परिणाम का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है, अतः इसका परिणाम अधिक वस्तुनिष्ठ होता है।
- प्रयोगशाला प्रयोग विधि के दोष निम्नलिखित हैं -
  1. इस विधि में सामाजिक व्यवहार का अध्ययन एक कृत्रिम अवस्था में किया जाता है। चूंकि प्रयोगशाला की परिस्थिति कृत्रिम होती है। जिसका संबंध कभी-कभी जीवन को वास्तविक परिस्थिति से न के बराबर होता है। अतः इससे प्राप्त परिणाम इन वास्तविक हालातों के लिए प्रायः सही नहीं होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस विधि में यद्यपि आन्तरिक वैधता होती है फिर भी बाह्य वैधता नहीं होती है। बाह्य वैधता से तात्पर्य प्राप्त परिणामों को जिन्दगी के वास्तविक हालातों में सही-सही लागू करने से होता है।
  2. प्रयोगशाला प्रयोग विधि में बाह्य वैधता के कमी का दूसरा कारण प्रयोज्यों की एक सीमित संख्या होती है। इस विधि द्वारा अध्ययन में प्रायः बहुत थोड़े से व्यक्तियों को ही सम्मिलित किया जाता है और उसमें प्राप्त परिणाम को अन्य सभी व्यक्तियों के लिए सही ठहराया जाता है। आलोचकों का मत है कि यह विधि ऐसा करने में हमेशा समर्थ नहीं होती।
  3. प्रयोगशाला प्रयोग विधि द्वारा सभी तरह के सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन करना संभव नहीं है। जैसे - यदि कोई समाज मनोवैज्ञानिक भीड़, क्रान्ति, युद्ध आदि का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर कैसा पड़ता है, का अध्ययन इस विधि द्वारा करना चाहता है। तो शायद वह ऐसा करने में समर्थ नहीं हो पायेगा क्योंकि प्रयोगशाला में भीड़, क्रान्ति तथा युद्ध की स्थिति पैदा नहीं की जा सकती है।  
इन अवगुणों के बावजूद भी समाज मनोविज्ञान में प्रयोगशाला प्रयोग विधि का उपयोग आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा काफी किया जा रहा है।

## 2) क्षेत्र प्रयोग विधि -

क्षेत्र प्रयोग विधि प्रयोगात्मक विधि की दूसरी प्रमुख उपविधि है। जिसका प्रयोग मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिक किया गया है। इस विधि की आवश्यकता कुछ ऐसे सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में महसूस की गयी। जिसे प्रयोगशाला प्रयोग विधि द्वारा सामान्यतः नहीं किया जा सकता था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भीड़ आन्दोलन कुछ ऐसी सामाजिक समस्याएं हैं जिनका प्रयोगशाला में अध्ययन नहीं किया जा सकता है। फिर भी समाज मनोवैज्ञानिक इन समस्याओं का अध्ययन करना चाहते हैं तो किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्रयोगशाला में न करके वास्तविक परिस्थिति में जिसे समाज मनोवैज्ञानिकों ने क्षेत्र कहा है, किया जाता है। प्रयोगकर्ता इसी वास्तविक परिस्थिति में स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करता है तथा उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखता है। फिशर ने क्षेत्र विधि को परिभाषित करते हुए कहा "क्षेत्र प्रयोग में शोधकर्ता वास्तविक सेटिंग में स्वतंत्र चर को देकर या उसमें जोड़-तोड़ कर एक तरह से हस्तक्षेप करता है और बाद में आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभावों की माप करता है।

क्षेत्र प्रयोग विधि तथा प्रयोगशाला प्रयोग विधि बहुत कुछ एक-दूसरे के समान हैं दोनों विधियों में ही प्रयोग नियंत्रित अवस्थाओं में ही किया जाता है तथा दोनों ही विधियों में प्रयोगकर्ता स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करता है और उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखता है। इतना होते हुए भी क्षेत्र प्रयोग विधि में चूंकि प्रयोग एक स्वाभाविक परिस्थिति में न कि प्रयोगशाला के कृत्रिम परिस्थिति में किया जाता है। अतः प्रायः प्रयोज्यों को यह पता नहीं रहता है कि उन पर किसी प्रकार का प्रयोग किया जा रहा है। इससे यह लाभ होता है कि प्रयोज्य प्रयोगात्मक परिस्थिति में वास्तविक अनुक्रिया करता है न कि किसी तरह की बनावटी अनुक्रिया। इससे क्षेत्र प्रयोग विधि पर निर्भरता थोड़ा बढ़ जाती है।

क्षेत्र प्रयोग विधि का एक उदाहरण इस प्रकार है - मान लीजिए कोई समाज मनोवैज्ञानिक क्षेत्र प्रयोग करके यह देखना चाहता है कि क्या डर से व्यक्ति में संबंध प्रेरणा अर्थात् एक-दूसरे के साथ की आवश्यकता तीव्र हो जाती है। इस प्रयोग में डर स्वतंत्र चर है तथा संबंध प्रेरणा एक आश्रित चर है। मान लीजिए कि प्रयोगकर्ता यह निश्चित करता है कि वह इस प्रयोग में स्वतंत्र चर के दो स्तर रखेगा। अधिक डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति तथा कम डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति को कालेज के 30 छात्रों पर लागू करते हैं जो इस प्रयोग के लिए उपलब्ध होते हैं। प्रयोगकर्ता यादृच्छिक रूप से इन सभी छात्रों को दो भागों में बांट देगा। एक समूह को अधिक डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जाएगा तथा दूसरे समूह को कम डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जायेगा। चूंकि यह एक क्षेत्र प्रयोग है, अतः इन दोनों समूहों को एक वास्तविक परिस्थिति में रखा जायेगा। मान लिया जाये कि अधिक डर की परिस्थिति में काम करने वाले समूह को किसी मकान की तीसरी मंजिल में रख दिया जाता है और उनसे यह कहा जाता है कि मकान की प्रथम दो मंजिलों में भयानक आग लग गयी है।

कम डर की परिस्थिति में काम करने वाले समूह को भी किसी वैसे ही मकान की तीसरी मंजिल में रखा जाता है और उनसे यह कहा जाता है कि बगल के मकान में तीव्र आग लग गयी है। प्रयोगकर्ता दोनों समूहों के व्यवहार का निरीक्षण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि अधिक डर की परिस्थिति में रहने वाले समूह के अधिकतर सदस्य एक दूसरे के साथ होकर परिस्थिति का सामना करते हुए स्थिति सामान्य होने का इंतजार करते हैं जबकि कम डर की परिस्थिति में रहने वाले सदस्यों में इस ढंग का व्यवहार न के बराबर होता है। यदि सचमुच में ऐसा ही निष्कर्ष प्राप्त होता है तो स्पष्टता यह कहा जा सकता है कि व्यक्तियों में संबंधन अभिप्रेरणा बढ़ जाता है।

● क्षेत्र प्रयोग विधि प्रमुख गुण निम्न हैं:-

1. इस विधि में प्रयोग चूँकि वास्तविक परिस्थिति जैसे - बस, रेलवे, प्लेटफार्म, वर्ग, गली के कार्नर आदि में किया जाता है। अतः इससे प्राप्त परिणाम जीवन के वास्तविक हालातो के लिए अधिक सही होते हैं तथा उसका सामान्यीकरण बहुत ही विश्वास के साथ अधिकतर व्यक्तियों के लिए किया जाता है।
2. इस विधि में प्रयोगशाला विधि के ही समान स्वतंत्र चरों को जोड़-तोड़ किया जाता है तथा यथासंभव बहिरंग चरों को भी नियंत्रित करके रखा जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि इस विधि में आन्तरिक वैधता भी बहुत हद तक बनी रहती है। इसमें प्रयोग के परिणाम अधिक निर्भर योग्य हो जाते हैं।

● क्षेत्र प्रयोग विधि के दोष निम्नलिखित हैं:-

1. चूँकि क्षेत्र प्रयोग स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है अतः प्रयोगकर्ता सभी तरह के बहिरंग चरों का नियंत्रण उस सीमा तक नहीं कर पाता जिस सीमा तक एक प्रयोगशाला प्रयोगकर्ता प्रयोगशाला में कर पाता है। इसप्रकार बहिरंग चर क्षेत्र प्रयोग के नियंत्रण के बाहर हो जाते हैं और आश्रित चर को प्रभावित कर देते हैं। जैसे - क्षेत्र में प्रयोग करते समय ऐसा सम्भव है कि बगल में कोई बारात पार्टी बाजे-गाने की धुन बजाते हुए गुजरे जिससे प्रयोग के सभी प्रयोज्यों का ध्यान उस ओर चला जाये और उनको अपने कार्य का ध्यान ही न रहे।
2. क्षेत्र प्रयोग विधि में कभी-कभी स्वतंत्र चरों में जोड़-तोड़ करना कठिन हो जाता है। फलस्वरूप प्रयोगकर्ता को लाचार होकर इस विधि का परित्याग कर प्रयोगशाला प्रयोग विधि अपनाना पड़ता है। जैसे - अगर कोई क्षेत्र प्रयोग इस प्राक्कल्पना की जांच करने के लिए किया जा रहा हो कि जब थके हुए व्यक्ति काफी डर जाते हैं तो उनमें संवधन प्रेरणा आवश्यकता से अधिक होती है। तो शायद यहां दोनों स्वतंत्र चरों अर्थात् डर एवं थकान को क्षेत्र की परिस्थिति में जोड़-तोड़ करना सम्भव नहीं हो पाता। हां, यदि प्रयोगशाला की परिस्थिति होती तो आराम की अवस्था तथा थकान की अवस्था में प्रयोज्यों को यादृच्छिक रूप से आसानी से बांट कर और

प्रयोग किया जा सकता था। क्षेत्र में इन दोनों अवस्थाओं का सृजन करके उसमें प्रयोज्यो को यादृच्छिक रूप से बांटना किसी भी प्रयोगकर्ता के लिए एक टेढ़ी खीर है।

क्षेत्र प्रयोग विधि के गुण दोषों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि क्षेत्र प्रयोग से प्राप्त परिणाम में सामान्यीकरण का गुण बहुत अधिक होता है परन्तु ध्यान रहे कि यह गुण एक महत्वपूर्ण बलिदान देने के बाद प्राप्त होता है और वह है बहिरंग चरों पर पूर्ण नियंत्रण का। वर्केल तथा कूपर ने ठीक ही कहा है, "क्षेत्र प्रयोग में परिणाम के सामान्यीकरण का गुण तो होता है परन्तु उसमें यह गुण प्रायः बहिरंग चरों पर नियन्त्रण की कुरबानी की कीमत पर विकसित होता है।"

### 3) स्वाभाविक प्रयोग विधि -

समाज मनोविज्ञान में स्वाभाविक प्रयोग विधि का भी प्रयोग किया जाता है। हां, इतना अवश्य है कि इस विधि का प्रयोग प्रथम दो विधियों के समान बहुत नहीं हुआ है। कभी-कभी समाज मनोवैज्ञानिकों को कुछ इस प्रकार के सामाजिक व्यवहारों का भी अध्ययन करना पड़ता है जिसमें स्वतंत्र चर तो होते हैं परन्तु कुछ नैतिक तथा कानूनी प्रतिबन्ध के कारण उसमें जोड़-तोड़ न तो प्रयोगशाला में किया जा सकता है और न ही क्षेत्र में जैसे - महामारी, छुआछूत की बीमारियां, स्कूल या कॉलेज में असफलता, परिवार में किसी महत्वपूर्ण सदस्य की मृत्यु, बाढ़, भूकम्प आदि कुछ इस प्रकार के कारक हैं जिन्हें कोई भी प्रयोगकर्ता व्यक्तियों के व्यवहारों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिए अपनी ओर से उत्पन्न नहीं कर सकता है। अतः वह एक ऐसे समय तक इंतजार करता है जब इस प्रकार के प्राकृतिक कारक अपने आप उत्पन्न हो जायें ताकि उस समय वह व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर सके तथा उसमें संबंधित आंकड़ों का संकलन कर सके। इसे ही स्वाभाविक प्रयोग विधि की संज्ञा दी जाती है।

स्वाभाविक प्रयोग विधि के एक उदाहरण का उल्लेख कर सकते हैं। एक अध्ययन जिसका मुख्य उद्देश्य यह देखना था कि व्यक्तियों की मनोवृत्ति कहां तक उसके भूमिका पद द्वारा प्रभावित होती है। जिस औद्योगिक संगठन में वे यह अध्ययन कर रहे थे, उनमें कुछ सामान्य कर्मचारियों को पर्यवेक्षक के पद पर पदोन्नति कर दी गयी थी तथा कुछ कर्मचारियों को संघ के प्रबन्धक के पद पर चुन लिया गया था इसके बाद इन कर्मचारियों की मनोवृत्ति व्यवस्थापक तथा संघ के प्रति मापी गयी परिणाम में देखा गया कि जिन कर्मचारियों को पर्यवेक्षक का पद दे दिया गया था उसकी मनोवृत्ति व्यवस्थापक के प्रति पहले से अधिक अनुकूल हो गयी तथा जिन कर्मचारियों को संघ का प्रबंधक बना दिया गया था, उनकी मनोवृत्ति संघ के प्रति पहले से अधिक अनुकूल हो गयी। फिर बाद में जब उस औद्योगिक संगठन में आर्थिक मंदता आ गयी तो कुछ पर्यवेक्षकों को पुनः पहले के पद पर पदान्वत कर दिया गया और अब उनकी मनोवृत्ति व्यवस्थापक के प्रति उतनी अनुकूल नहीं रह गयी। परन्तु जिन पर्यवेक्षकों को पदावनत नहीं किया गया, उनकी मनोवृत्ति व्यवस्थापक के प्रति अनुकूल ही बनी रही।

- स्वाभाविक प्रयोग विधि के प्रमुख गुण निम्न हैं:-
  1. इस विधि में प्रयोग बिल्कुल ही वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है। अतः इसके परिणाम की वैधता पर किसी प्रकार का कोई शक नहीं किया जा सकता है।
  2. इस प्रयोग विधि में प्रयोगकर्ता को परियोजन कम करना होता है तथा साथ ही साथ कोई विशेष नियंत्रण की जरूरत नहीं पड़ती है।
- स्वाभाविक प्रयोग विधि के दोष निम्न हैं:-
  1. इस विधि में प्रयोगकर्ता को एक खास समय के लिए इन्तजार करना पड़ता है। जब तक कोई घटना घट नहीं जाती है वह प्रयोग नहीं कर सकता है। इसमें समय की काफी बर्बादी होती है। जैसे - यदि कोई समाज मनोवैज्ञानिक इस विधि द्वारा भूकम्प के दौरान व्यक्तियों में होने वाले सामाजिक अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करना चाहता है। तो उसे उस समय तक इन्तजार करना होगा जब तक कि भूकम्प न हो।
  2. इस तरह के प्रयोग में प्रयोज्य का चयन कोई वैज्ञानिक विधि द्वारा प्रायः नहीं होता है। जो कोई भी मिल जाता है उसे प्रयोज्य बना लिया जाता है। इससे परिणाम दोषपूर्ण हो जाते हैं और उस पर निर्भरता भी कम हो जाती है।
  3. इस तरह के प्रयोग में अनिश्चितता अधिक होती है। प्रयोगकर्ता को यह पहले से मालूम नहीं रहता कि अमुक स्वाभाविक परिस्थिति कब उत्पन्न होगी। जैसे - प्रयोगकर्ता को यह पहले से मालूम नहीं रहता कि अमुक समय में भूकम्प आयेगा या अमुक समय में कर्मचारियों की पदोन्नति होगी। फलस्वरूप, वह प्रयोग के बारे में कोई वैज्ञानिक कार्यक्रम तैयार नहीं कर पाता। जिसमें प्रयोग के परिणाम पर बुरा असर पड़ता है।

### 3.4 प्रेक्षण विधि

समाज मनोविज्ञान में प्रेक्षण विधि द्वारा सामाजिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। समाज मनोवैज्ञानिक जब अध्ययन किये जाने वाले चर में जोड़-तोड़ नहीं कर पाते, तो वे इस विधि का सहारा लेते हैं। प्रेक्षण विधि में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण प्रायः एक स्वाभाविक परिस्थिति में करता है। प्रेक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों को एक खास समय तक कभी हल्का हस्तक्षेप करते हुए, तथा कभी बिना किसी तरह के हस्तक्षेप किये ही देखता तथा सुनता है। उनका एक रिकार्ड तैयार करता है। जिसकी बाद में विश्लेषणात्मक व्याख्या की जाती है।

#### परिभाषाएँ -

यंग (1954) के अनुसार "प्रेक्षण-नेत्रो द्वारा सावधानी से किये गये अध्ययन को व्यवहार, सामाजिक संस्थाओं और किसी पूर्ण वस्तु को बनाने वाली पृथक इकाईयों का प्रेक्षण करने के लिए एक विधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।"



गुडे एवं हाट (1954) के अनुसार "विज्ञान प्रेक्षण से ही प्रारम्भ होता है और अंत में अपने तथ्यों की पुष्टि के लिए प्रेक्षण का ही सहारा लेता है।"

इसकी विभिन्न उपविधियों का वर्णन करने से पहले हमें उन तीन पहलुओं को समझना आवश्यक हो जाता है, जो सभी तरह के प्रेक्षण में पाये जाते हैं बिकमैन (Bickman 1976) के अनुसार वे तीन पहलू निम्नांकित हैं:-

1. छिपाव की मात्रा:- समाज मनोवैज्ञानिकों को प्रेक्षण विधि द्वारा सामाजिक व्यवहार के अध्ययन करने में इस बात का निर्णय करना होता है कि प्रेक्षक का परिचय अन्य व्यक्तियों से जिनका प्रेक्षण किया जाने वाला है, गुप्त रखा जाये या बता दिया जाये।
2. प्रेक्षक की भूमिका:- समाज मनोवैज्ञानिक को या शोधकर्ता को यह भी निर्णय करना होता है कि प्रेक्षण को अन्य व्यक्तियों जिनका प्रेक्षण किया जाने वाला है की सामाजिक अन्तःक्रियाओं के साथ हस्तक्षेप करना चाहिए या नहीं।
3. प्रेक्षक प्रक्रियाओं में संगठन की मात्रा:- शोधकर्ता को यह भी निर्णय लेना पड़ता है कि प्रेक्षण का स्वरूप संगठित होगा या असंगठित होगा। असंगठित प्रेक्षण में प्रेक्षक के लिए अन्य व्यक्तियों जिनका प्रेक्षण किया जाने वाला है, के साथ हुए अनुभव द्वारा प्राप्त विचार ही काफी होते हैं परन्तु संगठित प्रेक्षण में व्यक्तियों के व्यवहारों की सार्थकता की जांच प्रेक्षक अन्य ढंग से भी करता है।

➤ प्रेक्षण के प्रकार:-

- रिस (Reiss, 1971) ने प्रेक्षण को वैज्ञानिक सूचनाएं उत्पन्न करने की क्षमता के आधार पर दो भागों में बांटा है –
  1. अक्रमबद्ध प्रेक्षण
  2. क्रमबद्ध प्रेक्षण
- 1. अक्रमबद्ध प्रेक्षण:- अक्रमबद्ध प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का अध्ययन मात्र अपने दिन-प्रतिदिन के अनुभवों के ही आधार पर कर लेता है। प्रेक्षण करने में वह न तो कोई स्पष्ट नियम को ही अपनाता है और न ही किसी वैज्ञानिक तार्किक क्रम पर अपने प्रेक्षण को आधारित करता है। जैसे - जब कोई शोधकर्ता बस में बैठे व्यक्तियों के भीड़-व्यवहार का अचानक प्रेक्षण करना शुरू कर देता है तो यह अक्रमबद्ध प्रेक्षण का एक उदाहरण होगा। इस तरह के प्रेक्षण का उपयोग समाज मनोविज्ञान में बहुत कम किया जाता है।
- 2. क्रमबद्ध प्रेक्षण:- क्रमबद्ध प्रेक्षण में, जैसा कि रिस ने कहा है, प्रेक्षण का आधार एक निश्चित तथा स्पष्ट नियम होता है ताकि इस तरह के प्रेक्षण की पुनरावृत्ति की जा सके। इस तरह के प्रेक्षण की नियमावली एक वैज्ञानिक एवं तार्किक क्रम पर आधारित होती है। जैसे - यदि कोई समाज मनोवैज्ञानिकों बच्चों में आक्रमणशीलता का अध्ययन करने के लिए उन्हें एक खास जगह ले जाता है और अपने पूर्वनियोजित कार्यक्रम के अनुसार कुछ

इस प्रकार की क्रियाओं की शुरुआत करता है जिनमें बच्चे एक-दूसरे के प्रति आक्रमणशीलता दिखा सके तो यह क्रमबद्ध प्रेक्षण का उदाहरण होगा। समाज मनोविज्ञान में क्रमबद्ध प्रेक्षण का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है।

- प्रेक्षक द्वारा की गयी भूमिका के अनुसार समाज मनोवैज्ञानिकों ने प्रेक्षण विधि को दो भागों में बांटा है।
  1. सहभागी प्रेक्षण
  2. असहभागी प्रेक्षण
- 1. सहभागी प्रेक्षण:- इस तरह के प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के समूह की क्रियाओं में स्वयं हाथ बंटाता है और उनके व्यवहारों का प्रेक्षण भी करता है। सचमुच में यहां प्रेक्षक का उद्देश्य व्यवहारों का ठीक ढंग से वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण करना होता है और इस ख्याल से ही वह समूह की क्रियाओं में हाथ बंटाता है। प्रायः प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहार के हर पहलू के बारे में अपना विस्तृत रिकार्ड तैयार करता है और बाद में उसका विश्लेषण करता है। इस विधि में प्रेक्षक व्यक्तियों के समूह का पूर्णकालीन सदस्य भी बन कर कार्य कर सकता है या अंशकालीन सदस्य बनकर भी कार्य कर सकता है। चाहे उसकी सदस्यता जिस प्रकार की हो, वह सक्रिय रूप से समूह की क्रियाओं में भाग लेता है। जब प्रेक्षक भी भूमिका के बारे में व्यक्तियों को पता नहीं होता है, तो उसे प्रच्छन्न सहभागी प्रेक्षण और जब लोगों को प्रेक्षक की भूमिका के बारे में पता होता है तो उसे अतिप्रच्छन्न सहभागी प्रेक्षण कहा जाता है। सहभागी प्रेक्षण प्रायः असंरचित या असंगठित होता है। दूसरे दूसरों में, इस विधि में प्रेक्षक को इस बात की छूट होती है कि वह स्वयं ही यह निश्चय करे कि उसे क्या प्रेक्षण करना है। उसे कैसे रिकार्ड करना है, आदि इस तरह की प्रेक्षण विधि में प्रेक्षक अपना परिचय सदस्यों में प्रायः छिपा कर रखता है या वह कोई ऐसे भूमिका अपना कर समूह में प्रवेश करता है। जिससे प्रेक्षण किये जाने वाले सामाजिक व्यवहार का पैटर्न प्रभावित न हो। लेकिन यह कोई जरूरी नहीं है कि वह अपना परिचय हमेशा छिपाकर ही रखे। हां इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि जब व्यक्तियों को पता नहीं होता है कि उनके बीच कोई एक प्रेक्षक भी है जो उनके व्यवहारों का प्रेक्षण कर रहा है, तो वह बिल्कुल ही स्वभाविक ढंग से व्यवहार करता है। उसके भिन्न-भिन्न व्यवहारों के पैटर्न में कोई दिखावापन नहीं होता है।
- सहभागी प्रेक्षण के प्रमुख गुण निम्न हैं:-
  1. इस तरह के प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण एक स्वभाविक संदर्भ में करता है। फलस्वरूप, वह व्यक्तियों के प्रत्येक व्यवहारिक पहलू जिससे किसी व्यवहार का विशेष अर्थ समझा जा सकता है, को सही-सही रिकार्ड कर उसका विश्लेषण करने में समर्थ होता है। इससे उसके परिणाम की सार्थकता काफी बढ़ जाती है।

2. प्रायः यह देखा गया है कि सहभागी प्रेक्षण कई दिनों तक चलता है। परिणाम स्वरूप, इससे जो सूचनाएं प्राप्त होती हैं, वे काफी विस्तृत तथा अर्थपूर्ण होती हैं। उनका विश्लेषण करने से प्राप्त परिणाम प्रश्नावली विधि में प्राप्त सूचनाओं से मिले परिणाम से कहीं अधिक अर्थपूर्ण होता है।
- प्रेक्षण विधि के दोष निम्न हैं:-
1. चूंकि प्रेक्षक इस विधि में समूह की क्रियाओं में सक्रिय भाग लेता है। जबकि वह जानता है कि उसे इन क्रियाओं से कोई मतलब नहीं है इसलिए धीरे-धीरे वह समूह में अपना एक विशेष पद बना लेता है और अपनी सक्रियता कम कर देता है। परिणाम स्वरूप, वह वास्तव में बहुत सी सामाजिक अन्तःक्रियाओं को रिकार्ड करना ही भूल जाता है और इस तरह से उसका प्रेक्षण दोषपूर्ण हो जाता है। इतना ही नहीं, वह अपनी विशेष भूमिका द्वारा समूह के पूरे सदस्यों के व्यवहार के पैटर्न को ही कभी-कभी बदल देता है।
  2. प्रेक्षक धीरे-धीरे अपनी मानवीय कमजोरियों को दिखाना शुरू कर देता है। प्रायः यह देखा गया है कि कुछ समय के बाद प्रेक्षक समूह के अन्य व्यक्तियों के साथ सावंगिक रूप से उलझ जाता है। वह किसी दुखद घटना के होने पर अन्य सदस्यों के साथ सहानुभूति दिखलाने लगता है। व्यक्तियों के व्यवहार पर इन घटनाओं के प्रभाव को रिकार्ड करना भूलकर वह अपना समय सहानुभूति दिखलाने में व्यर्थ बर्बाद कर देता है। जितना ही सावंगिक उलझन का स्तर अधिक होता है। इसके प्रेक्षण से आत्मनिष्ठता उतनी ही अधिक बढ़ जाती है।
  3. सहभागी प्रेक्षण से प्राप्त आंकड़ों में माननीकरण कम होता है। इसका कारण यह है कि धीरे-धीरे प्रेक्षक का अनुभव इस हद तक बदल जाता है कि वह व्यक्तियों के व्यवहारों का सही-सही प्रेक्षण नहीं कर पाता। फलस्वरूप दूसरे प्रेक्षक द्वारा किया गया प्रेक्षण पहले प्रेक्षक के प्रेक्षण से काफी भिन्न हो जाता है।
  4. सहभागी प्रेक्षण में चूंकि प्रेक्षक किसी तरह का जोड़-तोड़ नहीं कर सकता, अतः उसे उस समय तक इन्तजार करना होता है जब तक कि सदस्यों द्वारा अमुक तरह की सामाजिक अन्तःक्रिया स्वयं न कर ली जाये। इसमें समय की काफी बर्बादी होती है। यह अवगुण असहभागी प्रेक्षण के साथ भी सही उतरता है।
2. असहभागी प्रेक्षण:- असहभागी प्रेक्षण द्वारा भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न तरह के सामाजिक अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया है। असहभागी प्रेक्षण वह विधि है जिसमें प्रेक्षक किसी सामाजिक व्यवहार का प्रेक्षण स्वभाविक परिस्थिति में करता है। परन्तु प्रेक्षण किये जाने वाले व्यवहारों या क्रियाओं को करने में वह हाथ नहीं बंटता है। इस तरह का प्रेक्षण संगठित या संरचित होता है। फलस्वरूप प्रेक्षक पहले से इस बात की पूर्वयोजना बना लेता है कि स्वभाविक परिस्थिति का स्वरूप कैसा होगा, प्रेक्षकों की उपस्थिति से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान कैसे किया जा सकता है आंकड़ों में कहां तक सादृश्यमूलता होगी, आदि। इस तरह से हम देखते हैं कि असहभागी प्रेक्षण सहभागी प्रेक्षण से भिन्न है। इन दोनों में प्रमुख विभिन्नता निम्न है।

- i. यद्यपि सहभागी प्रेक्षण तथा असहभागी प्रेक्षण दोनों ही स्वभाविक परिस्थितियों में ही किये जाते हैं। फिर भी पहले तरह के प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों की क्रियाओं के साथ सक्रिय भाग लेता है। जबकि दूसरे तरह के प्रेक्षण में वह ऐसी क्रियाओं के साथ भाग नहीं लेता है। निष्क्रिय रूप से वह इन क्रियाओं का मात्र प्रेक्षण करता है।
- ii. सहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक का परिचय प्रायः छिपा रहता है। परन्तु असहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक प्रायः व्यक्तियों के समूह के बीच बैठकर उनके व्यवहारों का प्रेक्षण करता है। अतः उनका परिचय छिपा रहने का प्रश्न ही नहीं उठता है। हां, कुछ ऐसे अध्ययन समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा अवश्य किये गये जिनमें असहभागी प्रेक्षण की विधि तो अपनायी गयी है परन्तु साथ ही साथ प्रेक्षक एक तरफा, शीशे के पीछे छिपा रहता है। जहां वह सभी व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण तो करता है परन्तु उसे कोई नहीं देख पाता है।
- iii. सहभागी प्रेक्षण असंगठित या असंरचित होता है। जबकि असहभागी प्रेक्षण संगठित या संरचित होता है।

समाज मनोविज्ञान में असहभागी प्रेक्षण विधि का उपयोग प्रायः संवर्ग तंत्र के सहारे किये गया। संवर्ग तंत्र विधि में प्रेक्षक किसी दिये हुए व्यवहार की बारंबारता को एक विशेष सामाजिक अन्तःक्रिया के दौरान रिकार्ड करता है। सबसे महत्वपूर्ण संवर्ग तंत्र का विकास बेल्ज ने किया जिसे अन्तःक्रिया प्रक्रिया विश्लेषण की संज्ञा दी गयी है। बेल्ज ने इस तंत्र में कुल बारह प्रकार के प्रेक्षणों का रिकार्ड किया। जिसे बेल्स ने चार प्रमुख भागों में बांटा है -

- 1- सामाजिक सांवेगिक धनात्मक क्षेत्र
- 2- सामाजिक सांवेगिक ऋणात्मक क्षेत्र,
- 3- कार्यक्षेत्र प्रश्न तथा
- 4- कार्यक्षेत्र उत्तर।

इस संवर्ग तंत्र में प्रेक्षक व्यक्तियों के छोटे समूह में बैठकर उनकी अन्तःक्रियाओं का प्रेक्षण उपयुक्त संवर्ग में करता है। बाद में क्लैण्डर्स ने बेल्जा की इस अन्तःक्रिया प्रक्रिया विश्लेषण का अनुकूलन वर्ग में छात्र-शिक्षक अन्तःक्रियाओं का प्रेक्षण करने के लिए किया। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि असहभागी प्रेक्षण कभी भी पूर्ण रूपेण असहभागी नहीं हो सकता है। प्रेक्षक को किसी न किसी ढंग से व्यक्तियों के साथ कार्य में कुछ न कुछ हिस्सा अवश्य बांटना पड़ता है। अतः असहभागी प्रेक्षण को गुडे तथा हाट ने अर्ध असहभागी प्रेक्षण कहा है।

● असहभागी प्रेक्षण के गुण निम्न हैं:-

1. असहभागी प्रेक्षण चूंकि संरचित या संगठित होता है, इसलिए इससे प्राप्त आंकड़े अधिक विश्वसनीय निरूपक तथा निर्भर योग्य होते हैं। संरचित होने से प्रेक्षक प्रेक्षण के भिन्न-भिन्न पहलुओं के बारे में अच्छी तरह से सोंच-विचार करता है और उसमें संबंधित प्रक्रियाओं के बारे में पहले से एक निर्णय कर रखता है।

2. असहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक सामाजिक व्यवहार के किसी विशेष पहलू पर अधिक ध्यान दे पाता है तथा उसमें संबंधित जांच प्रश्नों का समाधान ढूंढने के लिए उसे अधिक से अधिक अवसर भी मिलता है। इसलिए कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे सहभागी प्रेक्षण की तुलना में अधिक वैकल्पिक माना है।
- असहभागी प्रेक्षण के प्रमुख अवगुण निम्न हैं :-
1. असहभागी प्रेक्षण का सबसे बड़ा दोष जो कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने बतलाया है, वह यह है कि इस तरह के प्रेक्षण में व्यक्तियों का व्यवहार जिनका प्रेक्षण किया जा रहा है बिल्कुल स्वभाविक नहीं होता है क्योंकि व्यक्तियों के मन में हमेशा यह बात रहती है कि उनके व्यवहार का प्रेक्षण किया जा रहा है। परन्तु यह आलोचना सभी समाज मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं है। कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यह आलोचना बहुत महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि दो, तीन दिन के बाद व्यक्तियों का व्यवहार बिल्कुल ही सामान्य एवं स्वभाविक हो जाता है। इतना ही नहीं, ऐसा कोई प्रयोगात्मक सबूत नहीं है जिसके आधार पर कहा जाये कि असहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक की उपस्थिति से अध्ययन किये जाने वाले व्यवहार की स्वभाविकता प्रभावित होती है। ब्लैक एवं चैम्पियन के अनुसार “अभी तक कोई ऐसा सबूत नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जाये कि असहभागी प्रेक्षक की उपस्थिति का कुप्रभाव अध्ययन किये जाने वाले व्यवहार पर पड़ता है।”
  2. कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने यह भी कहा है कि जिस तरह सहभागी प्रेक्षण में परिस्थिति बिल्कुल स्वभाविक होती है, उसी तरह की परिस्थिति असहभागी प्रेक्षण में नहीं हो पाती हैं। इस परिस्थिति में उस्थित सभी व्यक्ति इस बात से काफी सचेत रहते हैं कि कोई अजबूबर व्यक्ति उसके बीच है जो पता नहीं क्या-क्या देख रहा, सुन रहा है तथा समझ रहा है।

### 3.5 सर्वेक्षण विधि

सर्वेक्षण विधि के द्वारा मुख्य रूप से सामाजिक तथा शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। यद्यपि इस विधि का प्रयोग 18वीं शताब्दी में ही कर लिया गया था तथापि इसकी महत्ता अधिक होने के कारण आज भी प्रचलन में है। Survey शब्द Sur (sor) + vey (veeir) दो दूसरों से मिलकर बना है जिसका मौलिक अर्थ 'ऊपर से देखना' या 'ऊपर से अवलोकन' करना है।

#### परिभाषा :-

करलिंगर (1973) के अनुसार “सर्वेक्षण अनुसंधान सामाजिक, वैज्ञानिक अन्वेषण की वह शाखा है जिसके अंतर्गत छोटे और बड़े समष्टियों (जनसंख्याओं) से चयन किये गये प्रतिदर्शा के माध्यम से सापेक्षिक घटनाओं, वितरणों तथा सामाजिक तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक चरों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।”

सर्वेक्षण विधि का प्रयोग समष्टि से चुने गये प्रतिदर्श की सहायता से किया जाता है। यह प्रतिदर्श यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा चुना जाता है अतः इस प्रकार सर्वेक्षण अनुसंधान की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। ऐसे अनुसंधान का उद्देश्य एक निश्चित समय में अधिक से अधिक सूचनाएं इकट्ठी करना होता है। समाज मनोविज्ञान में सर्वेक्षण अनुसंधान की सहायता से मनोवृत्ति, जनमत, सामूहिक व्यवहार, प्रचार तथा राष्ट्रीय एकता आदि से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

### 3.5.1 सर्वेक्षण के प्रकार -

- करलिंगर (1973) के सर्वेक्षण विधि के उपयोग के आधार पर निम्न प्रकारों का उल्लेख किया है-
- 1. निरीक्षण सर्वेक्षण (**Observatin Survey**):- ऐसे सर्वेक्षण का प्रयोग निरीक्षण विधि की सहायता से किया जाता है।
- 2. टेलीफोन सर्वेक्षण (**Telephone Survey**):- टेलीफोन की सहायता से किया गया सर्वेक्षण टेलीफोन सर्वेक्षण कहलाता है। इस सर्वेक्षण का लाभ टेलीफोन की सुविधा वाली अध्ययन इकाइयों तक ही सीमित है। इसके अंतर्गत गहन और विस्तृत सूचनाएं तो प्राप्त नहीं हो पाती लेकिन दूर-दूर स्थित अध्ययन इकाइयों से शीघ्र सूचनाएं मिल जाती हैं।
- 3. सामयिक सर्वेक्षण (**Penal Survey**):- अध्ययनकर्ता के एक से अधिक होने पर ही इस सर्वेक्षण का प्रयोग किया जाता है।
- 4. साक्षात्कार सर्वेक्षण (**Interview Survey**):- व्यक्तिगत साक्षात्कार विधि की सहायता से यह सर्वेक्षण किया जाता है इसमें साक्षात्कार प्रश्नावली का निर्माण कर अध्ययन समस्या से संबंधित आंकड़ों को इकट्ठा कर उनका विश्लेषण कर समस्या के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है। मनोवृत्ति, नेतृत्व, जनमत आदि से सम्बन्धित समस्या के समाधान में यह विधि प्रयुक्त होती है।
- 5. डाक प्रश्नावली सर्वेक्षण (**Mail Questionnaire Survey**):- इस प्रकार के सर्वेक्षण में अध्ययन समस्या से सम्बन्धित प्रश्नावली बनाकर अध्ययन इकाइयों के पास डाक द्वारा भेजी जाती है।

### 3.5.2 सर्वेक्षण विधि के मुख्य पद :-

- 1- अध्ययन समस्या को निश्चित रूप प्रदान करना (**To specify the Problem**):-
  - क- समस्या के उद्देश्य निर्धारित करना।
  - ख- समस्या के अध्ययन हेतु विधि का चयन।
  - ग- अध्ययन योजना की रूपरेखा का निर्धारण।
- 2- प्रतिचयन योजना (**Sampling Plan**):-
  - क- सम्पूर्ण जनसंख्या का निर्धारण।

- ख- अध्ययन इकाईयों की संख्या निर्धारित करना।  
 ग- प्रतिचयन की योजना तथा योजना लागू करना।
- 3- साक्षात्कार प्रश्नावलीका निर्माण (**Construction of Interview Questionnaire**)
- 4- आंकड़ों को इकट्ठा करना (**Data collection**):-
- क- उत्तरदाताओं से सम्पर्क स्थापित करना।  
 ख- घटनास्थल का निरीक्षण करना।  
 ग- क्षेत्र कार्यकर्ताओं का चयन और जांच करना।  
 घ- आंकड़ों का संग्रहण
- 5- आंकड़ों का विश्लेषण (**Analysis of Data**):-
- क- प्रत्युत्तरों को संकेत प्रदान करना  
 ख- प्रत्युत्तरों की सारणी बनाना  
 ग- अर्न्तवस्तु का विश्लेषण
- 6- प्रतिवेदन लिखना (**Writing the Report**)

### 3.5.3

#### 3.5.4 सामाजिक सर्वेक्षण का महत्व :-

1. इस विधि की सहायता से समाज मनोविज्ञान की समस्याओं का विस्तृत और गहन अध्ययन सम्भव है।
2. सर्वेक्षण अनुसंधान में यादृच्छिक प्रतिचयन का उपयोग होने के कारण इस विधि से प्राप्त परिणाम अधिक विश्वसनीय, शुद्ध और वैज्ञानिक होते हैं।
3. अन्य विधियों की तुलना में यह विधि अधिक सरल, सुविधाजनक और आर्थिक दृष्टि से भी सुलभ है।

#### 3.5.4 सामाजिक सर्वेक्षण की सीमाएं:-

1. इस विधि द्वारा अध्ययन करते समय शोधकर्ता के मनोभावों का प्रभाव अध्ययन पर पड़ता है।
2. हर समस्या का अध्ययन करने में अध्ययन इकाईयां यादृच्छिक प्रतिचयन द्वारा चुनी गयी हो ऐसा सम्भव नहीं है।
3. सर्वेक्षण विधि द्वारा कम समय में अधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है जिससे समस्या के सम्बन्ध में गहरी जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती।
4. सर्वेक्षण विधि में प्रश्नावली का निर्माण तथा क्रियान्वयन से सम्बन्धित कठिनाई भी आती है। यदि प्रश्नावली का निर्माण ठीक प्रकार हो भी जाये तो लोगों द्वारा दिये गये उत्तर लापरवाही पूर्ण होने पर परिणामों की विश्वसनीयता और वैधता समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वेक्षण विधि में कुछ कठिनाइयां होते हुए भी शैक्षिक तथा सामाजिक समस्याओं का अध्ययन तथा विश्लेषण इस विधि द्वारा सम्भव है इस कारण समाज मनोविज्ञान की यह एक महत्वपूर्ण विधि है।

### 3.6 वैयक्तिक अध्ययन विधि

वैयक्तिक अध्ययन विधि के अंतर्गत सामाजिक इकाई के सम्पूर्ण स्वरूप की खोज तथा उसकी विवेचना के सम्बन्ध में सूक्ष्म और गहन अध्ययन किया जाता है। दूसरे दूसरों में सामाजिक इकाई के स्वरूप के आधार पर पर्याप्त सूचनाएं एकत्र करके भूत और वर्तमान करके समंवित्र करके गुणात्मक अध्ययन किया जाता है।

#### परिभाषाएँ:-

बर्गेस के अनुसार “वैयक्तिक अध्ययन विधि सामाजिक सूक्ष्म दर्शक यंत्र है।”

सिन पाओ यंग (1953) के अनुसार “वैयक्तिक अध्ययन विधि को एक छोटे, सम्पूर्ण और गहन अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसमें अनुसंधानकर्ता किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनाओं का व्यवस्थित संकलन करने के लिए अपनी समस्त क्षमताओं और विधियों का ऐसे उपयोग करता है कि यह स्पष्ट हो सके कि एक स्त्री या पुरुष समाज की इकाई के रूप में कैसे कार्य करते हैं।”

1. वैयक्तिक अध्ययन विधि की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:-

- a. सम्पूर्ण अध्ययन (**Whole Study**):- इस अध्ययन विधि में इकाई के सम्पूर्ण स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। गुडे एवं हाट (1952) का मत है कि इस अध्ययन विधि में “किसी सामाजिक इकाई के सभी रूपों को ध्यान में रखकर अध्ययन किया जाता है।” अर्थात् सामाजिक इकाई के जीवन और संगठन सम्बन्धी सभी तथ्यों का अध्ययन किया जाता है।
- b. गुणात्मक अध्ययन (**Qualitative Syudy**):- इस विधि के द्वारा जो आंकड़े प्राप्त होते हैं वे संख्या के रूप में न होकर दूसरों के रूप में होते हैं। इस प्रकार प्राप्त आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण न होने पर अध्ययन इकाई के सम्बन्ध में जो खोजपरक विवेचना की जाती है वह बहुत महत्वपूर्ण होती है।
- c. गहन अध्ययन (**Intensive Study**):- वैयक्तिक अध्ययन विधि में अध्ययन छोटा होता है लेकिन सूक्ष्म और गहन होता है।
- d. व्यक्तिगत अध्ययन (**Individual Study**):- वैयक्तिक अध्ययन विधि की इस विशेषता के अंतर्गत किसी एक ही इकाई का किसी एक समय में अध्ययन किया जाता है। यह इकाई जाति, परिवार, संस्था घटना या आदत आदि हो सकती है। गुडे एवं हाट (1952) के अनुसार “इसमें किसी सामाजिक इकाई के समस्त रूपों का व्यक्तिगत अध्ययन किया जाता है।”



- e. बहुपक्षीय अध्ययन (**Multidirectional Study**):- इसविधि के द्वारा होने वाले बहुपक्षीय अध्ययन के अंतर्गत इकाई के विकास से सम्बन्धित अनेक कारकों जैसे- सामाजिक कारक, आर्थिक कारक, पर्यावरणीय कारक, जैविक कारक, मनोवैज्ञानिक कारक की खोज, मूल्यांकन तथा विवेचना की जाती है।
2. वैयक्तिक अध्ययन विधि के लाभ (**Advantages of Case Study Method**) :-
- a. सूक्ष्म अध्ययन (**Microscopic Study**):- वैयक्तिक अध्ययन विधि में अध्ययन इकाई के सभी पहलुओं का सूक्ष्मतम विश्लेषण कर अध्ययन किया जाता है। इसीलिए बर्गेस ने इस विधि को Social Microscope कहा है।
- b. गहन अध्ययन (**Intensive Study**):- इस विधि के द्वारा सामाजिक इकाई का गहन अध्ययन अनेक स्रोतों से सूचना प्राप्त कर, तथ्यों को संकलित कर किया जाता है।
- c. मानव स्वभाव की व्याख्या में सहायक (**Helpful in Interpreting in human nature**):- इस विधि की सहायता से मानव के स्वभाव की जितनी सूक्ष्म व्याख्या होती है उतनी अन्य किसी विधि से नहीं।
- d. अभिवृत्तियों के विकास के अध्ययन में सहायक (**Helpful in the study of development of attitudes**):- इस विधि द्वारा अभिवृत्तियों के विकास का सूक्ष्मतम ढंग से अध्ययन किया जाता है।
- e. लचीली अध्ययन विधि (**Flexible Study method**):- इस विधि में अन्य विधियों तथा तथ्यों के संकलन हेतु यंत्रों का आवश्यकतानुसार प्रयोग होने के कारण यह विधि काफी लचीली है।
- f. इस विधि में अन्य विधियों के उपयोग की सुविधा (**Facility of using other methods**):- इस विधि द्वारा अध्ययन करते समय केस स्टडी प्रपत्र के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर निरीक्षण, साक्षात्कार, प्रश्नावली तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता भी ली जा सकती है।
3. वैयक्तिक अध्ययन विधि के दोष तथा सीमाएं (**Disadvantages and Limitations of Case Study Method**):-
- a. सीमित अध्ययन इकाईयां (**Limited Study units**):- इस विधि में अध्ययन इकाईयों की संख्या एक या केवल कुछ इकाईयों तक ही सीमित रहती है। जिसके फलस्वरूप इसमें दोष उत्पन्न हो जाते हैं।
- b. प्रामाणिक विधि का अभाव (**Lack of Standard Procedure**):- इस विधि में चूंकि अनेक विधियों तथा तथ्यों के संकलन हेतु यंत्रों का उपयोग होता है इसलिये वैयक्तिक अध्ययन विधि की प्रक्रिया के पद भिन्न-भिन्न अध्ययनों के लिए भिन्न-भिन्न होते हैं। शोधकर्ता के अनुभवी न होने के कारण उसे अध्ययन विधि की प्रक्रिया सुनिश्चित करने में कठिनाई होती है।
- c. मात्रात्मक आंकड़ों का अभाव (**Lack of Quantitative data**):- इस विधि में तथ्य लम्बे तथा विवरण के रूप में होते हैं। मात्रात्मक आंकड़ों के अभाव में तथ्यों का विश्लेषण ठीक ढंग से नहीं हो पाता।

- d. अधिक खर्चीली विधि (**More expensive method**):- इस विधि का उपयोग करते समय अन्य विधियों की जरूरत पड़ने पर सहायता ली जाती है जिससे समय व धन अधिक खर्च होता है।
- e. प्रतिचयन का अभाव (**Lack of sampling**):- इस विधि में अध्ययन इकाइयों की संख्या कम होने के कारण प्रतिचयन विधि का चुनाव कठिन हो जाता है। सही प्रतिचयन विधि के अभाव में अध्ययन दोषपूर्ण हो जाता है।
- f. अवैज्ञानिक विधि (**Unscientific Method**):- इस विधि में अध्ययन इकाइयों की संख्या सीमित होने, आंकड़ों का स्वरूप गुणात्मक होने तथा प्रतिचयन का अभाव होने के कारण यह विधि कम वैज्ञानिक कम है और शोधकर्ता के अनुभवों तथा कुशलता पर अधिक निर्भर होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैयक्तिक अध्ययन विधि के अंतर्गत एक सामाजिक इकाई के सम्पूर्ण स्वरूप की खोज तथा इसका गहन और सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है।

### 3.7 समाजमिति विधि

समाजमिति मनोविज्ञान की ऐसी विधि है जिसका प्रयोग केवल समाज मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र में ही होता है। समाजमिति का शाब्दिक अर्थ है सामाजिक मापन (Social Measurement) इस विधि के अंतर्गत अंतरवैयक्तिक सम्बन्धों का मापन करने वाली विधियां आती हैं। इसके अतिरिक्त समूह, संरचना, संप्रेषण, नेतृत्व, समूह सम्बन्धशीलता (Group Cohesiveness) आदि से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन में यह विधि बहुत उपयोगी है। इस विधि का विकास मौरनो ने 1934 में किया।

#### परिभाषाएँ:-

करलिंगर (1978) ने समाजमिति को परिभाषित करते हुए कहा है कि “ समाजमिति एक विस्तृत पद है जिससे अनेक विधियों का संकेत मिलता है। इन विधियों के द्वारा व्यक्तियों के चयन, सम्प्रेषण और अंतःक्रिया प्रतिमानों से सम्बन्धित आंकड़ों का संकलन और विश्लेषण किया जाता है।”

बेस्ट (1982) के अनुसार ‘ समाजमिति समूह में व्यक्तियों के मध्य पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों का वर्णन करने की एक विधि है। परोक्ष रूप से यह व्यक्तियों के मध्य आकर्षण तथा विकर्षण का वर्णन उनसे यह पूछकर करने का प्रयत्न करती है कि विभिन्न परिस्थितियों में वे किन लोगों का चयन करेंगे या त्याग करेंगे।’

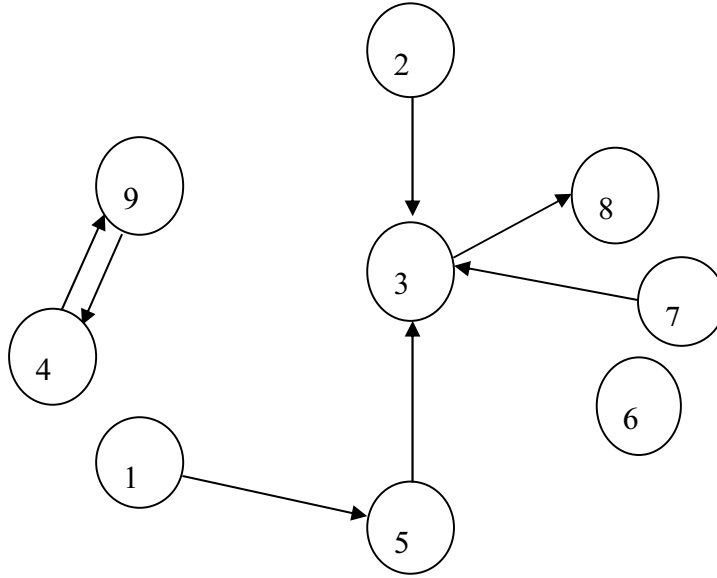
न्यूकाम्ब (1942), टग्युरी (1952), प्रेपिन (1952), तलबोट (1952), लिन्डजे (1954) ने इस विधि से सम्बन्धित अनेक तकनीकों का विकास किया है।

#### 3.7.1 समाजमिति विश्लेषण की प्रविधियां (Techniques of Sociometric Analysis):-

समाजमिति विश्लेषण की प्रमुख प्रविधियां निम्नलिखित हैं:-

1- समाज आलेख तकनीक 2- समाजमिति मैट्रिक्स

1. **समाज आलेख तकनीक:-** समूह के व्यक्तियों की संख्या कम होने पर मैट्रिक्स विधि बहुत उपयोगी होती है, किंतु जब व्यक्तियों की संख्या अधिक हो तो मैट्रिक्स विधि से विश्लेषण करना कठिन हो जाता है तब समाज आलेख की सहायता ली जाती है। इसे निर्देशित ग्राफ (Directed graph) भी कहते हैं। इस तकनीक के माध्यम से व्यक्ति के अंतरवैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन समाज आलेख बनाकर किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम समूह के प्रत्येक व्यक्ति को तीर द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। फिर एक तीर उस व्यक्ति के वृत्त तक खींचा जाता है जिसे वह पहला व्यक्ति पसंद करता है।



उदाहरणार्थ, यदि पहले व्यक्ति से पूछा जाये कि वह किस व्यक्ति को पसंद करता है और वह कहे कि मैं दूसरे व्यक्ति को पसंद करता हूँ तो पहले व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक तीर का निशान बना दिया जाता है जो ऊपर बने समाज आलेख में दिखाया गया है। प्रत्येक व्यक्ति से यह प्रश्न दूसरे प्रकार से भी पूछ सकते हैं कि वह अपने समूह में किसे नेता चुनेंगे व्यक्ति जो उत्तर देगा उस व्यक्ति से तीर का निशान उस व्यक्ति तक लगाया जायेगा जिसे वह नेता चुनना पसंद करता है। इस प्रकार समूह के प्रत्येक व्यक्ति से प्रश्न कर उसकी पसंदों को वृत्तों के मध्य तीर से निशान लगाकर अंकित किया जाता है। वृत्तों और तीर से बने चित्र को तकनीकी भाषा में समाज आलेख कहते हैं। समाज आलेख में जिस व्यक्ति को सबसे ज्यादा पसंद किया जाता है वह व्यक्ति ही नेता कहलाता है। एक समूह में एक से अधिक नेता भी हो सकते हैं। समूह में जिस व्यक्ति को नेता के बाद चुना जाता है उसे गौण नायक

कहते हैं। समूह में उसे 'Isolate Person' कहा जाता है, जिसे कोई पसंद नहीं करता या जो किसी को पसंद नहीं करता। जब व्यक्ति आपस में एक दूसरे को चुनते हैं तो इसे 'Mutual pair' कहते हैं। जब एक समूह में कुछ सदस्य आपस में एक इकाई को चुनते हैं तथा अन्य आपस में एक दूसरे को चुनते हैं तो ऐसे सम्बन्धों को तकनीकी भाषा में जत्था या गुट कहते हैं।

2. **समाजमिति मैट्रिक्स:-** इस प्रविधि द्वारा भी अंतः वैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। मैट्रिक्स संख्याओं का क्रम आयताकार होता है। यहां पर  $n =$  व्यक्तियों की समूह में संख्या होती है। इसमें पंक्ति (row) को  $i$  तथा स्तंभो (Column) को  $1$  से व्यक्त करते हैं। मैट्रिसेज से किसी समूह में उसके सदस्यों द्वारा व्यक्ति की चयनित संख्या का पता चलता है। उदाहरणार्थ, माना 4 छात्रों की कक्षा से यह प्रश्न पूछा जाता है कि "आप किन छात्रों के साथ बैठना पसंद करोगे चुनाव कीजिए।" यदि छात्र किसी एक छात्र को चुनता है तो  $1$  तथा न चुनने पर  $0$  अंक दिया जाता है।

सदस्यों के प्रति पसंद

सदस्य	A	B	C	D
A	1	0	0	1
B	0	0	0	0
C	0	1	0	1
D	1	0	0	0
Total	2	1	0	2

इस मैट्रिक्स को देखने से स्पष्ट है कि समूह के व्यक्ति आपस में एक दूसरे के प्रति किस प्रकार की पसंद रखते हैं।

**3.7.2 समाजमिति प्रविधियों के लाभ:-**

1. विश्वसनीय अध्ययन:- इस विधि में शोधकर्ता स्वयं तथ्यों का संग्रह कुछ प्रश्नों के आधार पर करता है। अतः प्राप्त हुए तथ्य विश्वसनीय होते हैं।
2. मितव्ययी विधि:- शिक्षा, उद्योग सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानों में व्यक्ति के अंतरवैयक्तिक सम्बन्धों पारस्परिक पसंद नापसंद का अध्ययन समाजमिति प्रविधियों द्वारा कम खर्च में किया जा सकता है।
3. पारस्परिक पसंद-नापसंद का अध्ययन:- समाजमिति प्रविधियों द्वारा समूह के व्यक्तियों की पारस्परिक पसंद-नापसंद का अध्ययन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

4. पारस्परिक अंतःक्रियाओं का अध्ययन:- इस विधि द्वारा व्यक्ति की परस्पर होने वाली अंतःक्रिया का अध्ययन भी किया जा सकता है।
5. तथ्यों की वस्तुपरक अभिव्यक्ति:- इस प्रविधि में तथ्यों की वस्तुपरक अभिव्यक्ति चाहे तथ्यों को समाज आलेख के रूप में प्रस्तुत करें चाहे समाजमिति मैट्रिक्स के रूप में प्रस्तुत किया जाये, पायी जाती है।

### 3.7.3 समाजमिति प्रविधियों के दोष:-

1. गहन अध्ययन असम्भव:- इस विधि द्वारा सामाजिक अंतःक्रियाओं पारस्परिक पसंदों-नापसंदों आदि का गहन अध्ययन इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि अध्ययन एक या कुछ प्रश्नों के उत्तरों पर ही आधारित होता है।
2. केवल छोटे समूहों का अध्ययन:- समूहों में सदस्यों की संख्या 40-50 से अधिक न हो तभी इस विधि का उपयोग किया जा सकता है। समूह में सदस्यों की संख्या अधिक होने पर इस विधि की उपयोगिता कम होती जाती है।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समाज मनोविज्ञान में अंतः वैयक्तिक अध्ययनों आकर्षण और विकर्षण आदि से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन में इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त समूह, संरचना, नेतृत्व सम्प्रेषण आदि से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन में समाजमिति विधि बहुत उपयोगी है।

### 3.8 सारांश

इस तरह से हम देखते हैं कि समाज मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि का उपयोग तीन उपविधियों के रूप में किया गया है। यद्यपि तीन उपविधियों के अपने-अपने गुण दोष हैं। फिर भी आधुनिक सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला प्रयोग विधि को सबसे ज्यादा पसन्द करते हैं। हां, जहां इस विधि का प्रयोग करने से पूरी असमर्थता उत्पन्न हो जाती है वहां वे क्षेत्र प्रयोग विधि का सहारा लेते हैं। जहां तक स्वाभाविक प्रयोग विधि का प्रश्न है इसकी बारम्बरता इसमें व्याप्त कुछ कठिनाइयों के कारण काफी कम है।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रेक्षण विधि का प्रयोग समाज मनोवैज्ञानिक सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में सहभागी या असहभागी रूप में करते हैं। इस विधि की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रेक्षक उचित विधि अपनाकर सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करता है या नहीं। सहभागी प्रेक्षण तथा असहभागी प्रेक्षण में मौन उचित होना, इस बात पर निर्भर करता है कि किस सामाजिक व्यवहार का अध्ययन किस तरह की परिस्थिति में किस उद्देश्य से किया जा रहा है। सामान्यतः समाज मनोवैज्ञानिक सहभागी प्रेक्षण का उपयोग उसी परिस्थिति में अधिक करते हैं, जब वे किसी दूसरे स्रोत से आंकड़ों का संग्रहण नहीं कर सकते हैं।

### 3.9 शब्दावली

- **चर:** चर वह गुण है जिसके विभिन्न मूल्य होते हैं।
- **स्वतंत्र चर:** स्वतंत्र चर वह राशि है जिसे प्रयोगकर्ता किसी घटना से सम्बन्धित करने के लिए घटाता बढ़ाता है।
- **आश्रित चर:** आश्रित चर स्वतंत्र चर का अनुमानित प्रभाव है।

### 3.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- प्रयोग विधि वह है जिसमें:-

- (i) परिकल्पना का निरीक्षण किया जाता है।
- (ii) चरों को योजना अनुसार प्रहस्तन कर निरीक्षण लेते हैं।
- (iii) कार्य कारण सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है।
- (iv) नियंत्रित दशाओं में निरीक्षण होता है।
- (v) उपर्युक्त सभी।

2- प्रेक्षण पूछताछ की श्रेष्ठ विधि है। क्योंकि इसमें -

- (i) नेत्रों का सहारा लिया जाता है।
- (ii) कानों का सहारा लिया जाता है।
- (iii) वाणी का सहारा लिया जाता है।
- (iv) उपर्युक्त सभी।

3- सर्वेक्षण अनुसंधान 'में प्रतिदर्श का चयन ..... प्रतिचयन विधि द्वारा किया जाता है।

4- वैयक्तिक अध्ययन विधि ..... है।

5- वैयक्तिक अध्ययन विधि में एक सामाजिक इकाई के ..... का अध्ययन किया जाता है।

6- समाजमिति विधि के द्वारा -

- (i) समाज में व्यक्ति की स्थिति का मापन किया जाता है।
- (ii) व्यक्तियों के मध्य आकर्षण तथा प्रत्याकर्षण का मापन किया जाता है।
- (iii) सामूहिक मनोबल का मापन किया जाता है।

7- समाजमिति विधि का विकास किस मनोवैज्ञानिक ने किया -

- (i) मोरैनो
- (ii) बोगार्डस
- (iii) करलिंगर
- (iv) गुडे एवं हाट

8- समाज मनोविज्ञान की विभिन्न विधियों के द्वारा -

- (i) केवल कुछ ही समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।
- (ii) प्रत्येक विधि से कुछ विशिष्ट प्रकार की समस्याओं का अध्ययन किया जा सकता है।
- (iii) समाज मनोविज्ञान की सभी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

उत्तर : 1- (i) 2- (i) 3- यादृच्छिक 4- सामाजिक सूक्ष्मदर्शक यंत्र 5- सम्पूर्ण स्वरूप  
6- (ii) 7- (i) 8- (ii)

### 3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Britt, S.H. : Social Psychology of Modern Life, Ch. 2
- Chaube, S.P. (1966) : Manovigyan Aur Shiksha (Lakshmi Narain Agrawal, Agra) 7<sup>th</sup> Ed.
- Gurnee, G. : Elements of Social Psychology, Ch. 2
- Lindzey, G. : Hand Book of Social Psychology, Chs. 7, 10, 11, 12, 13 & 14, Vol. I
- Murphy, G. : Experimental Psychology, Ch. 1
- Newcomb, T.M. (1978): Social Psychology, Ch. 2
- डॉ० आर.एन. सिंह (2008) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, हापुड़ रोड, आगरा
- डॉ० अरूण कुमार सिंह (2009) : समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोती लाल बनारसी दास, बनारस

### 3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1- प्रयोगात्मक विधि का वर्णन उसके गुण दोषों सहित कीजिए।
- 2- प्रेक्षण विधि तथा प्रयोगात्मक विधि का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
- 3- सर्वेक्षण विधि को गुण दोषों सहित विस्तार से समझाइए।
- 4- वैयक्तिक अध्ययन विधि को विस्तार से समझाइए।
- 5- समाजमिति विधि को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

### इकाई-4 मनोवृत्ति का अर्थ, प्रकृति और मनोवृत्ति के घटक (Meaning, Nature and Components of Attitude)

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 मनोवृत्ति की विभिन्न परिभाषाएँ
- 4.4 मनोवृत्ति के प्रकार
- 4.5 मनोवृत्ति की विशेषताएँ
- 4.6 मनोवृत्ति एवं सम्बन्धित संप्रत्यय
  - 4.6.1 मनोवृत्ति तथा विष्वास
  - 4.6.2 मनोवृत्ति एवं मूल्य
  - 4.6.3 मनोवृत्ति तथा मत
- 4.7 मनोवृत्ति के मुख्य घटक
- 4.8 सारांश
- 4.9 शब्दावली
- 4.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.12 निबंधात्मक प्रश्न

#### 4.1 प्रस्तावना

मनुष्य को समाज में रहते हुए विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों और घटनाओं का सामना करना पड़ता है। अपनी आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को ध्यान में रखकर वह अपनी प्रतिक्रिया भी करता है। इस प्रकार किसी व्यक्ति वस्तु अथवा विचार के प्रति प्रतिक्रिया करने की तत्परता को ही मनोवृत्ति कहते हैं। मनोवृत्ति का सम्बन्ध मानव व्यवहार के आन्तरिक या मानसिक पक्ष से है। मनोवृत्ति एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग हम दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में हमेशा करते हैं। साधारण अर्थ में मनोवृत्ति मन की एक विशिष्ट दशा होती है जिसके द्वारा वह समाज की विभिन्न परिस्थितियों, वस्तुओं, व्यक्तियों आदि के प्रति अपने विचार व मनोभाव को प्रकट करता है। ऊंची जाति के लोग हरिजनों के प्रति एक विशिष्ट विचार रखते हैं उसी तरह से विधवा विवाह तथा बाल विवाह के प्रति भी लोग एक खास मनोभाव रखते हैं। इन उदाहरणों में जिस विशिष्ट विचार या मनोभाव को बताया गया है उसे ही साधारण अर्थ में मनोवृत्ति कहते हैं।



मनोवृत्ति शब्द अंग्रेजी भाषा के Attitude शब्द का रूपान्तर है जो लैटिन भाषा के “Aptus” शब्द से बना है। जिसका अर्थ है तत्परता (readiness) अथवा मानसिक झुकाव (set)। इस प्रकार मनोवृत्ति का शाब्दिक अर्थ हुआ व्यवहार करने की तत्परता या मानसिक झुकाव। केवल शाब्दिक अर्थ से मनोवृत्ति की विभिन्न विशेषताएं, इसके विभिन्न घटकों आदि पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। दूसरे शब्दों में, मनोवृत्ति के शाब्दिक अर्थ से मनोवृत्ति का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। इसलिए आवश्यक है कि समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति को परिभाषित करने के लिए जिन तीन दृष्टिकोणों को आधार बनाया है, दृष्टिपात कर लिया जाये। इन तीन दृष्टिकोणों का वर्णन निम्नलिखित है:-

### 1- एक विमीय दृष्टिकोण (One-dimensional Approach):-

इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति के एक विमा अर्थात् मूल्यांकन पक्ष (evaluative aspect) को ध्यान में रखकर उसे परिभाषित किया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति एक ऐसी सीखी गयी प्रवृत्ति (tendency) है, जिसके कारण व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या व्यक्तियों के समूह के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से व्यवहार करता है। फिशबीन तथा आजेन (1975) के अनुसार “किसी वस्तु के प्रति संगत रूप से अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से अनुक्रिया करने की अर्जित पूर्व प्रवृत्ति को मनोवृत्ति कहते हैं।”

थर्सटन (1946) के अनुसार “किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के पक्ष या विपक्ष में धनात्मक या ऋणात्मक भाव की तीव्रता को मनोवृत्ति कहते हैं।” मनोवृत्ति के इन एकविमीय परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि किसी वस्तु के प्रति व्यक्ति के भाव की तीव्रता और दिशा ही मनोवृत्ति का सार है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस मूल्यांकन विमा को भावात्मक संघटन (affective component) कहा है।

### 2- द्विविमीय दृष्टिकोण (Two-dimensional Approach):-

इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति की व्याख्या करने हेतु दो विमाओं (dimensional) का सहारा लिया गया है - भावात्मक संघटक (Affective component) तथा संज्ञानात्मक संघटक (Cognitive component)। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति को इन दोनों तरह के संघटकों का योग माना है। भावात्मक संघटक का तात्पर्य किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति के प्रति सुखद या दुखद भाव की तीव्रता से होता है। सुखद भाव होने पर हम उस वस्तु, व्यक्ति या घटना को पसन्द करते हैं, जबकि दुखद भाव होने पर हम उन्हें नापसंद करते हैं। संज्ञानात्मक संघटक से तात्पर्य किसी घटना का वस्तु के सम्बन्ध में व्यक्ति में जो विश्वास होता है, उससे होता है। जैसे - हरिजनों के प्रति ऊंची जाति के लोगों में एक खास विश्वास होता है यह विश्वास संज्ञानात्मक संघटक का उदाहरण है। इस द्विविमीय दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति संज्ञानात्मक संघटक तथा भावनात्मक संघटक का एक संगठन है। उदाहरणार्थ - ‘व्यवसायी धनी होते हैं’ यह एक संज्ञानात्मक संघटक का उदाहरण है तथा ‘व्यवसायी साफ-सुथरे होते हैं’ यह

भावनात्मक संघटक क्या उदाहरण है। दोनों मिलकर व्यवसायी के प्रति एक अनुकूल मनोवृत्ति उत्पन्न कर सकते हैं जिसकी अभिव्यक्ति व्यवसायी अच्छे होते हैं, के रूप में हो सकती है।

### 3- त्रिविमीय दृष्टिकोण (Three-dimensional Approach):-

आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति की व्याख्या त्रिविमीय दृष्टिकोण के आधार पर की है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति के पहले से चले आ रहे दो संघटकों में एक तीसरा संघटक अर्थात् व्यवहारात्मक संघटक (behavioral component) को जोड़कर इसकी व्याख्या की गई है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के इस विचार को अधिकांश लोगों ने मान्यता प्रदान की है।

इनका विचार है कि मनोवृत्ति संज्ञानात्मक संघटक (cognitive component) भावात्मक संघटक (affective component) तथा व्यवहारात्मक संघटक (behavioral component) का एक संगठित तंत्र (organized system) है। इसे आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति का ABC मॉडल कहा है। यहां A से भावात्मक संघटक (affective component), B से व्यवहारात्मक संघटक (behavioral component) तथा C से संज्ञानात्मक संघटक (cognitive component) का बोध होता है।

कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों जैसे काट्ज तथा स्टॉटलैण्ड (1959), राजेकी (1982), फेल्डमैन (1986) तथा मेयर्स (1988) ने भी मनोवृत्ति को इन्हीं तीनों संघटकों का स्थायी संगठित तंत्र (enduring organized system) माना है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट किया है कि मनोवृत्ति के इन तीनों संघटकों की कुछ खास विशेषताएं होती हैं जिनके स्वरूप को समझना मनोवृत्ति के अर्थ को पूर्ण रूप से समझने में सहायक सिद्ध होता है। ये विशेषताएं जिनका सम्बन्ध मनोवृत्ति के तीनों संघटकों से है, निम्नलिखित हैं:-

- 1) **बहुविधता (Multiplexity):-** मनोवृत्ति के तीनों संघटकों में बहुविधता का गुण पाया जाता है। बहुविधता का अर्थ है कि किसी संघटक में उसके तत्वों की संख्या कितनी है। दूसरे दूसरों में, संघटक की बहुविधता का गुण यह बताता है कि अमुक संघटक कितने तत्वों से मिलकर बना है। संघटक में जितने अधिक तत्व होंगे, उसमें जटिलता भी उतनी ही अधिक होगी। जैसे सहशिक्षा के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति के संज्ञानात्मक संघटक में कई तथ्य शामिल हो सकते हैं, जैसे - सहशिक्षा किस स्तर से शुरू होनी चाहिए। सहशिक्षा के क्या फायदे हैं आदि आदि। उसी तरह भावात्मक संघटक तथा संज्ञानात्मक संघटक में भी तत्वों की संख्या एक से अधिक हो सकती है।
- 2) **कर्षण शक्ति (Valence):-** मनोवृत्ति के तीनों संघटकों में कर्षण शक्ति होती है। कर्षण शक्ति का अर्थ मनोवृत्ति की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता की मात्रा से है। संज्ञानात्मक संघटक अधिक अनुकूल तथा प्रतिकूल हो सकता है। दूसरे दूसरों में व्यक्ति का विश्वास मनोवृत्ति वस्तु के प्रति कम या अधिक अनुकूल तथा कम या अधिक प्रतिकूल हो सकती है। उसी प्रकार भावात्मक संघटक में भी कम या अधिक धनात्मक

कर्षण शक्ति तथा कम या अधिक नकारात्मक कर्षण शक्ति हो सकती है। उसी प्रकार से व्यवहारात्मक संघटक में भी कम या अधिक कर्षण शक्ति हो सकती है। व्यक्ति किसी समस्या या घटना होने पर व्यक्ति की हर सम्भव मदद कर सकता है या फिर इन सबसे पूर्णतः छुटकारा पाने का हरसंभव प्रयास कर अपने आपको दूर रख सकता है।

- 3) **संगति विशेषता (Consistency Characteristics):-** समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने भिन्न-भिन्न अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट किया है कि मनोवृत्ति के तीनों संघटकों में संगति पायी जाती है। इस तरह की संगति मूल रूप से संघटकों की कर्षण शक्ति में अधिक पाई जाती है परन्तु बहुविधता में कम से कम पाई जाती है।

अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि मनोवृत्ति 3 संघटकों अर्थात् संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक संघटक का एक संगठित स्थाई तंत्र है। तीनों संघटकों में संगति का गुण पाया जाता है। इसी गुण के कारण व्यक्ति किसी वस्तु अथवा घटना के प्रति खास ढंग से सोचता है और व्यवहार करने के लिए तत्पर रहता है।

#### 4.2 उद्देश्य

इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- मनोवृत्ति के अर्थ, प्रकृति तथा परिभाषा के बारे में जान सकेंगे।
- मनोवृत्ति की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- मनोवृत्ति के घटकों के बारे में जानने का अवसर प्राप्त होगा।

#### 4.3 मनोवृत्ति की विभिन्न परिभाषाएँ

आलपोर्ट (1935) के अनुसार “मनोवृत्तियाँ तत्परता की ऐसी मानसिक तथा स्नायुविक अवस्था है जो अनुभव के द्वारा संगठित होती है और व्यक्ति की उन समस्त वस्तुओं तथा परिस्थितियों के प्रति अनुक्रियाओं पर निर्देशात्मक अथवा गत्यात्मक प्रभाव डालती है, जिनसे वे सम्बन्धित होती हैं।”

किम्बल यंग (1960) के अनुसार “आवश्यक रूप से मनोवृत्ति पूर्ण ज्ञान रूपी प्रतिक्रिया का स्वरूप और क्रिया का आरम्भ है, जिसका पूर्ण होना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रतिक्रिया की इस तत्परता में किसी प्रकार की विशिष्ट या सामान्य परिस्थिति निहित रहती है।”

क्रेच, क्रेचफील्ड तथा बेलैची (1962) के अनुसार “मनोवृत्ति को व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार प्रतिबिम्बित करता है। यह किसी सामाजिक वस्तु के प्रति धनात्मक या ऋणात्मक मूल्यांकनों, संवेगात्मक भावों तथा पक्ष या विपक्ष के क्रियात्मक झुकावों की अपेक्षाकृत स्थायी पद्धतियाँ हैं।”

सीकोर्ड तथा बैकमैन (1964) के अनुसार “अपने वातावरण के कुछ पक्षों के प्रति व्यक्ति के नियंत्रित भाव, विचार और कार्य करने की पूर्व वृत्ति ही मनोवृत्ति कहलाती है।”

आइजनेक (1972) के अनुसार “सामान्यतः मनोवृत्ति की परिभाषा किसी वस्तु या समूह के सम्बन्ध में प्रत्यक्षात्मक बाह्य उत्तेजनाओं की उपस्थिति में व्यक्ति की स्थिति और प्रत्युत्तर तत्परता के रूप में की जाती है।”

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि “किसी व्यक्ति वस्तु या उत्तेजना अथवा इसके समूहों के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति की प्रत्यक्षात्मक और ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के स्थायी संगठन तथा प्रत्युत्तर तत्परता के मिले जुले रूप को ही मनोवृत्ति कहते हैं।” इस परिभाषा से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति किसी के सम्बन्ध में हो सकती है अर्थात् मनोवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति विचार अथवा उत्तेजना आदि के सम्बन्ध में हो सकती है। मनोवृत्तियां किसी व्यक्ति के अनुभव ज्ञान एवं प्रत्याक्षात्मक प्रक्रियाओं का स्थायी संगठन है और प्रत्युत्तर तत्परता का मिला-जुला रूप है। अनुभव, ज्ञान और प्रत्यक्षात्मकता में परिवर्तनों के साथ-साथ मनोवृत्तियां भी परिवर्तित हो जाती हैं। मां के हृदय में अपने बच्चे के संरक्षण की मनोवृत्ति होती है, जिसके कारण वह रोते हुए बच्चे के पास सब काम छोड़कर दौड़ी हुई आती है और रोते हुए बच्चे को गोद में उठा लेती है और उसे चुप करने का हरसंभव प्रयास करती है। मनोवृत्तियों का व्यक्ति के समायोजन में महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक जीवन में ही इन मनोवृत्तियों का निर्माण होता है। मनोवृत्तियां व्यक्ति की अर्जित विशेषताएं हैं। यही उसके सामाजिक जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक क्रिया का आधार है। क्रेन्च तथा क्रचफील्ड के अनुसार “मनोवृत्तियों के व्यक्ति में अनेक महत्वपूर्ण कार्य हैं। यह व्यक्तित्व को निरन्तरता प्रदान करती है। यह उसके दैनिक प्रत्यक्षीकरण और प्रक्रियाओं को अर्थपूर्ण बनाकर उनके विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता देती है।”

#### 4.4 मनोवृत्ति के प्रकार

a. व्यक्ति के द्वारा किसी वस्तु कारक के प्रति की गयी प्रतिक्रियाओं के स्वरूप के आधार पर मनोवृत्ति दो प्रकार की होती है:-

- 1- सकारात्मक मनोवृत्ति
- 2- ऋणात्मक मनोवृत्ति

##### 1- सकारात्मक मनोवृत्ति:-

जब व्यक्ति की किसी भी परिस्थिति, वस्तु, घटना आदि के पक्ष में प्रतिक्रिया की जाती है तो उसे सकारात्मक मनोवृत्ति कहते हैं। यह व्यक्ति के पक्ष में तथा विकास में सहायक होती है।

##### 2- ऋणात्मक मनोवृत्ति:-

जब व्यक्ति किसी वस्तु घटना या परिस्थिति के विपक्ष में प्रतिक्रिया करता है तो उसे ऋणात्मक मनोवृत्ति कहते हैं। यह वस्तु या व्यक्ति के लिए हानिकारक होती है।

b. आलपोर्ट के अनुसार मनोवृत्तियां मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं:-

**1- सामाजिक मनोवृत्तियां:-**

इस प्रकार की मनोवृत्तियों का निर्माण समाज की उत्तेजनात्मक परिस्थितियों के कारण होता है। इस प्रकार की मनोवृत्तियाँ एक समूह विशेष या व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होती है।

**2- विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति मनोवृत्तियां:-**

इस प्रकार की मनोवृत्तियां व्यक्ति कुछ विशेष लोगों के प्रति या जान पहचान के लोगों के प्रति रखता है जैसे परिवार, मित्र और पड़ोसियों के प्रति आदि।

**3- विशिष्ट समूहों के प्रति मनोवृत्तियां:-**

इस प्रकार की मनोवृत्तियां व्यक्ति कुछ विशेष समूहों या संस्थाओं के प्रति रखता है। जैसे - विद्यालय, कार्यालय, कारखाना, धर्म और जाति आदि।

**4.5 मनोवृत्ति की विशेषताएँ**

**a) मनोवृत्ति की सामान्य विशेषताएँ (Common Characteristics of Attitude) :**

मनोवृत्ति की कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें होती हैं और उनके द्वारा इसके बारे में कुछ अर्थपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। मनोवृत्ति की कुछ ऐसी ही विशेषतायें निम्न हैं:-

**1- मनोवृत्ति को अपेक्षाकृत स्थायी माना गया है-** मनोवृत्ति एक बार विकसित हो जाने के बाद सामान्यतः स्थायी सी हो जाती है। लेकिन परिस्थिति में परिवर्तन होने के कारण या कुछ नये कारणों के उत्पन्न होने पर मनोवृत्ति में परिवर्तन भी हो जाता है। उदाहरणार्थ जब एक किरानी की मनोवृत्ति अपने आफीसर के प्रति सामान्यतः अनुकूल होती है। परन्तु यदि उसी आफीसर से उसका मनमुटाव या नाराजगी हो जाती है तो उसकी मनोवृत्ति बदलकर प्रतिकूल हो जाती है।

**2- मनोवृत्ति सीखी जाती है-** मनोवृत्ति जन्मजात नहीं होती है बल्कि उसे व्यक्ति जीवनकाल में ही सीखता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनकाल में तरह-तरह की अनुभूतियां प्राप्त करता है तथा इन अनुभूतियों के आधार पर वह एक अनुकूल या प्रतिकूल मनोवृत्ति अपने में विकसित करता है। ऐसा नहीं होता है कि व्यक्ति में किसी अन्य के विषय में किसी घटना के प्रति अमुक मनोवृत्ति जन्म से ही पायी जाती है।

**3- मनोवृत्ति का सम्बन्ध लगातार किसी विषय, घटना या विचार आदि से होता है-** मनोवृत्ति एक ऐसा मनोभाव है जिसका सम्बन्ध किसी विषय, घटना या विचार से होता है। दूसरे दूसरों में और मनोवृत्ति की उत्पत्ति होने के लिये कोई न कोई विषय घटना या विचार का होना अनिवार्य होता है। जैसे व्यक्ति सती प्रथा, विधवा

विवाह, बाल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, भारत अमेरिका सम्बन्ध, आदि के बारे में कोई प्रतिकूल या अनुकूल मनोवृत्ति विकसित करता है। क्योंकि यह सभी विषय और घटना महत्वपूर्ण है। ऐसा देखा गया है कि यदि कोई विषय या घटना विवादग्रस्त होती है तो व्यक्ति बहुत जल्दी अपने अनुकूल और प्रतिकूल मनोवृत्ति विकसित कर लेता है।

**4- मनोवृत्ति विशिष्ट दिशा में निर्देशन करती है-** मनोवृत्ति व्यक्ति के व्यवहारों को एक निश्चित दिशा में निर्देशित करती है। जब व्यक्ति की मनोवृत्ति किसी विषय, घटना या अन्य व्यक्ति के प्रति अनुकूल रहती है और वह खास ढंग से व्यवहारिक रहता है और जब उसकी मनोवृत्ति प्रतिकूल होती है तो वह दूसरे ढंग से व्यवहार करता है। उदाहरणार्थ जब व्यक्ति की मनोवृत्ति विधवा विवाह के प्रति अनुकूल होती है तो वह इस तरह के विवाह को सम्पन्न करने में सक्रिय रहता है और दूसरी तरफ जब उसकी मनोवृत्ति प्रतिकूल होती है तो वह इस तरह के विवाह के विपक्ष में तर्क देता है तथा ऐसी विधवाओं से घृणा भी करता है जिन्होंने शादी करने की ठान रखी है।

**5- मनोवृत्ति में तीव्रता का गुण होता है-** ऐसा देखा गया है कि मनोवृत्ति चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल हो उसमें तीव्रता का गुण होता है। उदाहरण के लिए जब एक मनोवृत्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति प्रतिकूल होती है तब सम्भव है कि प्रतिकूल मनोवृत्ति रखने वाला व्यक्ति उस दूसरे व्यक्ति के साथ खाना-पीना, उठना-बैठना, बोलना-चालना आदि बन्द कर देता है, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वह खाना-पीना ही बंद करता है, उठना-बैठना व बोलना कायम रखता है। यहां पहले व्यक्ति की प्रतिकूल मनोवृत्ति दूसरे व्यक्ति की प्रतिकूल मनोवृत्ति की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है।

**6- मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण होता है-** अध्ययनों से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण भी होते हैं। व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर कुछ विशेष व्यवहार अधिक तत्परता से करता है। उदाहरणार्थ - माता-पिता, शिक्षक, मित्र आदि के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति होने के कारण हम अधिक सौहार्दपूर्ण कार्य करते हैं। दूसरी तरफ, चोर, डकैत, शत्रु आदि के प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति के कारण हम कटु व्यवहार करते हैं।

इस तरह से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति की कुछ खास विशेषताएं होती हैं जिनके आधार पर उसके बारे में एक सही व अर्थपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है।

b) **मनोवृत्ति की मौलिक विशेषताएँ (Primary characteristics of Attitudes) :**

**1- मनोवृत्ति संघात में अन्तर्सम्बन्धता-** मनोवृत्ति संघात का अभिप्राय एक व्यक्ति की सभी मनोवृत्तियों की श्रृंखला से है। एक व्यक्ति के अन्दर पाई जाने वाली अनेक मनोवृत्तियां एक दूसरे से सम्बन्धित भी हो सकती है और पृथक भी हो सकती है। अध्ययनों से देखा जा सकता है कि मनोवृत्ति के पुंज होते हैं। एक व्यक्ति में मनोवृत्ति के कई-कई पुंज हो सकते हैं। मनोवृत्ति के यह पुंज बड़े भी हो सकते हैं और छोटे भी। साथ ही एक पुंज की मनोवृत्तियों में अन्तर्सम्बन्ध कम से साधारण और उच्च कोटि तक किसी भी मात्रा की हो सकती है।

2- घटकों की विशेषताएँ- मनोवृत्ति के 3 घटक होते हैं 1- संज्ञान, 2- भाव, 3- क्रिया। यह तीनों घटक विभिन्न मनोवृत्तियों में कर्षण शक्ति और बहु विधता की दृष्टि से अलग-अलग होते हैं। अतः मनोवृत्ति के तीनों घटकों में कर्षण शक्ति व बहुविधता का गुण पाया जाता है। इसमें कर्षण शक्ति से तात्पर्य है कि मनोवृत्ति के तीनों घटक अत्याधिक अंश से कम अंश तक किसी मात्रा में हो सकते हैं। बहुविधता का अर्थ है कि मनोवृत्ति के प्रत्येक घटक के कई-कई घटक और होते हैं।

3- मनोवृत्ति पुंज और अनुरूपता- मनोवृत्ति पुंजों में पायी जाने वाली मनोवृत्ति में कुछ न कुछ समानता या अनुरूपता अवश्य पायी जाती है। एक मनोवृत्ति पुंज की मनोवृत्ति में यह समानता कम से अधिक तक किसी भी मात्रा में हो सकती है। सदिका में कैम्पबेल (1960) ने स्पष्ट किया कि जिन व्यक्तियों के मनोवृत्ति पुंज में समानता अधिक है, वह मतदान के सम्बन्ध में निर्णय शीघ्र लेते हैं। कैम्पबेल का यह अध्ययन राजनैतिक व्यवहार से सम्बन्धित मनोवृत्ति के सम्बन्ध में था।

4- संगति विशेषता- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति के तीन घटक संज्ञान, भाव और क्रिया की कर्षण शक्ति में संगीत होता है तथा विभिन्न मनोवृत्ति घटकों की कर्षण शक्ति में उच्च सह संबंध होता है। यह सभी अध्ययन नीग्रो एवं यहूदियों पर किये गये हैं। एक अध्ययन में यहूदियों की मनोवृत्ति मापन के लिये मनोवृत्ति मापन का विकास किया गया। इस मापन में कुछ मापनियां संज्ञानात्मक घटक की कर्षण शक्ति का मापन तथा अन्य क्रियात्मक घटक की कर्षण शक्ति का मापन करती हैं। इस मापन में सह सम्बन्ध गुणांक की गणना की गई। इन मापनियों के बीच 0.74 से 0.84 तक गुणांक का मान प्राप्त हुआ। यह मान उच्च सहसम्बन्ध का द्योतक है।

#### 4.6 मनोवृत्ति एवं सम्बन्धित संप्रत्यय

मनोवृत्ति का सम्बन्ध कुछ खास संप्रत्ययों से अधिक है। अतः इसकी उचित जानकारी के लिए मनोवृत्ति का सही अन्तर उन सम्बन्धित संप्रत्ययों के साथ करना आवश्यक है। मनोवृत्ति के साथ कुछ इसी तरह के संप्रत्यय जैसे - विश्वास, मूल्य व मत आदि के सम्बन्धों का वर्णन निम्नांकित है -

##### 4.6.1 मनोवृत्ति तथा विश्वास (Attitude and Belief) :

मनोवृत्ति का सम्बन्ध विश्वास से अधिक है। इन दोनों के बीच के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिये यह आवश्यक है कि इन दोनों के अर्थ को सही समझा जाए। विश्वास को इस तरह परिभाषित किया गया है, 'व्यक्ति द्वारा संसार के किसी पक्ष के बारे में प्रत्यक्ष एवं संज्ञान के स्थायी संगठन को विश्वास कहते हैं।' विभिन्न वर्णनों से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति के तीनों संघटकों अर्थात् संज्ञानात्मक संघटक, भावात्मक संघटक तथा व्यवहारात्मक संघटक का एक संगठित तंत्र है। क्रेच एवं क्रच फील्ड (1948) के अनुसार 'व्यक्ति द्वारा संसार के किसी पक्ष के बारे में प्रत्यक्ष एवं संज्ञान के स्थायी संगठन को विश्वास कहते हैं।' मार्गन किंग, विहज एवं स्कॉपलर (1986) के

अनुसार “वस्तुओं के गुणों के बारे में जो विचार या संज्ञान होते हैं उन्हें विश्वास कहते हैं।” विश्वास की परिभाषाओं तथा मनोवृत्ति की परिभाषाओं से पाया है कि विश्वास तथा मनोवृत्ति एक दूसरे से काफी समान हैं। प्रमुख समानतायें निम्न हैं:-

1. मनोवृत्ति के समान विश्वास भी विभिन्न संघटकों का एक स्थायी संगठन है।
2. मनोवृत्ति के समान विश्वास भी संज्ञानात्मक संघटक होते हैं।

इन समानताओं के बाद भी मनोवृत्ति व विश्वास में निम्न अंतर है:-

1. मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण होते हैं जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति कुछ विशेष प्रतिक्रियाएं करता है। परन्तु विश्वास में प्रेरणात्मक गुण हमेशा देखने को नहीं मिलता है।
2. मनोवृत्ति वास्तविक तथ्य पर आधारित होती है परन्तु विश्वास काल्पनिक तथ्य पर आधारित होता है। उदाहरणार्थ हमारा विश्वास है कि सूर्य एक तारा है परन्तु तारा क्या है, कैसा है, उसकी विशेषताएं क्या है यह सभी कुछ वैज्ञानिकों की कल्पना पर आज भी निर्भर है।
3. मनोवृत्ति में विश्वास की तुलना में परिवर्तन तेजी से आता है। ऐसा इसलिये होता है कि मनोवृत्ति का सम्बन्ध वास्तविक परिस्थितियों से अधिक होता है। परन्तु विश्वास एक बार कायम हो जाता है।
4. मनोवृत्ति का क्षेत्र विश्वास से बड़ा होता है क्योंकि मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक, संवेगात्मक, संज्ञानात्मक, प्रत्यक्षणात्मक तथा व्यवहारात्मक सभी तरह की प्रक्रियाओं का समावेश होता है जबकि विश्वास मूलतः संज्ञानात्मक एवं प्रत्यक्षणात्मक होता है।

#### 4.6.2 मनोवृत्ति एवं मूल्य (Attitude and Value) -

मनोवृत्ति एवं मूल्य में समाज मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर किया है। सामान्यतः मूल्य से तात्पर्य एक ऐसे लक्ष्य से होता है जिसे प्राप्त करना समाज में काफी वांछित माना जाता है। इसमें व्यक्ति में एक सकारात्मक एवं नकारात्मक भाव भी शामिल होता है। वर्केल तथा कपूर (1979) के अनुसार “मूल्य का अर्थ किसी वस्तु या विचार से संबंधित सकारात्मक या नकारात्मक भाव से होता है।”

मनोवृत्ति तथा मूल्य में एक समानता है। मनोवृत्ति तथा मूल्य दोनों ही अर्जित होते हैं। इस समानता के बावजूद भी इन दोनों में कुछ अन्तर निम्न प्रकार है:-

1. मनोवृत्ति तथा मूल्य दोनों में ही भावात्मक पक्ष प्रधान होते हैं, परन्तु मूल्य में मनोवृत्ति की अपेक्षा भावात्मक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।
2. मनोवृत्ति मूलतः 2 प्रकार के होते हैं - सकारात्मक तथा नकारात्मक। परन्तु मूल्य कई प्रकार के होते हैं - धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य आदि।



3. मान का निर्माण चूंकि कई वैयक्तिक मनोवृत्तियों के मिलने से होता है, अतः यह मनोवृत्ति की तुलना में अधिक स्थिर तथा स्थाई होता है।
4. ब्रौनफेनब्रनर (1960) ने अपने अध्ययनों में स्पष्ट किया है कि मूल्य या मान में आत्मीकरण का महत्व मनोवृत्ति में आत्मीकरण की अपेक्षा अधिक होता है।

#### 4.6.3 मनोवृत्ति तथा मत (Attitude and Opinion) -

मनोवृत्ति तथा मत में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्येक मनोवृत्ति में एक मत निहित रहता है। इसलिये इन दोनों के बीच सम्बन्ध और गहरा हो जाता है। यहां पर मनोवृत्ति तथा मत के अर्थ को समझना आवश्यक है। मनोवृत्ति का अर्थ हम पहले समझ चुके हैं। मत के अर्थ की व्याख्या कुछ मनोवैज्ञानिकों ने निम्न प्रकार परिभाषित की है :-

सेकर्ड तथा बैकमैन (1964) के अनुसार, 'मत एक ऐसा विश्वास है जो कि व्यक्ति अपने वातावरण की कुछ वस्तुओं के प्रति रखता है।'

चैपलिन (1975) के अनुसार 'मत एक विश्वास है, विशेषकर ऐसा विश्वास जो अस्थायी होता है तथा जिसमें परिमार्जन की संभावना बनी रहती है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मत एक तरह का विश्वास ही है जो किसी वस्तु से सम्बन्धित होता है तथा जिसमें अस्थायीत्व का गुण होता है। मनोवृत्ति तथा मत दोनों में संज्ञानात्मक तत्व की भूमिका प्रधान होती है।

इस समानता के बावजूद भी मनोवृत्ति तथा मत में निम्नांकित अन्तर है:-

1. मनोवृत्ति का निर्माण चेतन रूप से कम तथा अचेतन रूप से अधिक होता है। जैसे-जैसे किसी वस्तु या व्यक्ति के साथ अन्तःक्रियाएं अधिक होती हैं वैसे-वैसे व्यक्ति में अचेतन रूप से एक विशेष मनोवृत्ति का निर्माण होता है। परन्तु मत का निर्माण चेतन स्तर पर ही होता है।
2. व्यक्ति की क्रियाओं एवं व्यवहारों पर मनोवृत्ति का प्रभाव अधिक पड़ता है। परन्तु मत या विचार का प्रभाव उतना अधिक नहीं पड़ता है।
3. किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति को जानकर उस व्यक्ति द्वारा किसी खास परिस्थिति में किये व्यवहार को जानना आसान हो जाता है। इसके विपरीत किसी व्यक्ति के मत या विचार मात्र को जानकर ऐसा करना सम्भव नहीं है।
4. मत में सिर्फ संज्ञानात्मक तत्व होते हैं परन्तु मनोवृत्ति में संज्ञानात्मक तत्व के अलावा भावात्मक तत्व भी होते हैं।

दूसरे शब्दों में मनोवृत्ति में संवेग या भाव होता है जबकि मत में संवेग या भाव नहीं होता है। जैसे - किसी व्यक्ति का मत है कि भगवान का अस्तित्व है तो इसमें भगवान के रूप एवं कार्य के बारे में तरह-तरह के

संज्ञानात्मक विचार हो सकते हैं। परन्तु इसमें किसी तरह का संवेग या भाव नहीं होता है। लेकिन यदि किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल होती है तो उसमें संवेग या भाव भी पाया जाता है।

#### 4.7 मनोवृत्ति के मुख्य घटक

बैरन तथा वायरने (1979) के अनुसार विचारशील तथा अनुभवी व्यक्ति के रूप में हम अन्य लोगों जिनसे हम प्रतिदिन मिलते हैं उस सबके प्रति हम में से प्रत्येक व्यक्ति भिन्न प्रतिक्रियाएं रखता है यहीं प्रतिक्रियाएं मनोवृत्ति के मुख्य घटक हैं जो निम्नलिखित तीन प्रकारों की होती है:-

1. **भावात्मक:-** इसमें वस्तु या व्यक्ति के प्रति हमारी पसंद अथवा नापसन्द की भावना निहित होती है।
2. **संज्ञानात्मक:-** इसके अंतर्गत उन वस्तुओं या व्यक्तियों के बारे में हमारे विश्वास निहित होते हैं।
3. **व्यवहारात्मक:-** इसमें अन्य व्यक्तियों, समूहों तथा वस्तुओं के प्रति विशिष्ट प्रकार से कार्य करने की प्रवृत्ति निहित होती है।

लिण्डग्रेन (1979) ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि किसी भी मनोवृत्ति में इन तीनों अंगों में कोई भी एक अंग अधिक प्रबल हो सकता है। इस प्रकार कुछ मनोवृत्तियों में भावात्मक पक्ष अधिक होता है। ऐसी मनोवृत्तियों में भावनाओं की अभिव्यक्ति ही व्यवहार के रूप में होती है। अन्य मनोवृत्तियों में ज्ञानात्मक पक्ष अधिक होने पर और अधिक बौद्धिक होने के कारण यह पता लगाना कठिन होता है कि व्यक्ति किसी सामाजिक परिस्थिति में किस प्रकार का रुख अपनाएगा। वह इसे गुप्त भी रख सकता है। अन्य मनोवृत्तियों में व्यवहारात्मक या क्रियात्मक पक्ष अधिक हो सकता है। ऐसी मनोवृत्तियों में भावना तथा विश्वास की कमी पायी जाती है। ये तब दिखायी देते हैं जब आवश्यकताओं की आसानी तथा सीधे तौर पर पूर्ति सम्भव होती है। इसीलिए काट्ज तथा स्टालैण्ड (1959), बैरन तथा वायरने (1979) आदि के मत हैं कि मनोवृत्तियां अन्य व्यक्तियों, समूहों, विचारों अथवा वस्तुओं के प्रति भावनाओं, विश्वासों तथा व्यवहारात्मक प्रवृत्तियों के अपेक्षाकृत स्थायी संगठन को इंगित करती है।

#### 4.8 सारांश

मनोवृत्ति के अर्थ और परिभाषा को जानने के बाद हम सारांश में यह कह सकते हैं कि मनोवृत्ति व्यक्ति के मन की एक विशिष्ट दशा होती है जिसके द्वारा वह व्यक्तियों, वस्तुओं तथा स्थितियों के प्रति अपने मनोभावों को प्रदर्शित करता है। मनोवृत्ति के अर्थ और परिभाषा को जानने के बाद हम सारांश में यह कह सकते हैं मनोवृत्ति व्यक्ति के मन की एक विशिष्ट दशा होता है जिसके द्वारा वह व्यक्तियों, वस्तुओं तथा स्थितियों के प्रति अपने मनोभावों को प्रदर्शित करता है।

समाज मनोवैज्ञानिक में मनोवृत्ति से जो अर्थ लगाया जाता है वह साधारण अर्थ से कहीं अधिक वैज्ञानिक, निश्चित एवं वस्तुनिष्ठ है। समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने मनोवृत्ति को परिभाषित करने के लिए 3 दृष्टिकोणों को अपनाया है एक विमीय दृष्टिकोण, द्विविमीय दृष्टिकोण तथा त्रिविमीय दृष्टिकोण। आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्तियों को परिभाषित करने में इस त्रिविमीय दृष्टिकोण पर ही अधिक बल डाला है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति तीन संघटकों अर्थात् भावात्मक संघटक, व्यवहारात्मक संघटक तथा संज्ञानात्मक संघटक का एक संगठन होता है। इस दृष्टिकोण को मनोवृत्ति का 180° मॉडल भी कहा जाता है। मनोवृत्तियों की विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार समझ सकते हैं कि मनोवृत्ति का सम्बन्ध हमेशा किसी विषय, घटना या विचार आदि से होता है। मनोवृत्ति अर्जित तथा स्थाई होती है। मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक तथा तीव्रता का गुण होता है।

#### 4.9 शब्दावली

- **मनोवृत्ति:** किसी भी वस्तु, परिस्थिति, व्यक्ति या कारक के प्रति विशिष्ट प्रतिक्रिया मनोवृत्ति कहलाती है।
- **मानसिक तत्परता:** विशिष्ट प्रकार की मानसिक स्थिति को मानसिक तत्परता कहते हैं।
- **प्रेरणा:** एक प्रकार की आंतरिक शक्ति जिसके द्वारा व्यवहार संचालित होता है। इसे को अभिप्रेरणा कहा जाता है।

#### 4.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- निम्न में से मनोवृत्ति का सम्बन्ध किससे होता है -

- (i) सिर्फ अमूर्त वस्तु से
- (ii) दोनों तरह की वस्तु से
- (iii) सिर्फ मूर्त वस्तु से
- (iv) इनमें से कोई नहीं

2- मनोवृत्ति के सम्बन्ध में कौन सा कथन असत्य है -

- (i) मनोवृत्ति विशिष्ट दिशा में निर्देशन करती है।
- (ii) मनोवृत्ति में चिंतन का गुण पाया जाता है।
- (iii) मनोवृत्ति अपेक्षाकृत स्थायी होती है।
- (iv) मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण होते हैं।

3- मनोवृत्ति के संगठकों में निम्न में से कौन सा संगठक नहीं माना जाता -

- (i) संज्ञानात्मक संघटक
- (ii) कार्यात्मक संघटक

(iii) भावात्मक संघटक (iv) व्यवहारात्मक संघटक

उत्तर : (1) (ii) (2) (iii) (3) (ii)

#### 4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Cantril, H. (1946) : The Intensity of an Attitude, Journal of Abnorm. Soc. Psychol., p. 41
- Droba, D.D. (1933) : The Nature of Attitude, pp. 444-463, J. of Social, Psychol., p.4
- Krech, D. (1946) : Attitude and Learning, pp. 290-293, Psycho. Review, 53.
- डा० आर.एन.सिंह (2008) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, हॉस्पिटल रोड, आगरा
- Mishra Girishwar (2007) : Applied Social Psychology In India, Sage, Publication New Delhi.

#### 4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मनोवृत्ति से आप क्या समझते हैं ? मनोवृत्ति की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ?
2. मनोवृत्ति को परिभाषित करते हुए इसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए ?
3. मनोवृत्ति के मुख्य घटक कौन-कौन से हैं ?

---

**इकाई-5 मनोवृत्ति का विकास और इसका मापन(Development of attitude and its Measurement)**

---

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 मनोवृत्ति विकास में सहायक मुख्य कारक
  - 5.3.1 सामाजिक सीखना
  - 5.3.2 आवश्यकता पूर्ति
  - 5.3.3 दी गयी सूचनाएं
  - 5.3.4 समूह बंधन
  - 5.3.5 रूढ़िकृतियां
  - 5.3.6 व्यक्तित्व कारक
  - 5.3.7 सांस्कृतिक कारक
  - 5.3.8 सामाजिक सीखना और सामाजिक संस्थाएं
- 5.4 सूचना एवं प्रसार
  - 5.4.1 प्रत्यक्षात्मक कारक
  - 5.4.2 प्रेरणात्मक कारक
- 5.5 मनोवृत्तियों का मापन
  - 5.5.1 थर्स्टन मापनी विधि
  - 5.5.2 लिंकर्ट मापनी विधि
  - 5.5.3 अर्थ भेदक मापनी विधि
  - 5.5.4 बोगार्डस की सामाजिक दूरी मापनी
- 5.6 सारांश
- 5.7 शब्दावली
- 5.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

### 5.1 प्रस्तावना

मनोवृत्ति एक अर्जित प्रवृत्ति (acquired tendency) है जो व्यक्ति की आयु और अनुभवों के बढ़ने के साथ-साथ विकसित होती रहती है। मनोवृत्तियों का विकास एक महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि मनोवृत्तियां स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास में भी सहायक है और एक व्यक्ति की मनोवृत्तियों से ही उसका व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता है। एक समूह के सदस्यों की कुछ मनोवृत्तियां समान होती है तथा अन्य की अलग भी होती हैं। मनोवृत्तियां का निर्माण आवश्यकताओं की संतुष्टि की प्रक्रिया के संदर्भ में होता है। व्यक्ति का समूह सम्बन्ध (affiliation) उसकी मनोवृत्तियों के निर्माण तथा विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

### 5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने से आप जान सकेंगे:-

- मनोवृत्ति के विकास की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- मनोवृत्ति के मापन की मुख्य प्रविधियों को जानने का अवसर प्राप्त होगा।

### 5.3 मनोवृत्ति विकास में सहायक मुख्य कारक

मनोवृत्ति एक अर्जित प्रवृत्ति है। इसके विकास में बहुत से कारकों का प्रभाव पड़ता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों से सम्बन्धित कई अध्ययन एवं प्रयोग किये हैं जिनके आधार पर निष्कर्ष रूप में ऐसे कारकों का वर्णन किया है जिससे मनोवृत्ति का विकास प्रभावित होता है। जो कारक व्यक्ति की मनोवृत्ति के विकास में सहायक हैं, उनका वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:-

#### 5.3.1 सामाजिक सीखना (Social Learning):-

सामाजिक सीखना का प्रभाव मनोवृत्ति के विकास में बहुत अधिक पड़ता है। जिस प्रकार व्यवहार के अलग-अलग रूपों को व्यक्ति सीखता है ठीक वैसे ही मनोवृत्ति के विकास में सीखने की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार, स्कूल, मंदिर, चर्च, मस्जिद आदि ऐसी सामाजिक संस्थाएं हैं जो व्यक्ति को सामाजिक शिक्षण देता है। आज व्यक्ति भिन्न-भिन्न जातियों के प्रति भिन्न मनोवृत्ति विकसित करता है। मर्फी तथा न्यूकाम्ब आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में सामाजिक सीखना के महत्व पर प्रकाश डाला है।

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि मनोवृत्ति के विकास में सीखने की तीन तरह की प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। ये तीन प्रक्रियाएं निम्नलिखित हैं:-

- 1- क्लासिकल अनुबंधन (Classical Conditioning)
- 2- साधनात्मक अनुबंधन (Instrumental Conditioning)

## 3- प्रेक्षणात्मक सीखना (Observational Conditioning)

- 1) **क्लासिकल अनुबंधन:-** यह अनुबंधन सीखने का मुख्य सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई तटस्थ उद्दीपक को अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के साथ बार-बार उपस्थित किया जाता है तो ऐसी स्थिति में कुछ समय बाद तटस्थ उद्दीपक में भी उसी तरह की अनुक्रिया करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि क्लासिकल अनुबंधन के इस नियम द्वारा हम रोजमर्रा की जिंदगी में अनेक नई-नई मनोवृत्तियां सीखते हैं। उदाहरणार्थ, एक बच्चा अपने पिता को बार-बार यह कहते सुनता है कि जर्मनी के व्यक्ति साहसी, मेहनती तथा ईमानदार होते हैं तो धीरे-धीरे उसके अंदर जर्मन व्यक्तियों के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति विकसित हो जाती है। आरंभ में 'जर्मन' शब्द उस बच्चे के लिये तटस्थ शब्द था जिसके प्रति उसके मन में किसी तरह की मनोवृत्ति नहीं थी। इस सम्बन्ध में स्टॉटस तथा स्टॉटस द्वारा किया गया प्रयोग काफी लोकप्रिय है। इन्होंने दो शब्द (जो राष्ट्रीयता बताते थे) को पर्दे पर प्रयोज्यों को दिखलाया। वे दो शब्द डच तथा स्वडिश थे। इसमें से एक राष्ट्रीयता शब्द दिखाने के बाद धनात्मक विशेषण जैसे - खुश, पवित्र, मेहनती आदि दूसरों का उच्चारण प्रयोगकर्ता प्रयोज्यों के सामने करते थे तथा दूसरा राष्ट्रीयता शब्द दिखाने के पश्चात् ऋणात्मक विशेषण जैसे गंदा, कुरूप, तीखा आदि प्रयोज्यों के सामने प्रयोगकर्ता सुनाते थे। परिणाम में देखा गया कि उस राष्ट्रीयता शब्द के प्रति प्रयोज्यों में अनुकूल मनोवृत्ति विकसित हुई जो धनात्मक विशेषण द्वारा युग्मित किये गये थे तथा जिस राष्ट्रीयता शब्द को ऋणात्मक विशेषण द्वारा युग्मित किया गया उसके प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति विकसित हो गयी। अतः इन प्रयोगों द्वारा स्पष्ट है कि इस नियम द्वारा मनोवृत्ति का विकास निश्चित रूप से होता है।
- 2) **साधनात्मक अनुबंधन:-** साधनात्मक अनुबंधन का नियम सीखने का दूसरा महत्वपूर्ण नियम है जिससे मनोवृत्ति का विकास प्रभावित होता है। साधनात्मक अनुकूलन का नियम इस बात पर जोर डालता है कि जिस अनुक्रिया के करने से व्यक्ति को पुरस्कार मिलता है, उसे वह सीख लेता है तथा जिस अनुक्रिया को करने के फलस्वरूप दण्ड मिलता है, उसे वह दोहराना नहीं चाहता। बच्चों में ठीक वैसी ही मनोवृत्ति शीघ्रता से विकसित होती है जो उनके माता-पिता में होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि माता-पिता के समान मनोवृत्ति दिखाने पर उन्हें पुरस्कार के रूप में उनके व्यवहार की प्रशंसा, उन्हें चाकलेट, बिस्कुट आदि खाने के मिलते हैं। ठीक उसी तरह माता-पिता की मनोवृत्ति के विपरीत व्यवहार दिखाने पर उन्हें डांट और कभी-कभी शारीरिक दण्ड भी दिया जाता है। फलस्वरूप वे इस प्रकार की मनोवृत्ति विकसित नहीं कर पाते। मनोवृत्ति विकास में साधनात्मक अनुकूलन के महत्व को समझाने के लिए समाज मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रयोग किये हैं जिसमें इन्सको एवं मैल्सन (1969) ने अपने प्रयोगात्मक सबूतों द्वारा इस नियम की पुष्टि की है।

3) **प्रेक्षणात्मक सीखना:-** प्रेक्षणात्मक सीखना नियम के अंतर्गत व्यक्ति दूसरे की क्रियाओं को तथा उसके परिणामों को देखकर नई अनुक्रिया करना सीख लेता है। इस नियम का प्रतिपादन बैण्डुरा द्वारा किया गया है। समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि प्रेक्षणात्मक सीखने के नियम द्वारा बच्चे प्रायः वैसी मनोवृत्ति अपने अंदर विकसित करते हैं जिन्हें उनके माता-पिता स्वयं सीखने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते हैं। उदाहरणार्थ यदि एक पिता बेइमानी करते हुए अपने पुत्र को ईमानदारी का पाठ पढ़ाता है तो पुत्र पिता की बातों पर अधिक महत्व न देकर स्वयं भी बेइमानी करने की मनोवृत्ति विकसित कर लेता है क्योंकि वह अपने पिता की गलत तथा बेइमानी की आदतों का लगातार प्रेक्षण करता है। ब्राएन, रेडफील्ड तथा मैडर (1971) एवं रशटन (1975) ने इस नियम सम्बन्धी अनेक अध्ययन किये हैं।

### 5.3.2 आवश्यकता पूर्ति (Want Satisfaction):-

प्रायः यह देखा जाता है कि जिस व्यक्ति, वस्तु तथा घटना से हमारे लक्ष्य की प्राप्ति होती है एवं आवश्यकता की पूर्ति होती है, उसके प्रति हमारी मनोवृत्ति अनुकूल होती है। तथा जिस व्यक्ति, वस्तु एवं घटना से हमारे लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है, जिससे हमारी आवश्यकता की पूर्ति न होने के कारण उसके प्रति हमारी मनोवृत्ति प्रतिकूल हो जाती है।

इस तथ्य की पुष्टि रोजेनबर्ग (1956) के प्रयोगात्मक अध्ययन से होती है। इस प्रयोग में 120 छात्रों को चुना गया, निष्कर्ष में पाया गया कि जो वस्तुएं छात्रों के लक्ष्य प्राप्ति में सहायक थीं उनके प्रति उनकी अनुकूल मनोवृत्ति बन गयी तथा जो वस्तुएं लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं थीं, उनके प्रति उन छात्रों की मनोवृत्ति प्रतिकूल बन गयी। इस अध्ययन द्वारा स्पष्ट होता है कि आवश्यकता पूर्ति एक महत्वपूर्ण कारक है जो व्यक्ति की मनोवृत्ति के निर्माण और विकास में सहायक है।

### 5.3.3 दी गयी सूचनाएं (Given Information):-

मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में दी गयी सूचनाओं का भी बहुत महत्व होता है। आजकल भिन्न-भिन्न माध्यमों से व्यक्ति को सूचनाएं दी जाती हैं। इन माध्यमों में रेडियो, टेलीविजन, पत्रिकाएं तथा अखबार मुख्य हैं। इन माध्यमों द्वारा दी गयी सूचनाओं के अनुसार व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति विकसित करता है। वास्तव में सूचनाओं की प्रभावशीलता कई बातों पर निर्भर करती है जिसमें सूचना की विश्वसनीयता मुख्य है। मेयर्स (1988) के अनुसार यदि सूचना देने वाले स्रोत में व्यक्ति को पूरा विश्वास होता है तो उस परिस्थिति में दी गयी सूचना अवश्य प्रभावकारी होती है तथा एक नयी मनोवृत्ति को विकसित करती है। फेस्टिंगर (1957), कार्टराइट तथा हारेरी (1956) द्वारा किये गये अध्ययनों से इस बात की पुष्टि होती है।



**5.3.4 समूह बंधन (Group Affiliation):-**

मनुष्य की मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में समूह बंधन का भी प्रभाव पड़ता है। समूह बंधन का अर्थ है व्यक्ति का किसी खास समूह से सम्बन्ध रखना। जब व्यक्ति किसी विशेष समूह में संबंध जोड़ता है तो वह उस समूह के मूल्यों, मानदण्डों, विश्वासों को देखता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने निम्न दो प्रकार के समूह से सम्बन्ध का मनोवृत्ति विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है।

1- प्राथमिक समूह (Primary Group):- प्राथमिक समूह में सदस्यों की संख्या साधारणतः कम होती है तथा सदस्यों में घनिष्ठ एवं आमने-सामने का सम्बन्ध (face-to-face relationship) होता है। जैसे - परिवार, खिलाड़ियों का समूह आदि। चूंकि प्राथमिक समूह के सदस्यों में अधिक सहयोग, भाईचारा एवं सहानुभूति का गुण पाया जाता है। अतः इसका एक सदस्य ठीक वैसी ही मनोवृत्ति विकसित करता है, जैसी अन्य सदस्यों की होती है। भाई की मनोवृत्ति का विकास बहन की मनोवृत्ति के अनुकूल, भाई-बहन की मनोवृत्ति का विकास माता-पिता की मनोवृत्ति के अनुसार प्राथमिक समूह के इसी प्रभाव के कारण होता है। उदाहरणार्थ, जिन व्यक्तियों या घटनाओं के प्रति माता-पिता की मनोवृत्ति अनुकूल होती है, बच्चों में भी उन घटनाओं एवं व्यक्तियों के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति विकसित हो जाती है। दूसरी ओर जिन चीजों के प्रति माता-पिता की मनोवृत्ति होती है। बच्चे भी उन चीजों के प्रति एक प्रतिकूल मनोवृत्ति एक प्रतिकूल (unfavourable attitude) विकसित कर लेते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राथमिक समूह के प्रभाव के कारण समूह के सदस्यों की मनोवृत्ति में एकरूपता (homogeneity) पायी जाती है। कैम्पवेल, गुरीन तथा मिलर (1954) ने तीन प्रकार के प्राथमिक समूहों की राजनीतिक मनोवृत्ति के निर्माण में उच्च एकरूपता देखी है। क्रेच क्रचफील्ड तथा बैलेची (1962) के अनुसार प्राथमिक समूह के प्रभाव के कारण मनोवृत्ति में जो एकरूपता आती है, उसके निम्न चार कारण बतलाये हैं:-

- 1- प्राथमिक समूह के सदस्यों पर अनुपालन (conformity) के लिए अधिक सामूहिक दबाव मिलता है। इसके कारण ऐसे सदस्यों की मनोवृत्ति में एकरूपता पायी जाती है।
- 2- प्राथमिक समूह द्वारा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है जिससे किसी सदस्य की मनोवृत्ति अन्य सदस्यों की मनोवृत्ति के अनुकूल होती है। इससे भी सभी सदस्यों की मनोवृत्ति में एकरूपता पायी जाती है।
- 3- किसी भी प्राथमिक समूह के सदस्यों को एक समान सूचनाएं दी जाती है। फलतः उनकी मनोवृत्तियों में एकरूपता आ जाती है।

2- संदर्भ समूह (Reference Group) :- मनोवृत्ति के निर्माण व विकास में संदर्भ समूह (तममितमदबम हतवनच) का भी महत्वपूर्ण योगदान है। संदर्भ समूह का अर्थ है व्यक्ति ऐसे समूह के साथ आत्मीकरण (identification) कर लेता है चाहे वह उस समूह का सदस्य औपचारिक रूप से हो या न हो। व्यक्ति संदर्भ समूह के लक्ष्य, मूल्य आदि को अपनाकर अपने चरित्र और व्यवहार में ठीक वैसा ही परिवर्तन करता है जैसा कि इन

लक्ष्यों तथा मूल्यों से अपेक्षा की जाती है। स्पष्ट है कि संदर्भ समूह का प्रभाव मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में काफी अधिक है। रॉसी एवं रॉसी (1961) ने अपने अध्ययन में मनोवृत्ति निर्माण में धार्मिक संदर्भ समूह (religious reference group) के महत्व को दिखलाया है। मेयर्स (1988) के अनुसार संदर्भ समूह व्यक्ति के मनोवृत्ति के निर्माण में इसलिए सहायता प्रदान करता है क्योंकि संदर्भ समूह का मानक उसे वैसा करने के लिए बाध्य करता है।

### 5.3.5 रुढ़ियुक्तियां (Stereotypes):-

प्रत्येक समाज में कुछ रुढ़ियुक्तियां देखने को मिलती हैं जिनसे भी व्यक्ति की मनोवृत्ति का विकास प्रभावित होता है। रुढ़िकृतियों से तात्पर्य किसी वर्ग या समुदाय के लोगों के बारे में स्थापित सामान्य प्रत्याशाओं तथा सामान्यीकरण से होता है। जैसे - हमारे समाज में महिलाओं के प्रति एक रुढ़िकृति है कि वह पुरुषों की अपेक्षा अधिक धार्मिक एवं परामर्शग्राही होती है। फलस्वरूप महिलाओं के प्रति एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति सामान्य लोगों में पायी जाती है। इसी तरह के कई ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि रुढ़िकृतियों द्वारा व्यक्ति की मनोवृत्ति का विकास तथा निर्माण होता है।

### 5.3.6 व्यक्तित्व कारक (Personality factors):-

मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में व्यक्तित्व शीलगुणों का भी अधिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति उन मनोवृत्तियों को शीघ्रता से सीख लेता है जो उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों (personality traits) के अनुकूल होती है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न तरह की मनोवृत्तियों जैसे - धार्मिक मनोवृत्ति, राजनैतिक मनोवृत्ति तथा सजातिकेन्द्रवाद में व्यक्तित्व कारकों का अध्ययन किया है। फ्रेंच (1947) ने अपने अध्ययन में धार्मिक मनोवृत्ति के विकास में व्यक्तित्व कारकों के महत्व को दिखलाया है। मैकक्लास्की ने राजनैतिक मनोवृत्ति में व्यक्तित्व कारकों के महत्व को दिखलाया है। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि कम पढ़े लिखे तथा मन्दबुद्धि लोगों में अनुदार मनोवृत्ति अधिक पायी जाती है। इन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर यह भी बताया है कि अत्याधिक अनुदार मनोवृत्ति वाले व्यक्ति अधिक झगड़ालू, शक्की, अपनी कमजोरी के लिए दूसरों पर आरोप लगाने वाले वैरपूर्ण आक्रामक होते हैं। ऐसे लोग अधिक चिन्तित, दोषमात्र तथा अपूर्णताभाव से भी ग्रस्त होते हैं।

### 5.3.7 सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors):-

मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में सांस्कृतिक कारकों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक संस्कृति का अपना मानदण्ड, मूल्य, परम्पराएं, धर्म आदि होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का पालन-पोषण किसी न किसी संस्कृति में ही होता है। फलस्वरूप उसका समाजीकरण इन्हीं सांस्कृतिक कारकों द्वारा प्रभावित होता है। व्यक्ति अपनी मनोवृत्तियों को इन्हीं सांस्कृतिक कारकों के अनुसार विकसित करता है। मीड (1935) ने अपने अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण ऐरापेश जाति के लोगों की मनोवृत्ति में उदारता, सहयोग की

भावना तथा दयालुता आदि अधिक होती है जबकि मुण्डुगुमोर जाति के लोगों की मनोवृत्ति में ठीक इसके विपरीत अर्थात् आक्रामकता तथा कटुता अधिक पायी जाती है। ज्ञान, विश्वास, कला, कानून, साहित्य, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि का समग्र रूप ही संस्कृति कहलाता है। मनोवृत्तियों का विकास व्यक्ति का सीखा हुआ व्यवहार होता है। यही व्यवहार संस्कृति से पूर्णतः प्रभावित होता है। क्रोबर (1948) नाडल (1973) कुक (1952) एवं होगेन (1952) ने अपने अध्ययनों के आधार पर सिद्ध किया है मनोवृत्तियों के विकास में संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

### 5.3.8 सामाजिक सीखना और सामाजिक संस्थाएं (Social Learning and Social Institutions):-

परिवार, स्कूल, मंदिर, मस्जिद, चर्च आदि समाज की कुछ ऐसी संस्थाएं हैं जो व्यक्ति को सामाजिक शिक्षण देती हैं। यह सामाजिक शिक्षण भी मनोवृत्ति के निर्माण और विकास में सहायक हैं। मर्फी और न्यूकाम्ब आदि ने अपने अध्ययनों के आधार पर मनोवृत्तियों के निर्माण व विकास में सामाजिक सीखने के महत्व पर प्रकाश डाला है।

### 5.4 सूचना एवं प्रसार

व्यक्ति को जिस उत्तेजना के सम्बन्ध में जितनी अधिक सूचनाएं मिलती हैं या जिसका प्रचार व्यक्ति अधिक देखता है उस उत्तेजना से सम्बन्धित उसमें मनोवृत्तियों का विकास जल्दी हो जाता है। स्मिथ का कथन है कि मात्र किताब में पढ़कर उसके आधार पर किसी के सम्बन्ध में धनात्मक या ऋणात्मक मनोवृत्ति का विकास हो सकता है।

#### 5.4.1 प्रत्यक्षात्मक कारक (Perceptual Factors):-

व्यक्ति जैसी उत्तेजनाओं का प्रत्यक्षण करता है उसी प्रकार से उस व्यक्ति की मनोवृत्तियों का निर्माण व विकास होता है।

#### 5.4.2 प्रेरणात्मक कारक (Motivational Factors):-

क्रेच तथा क्रचफील्ड (1962) का मत है कि मनोवृत्तियों के निर्धारण में प्रेरणा तत्व महत्वपूर्ण है। जैविक तथा सामाजिक दोनों प्रकार की प्रेरणाएं मनोवृत्तियों के विकास में सहायक हैं। मनोवृत्तियों का विकास और निर्माण व्यक्ति की आवश्यकताओं की संतुष्टि पर भी निर्भर करता है। स्मिथ, ब्रूनर तथा व्हाइट (1956) द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार व्यक्ति की आवश्यकताएं, रुचियां तथा आकांक्षाएं भी मनोवृत्तियों को सार्थक ढंग से प्रभावित करती हैं।

### 5.5 मनोवृत्तियों का मापन

समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति को मापने के लिए विभिन्न विधियों का प्रतिपादन किया है। मनोवृत्ति मापन से तात्पर्य व्यक्ति में मनोवृत्ति की दिशा और उसकी मात्रा का पता लगाने से होता है। मनोवृत्ति की दिशा से ज्ञात होता है कि मनोवृत्ति धनात्मक है या ऋणात्मक है तथा उसकी मात्रा से तात्पर्य इस बात से होता है कि मनोवृत्ति धनात्मक है तो कितनी मात्रा में या ऋणात्मक है तो कितनी मात्रा में है।

मनोवृत्ति मापन में समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा दो मुख्य पूर्वकल्पनाएं की जाती हैं जो निम्नलिखित हैं।

1. मनोवृत्ति के मापन में यह पूर्वकल्पना कर ली जाती है कि व्यक्ति का व्यवहार मनोवृत्ति की घटना या वस्तु के प्रति एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में संगत होगा। उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति सहशिक्षा को नापसंद करता है तो हर परिस्थिति में नापसंद ही करेगा। इस प्रकार की संगति नहीं रहने पर मनोवृत्ति को मापना संभव नहीं है।
2. मनोवृत्ति को सीधे मापना संभव नहीं है। फलतः इसका मापन अधिकतर परोक्ष रूप से होता है। इसलिए इस बात की पूर्वकल्पना की जाती है कि व्यक्ति के व्यवहारों एवं कथनों द्वारा ही उसकी मनोवृत्ति के बारे में अंदाजा लगाया जा सकता है।

आज मनोवृत्ति मापन की अनेक मापनी प्रचलित हैं। मनोवृत्तियों का मापन प्रश्नावलियों या सेल्फ रेटिंग से प्राप्त उत्तरों के विश्लेषण द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त मनोवृत्ति का मापन स्मृति और प्रत्यक्षात्मक प्रक्रियाओं पर प्रभाव के रूप में भी किया जाता है।

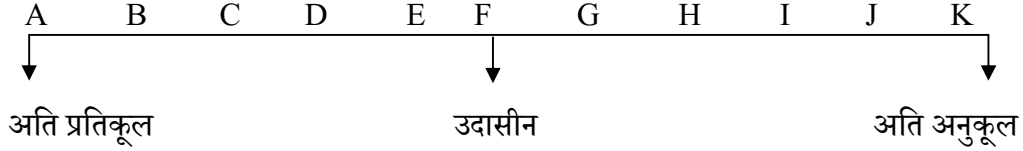
मनोवृत्ति मापने के लिए समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा कई मनोवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है। ये मापनियां निम्नलिखित हैं:-

- 5.5.1 थर्स्टन मापनी विधि (Thurstone's Scaling Method)
- 5.5.2 लिकर्ट मापनी विधि (Likert's Scaling Method)
- 5.5.3 अर्थ भेदक मापनी विधि (Semantic Differential Scale Method)
- 5.5.4 बोगार्डस की सामाजिक दूरी मापनी (Bogardus Scale of Social Distance)

#### 5.5.1 थर्स्टन की सम-विस्तार पद्धति (Thurstone's Technique of Equal Appearing Intervals):-

इस प्रकार की मनोवृत्ति मापनी के निर्माण में सर्वप्रथम जिस प्रकार की मनोवृत्ति का मापन करना हो उसी मनोवृत्ति सम्बन्धित कथनों को कई स्रोतों जैसे पुस्तकें, शोध पत्रिका, लेखकों की रचनाओं आदि की सहायता से एकत्र किया जाता है फिर कथनों को सरल, संक्षिप्त, सार्थक एवं स्पष्ट बनाकर विशेष ढंग से व्यवस्थित किया जाता है। कथनों की संख्या लगभग 40 या 50 होती है। इस पद्धति में निर्णायकों से कथनों का उत्तर प्राप्त करने की 11

श्रेणियां होती हैं। यह 11 श्रेणियां समविस्तार की सांतव्य के आधार पर ही मनोवृत्ति मापनी में निम्न प्रकार से अंकित की जाती हैं:-



मनोवृत्ति मापनी में प्रत्येक कथन को अंतिम रूप से चुनने के लिए प्रत्येक कथन का मापनी मूल्य तथा साथ ही साथ प्रत्येक कथन का चतुर्थांश मूल्य ज्ञात करते हैं। अंतिम रूप से चुने गये प्रश्नों की संख्या 20 होती है। मापनी का प्रशासन तथा फलांकन सरल है। प्रयोज्य कथन से सहमत होने पर (✓) तथा असहमत होने पर (×) का चिन्ह लगाता है। फलांकन में सही चिन्ह वाले कथनों को उनके मापनी मूल्यों के आधार पर कम से अधिक के क्रम में लिखकर मध्यांक ज्ञात करते हैं। मध्यांक मूल्य ही प्रयोज्य का मनोवृत्ति मूल्य है।

- थर्सटन की मापनी विधि के गुण व दोष:-

गुण:- इस विधि के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं -

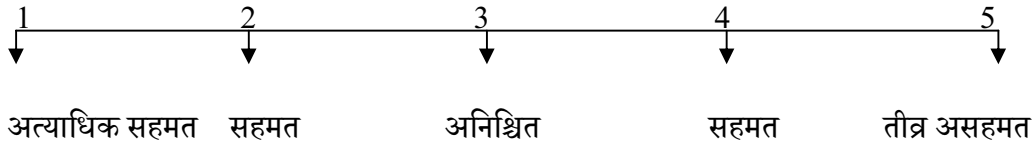
1. इस विधि में कथनों की छंटनी ग्यारह बिन्दु में रखकर की जाती है। फलस्वरूप, इससे बनने वाली मापनी में मनोवृत्ति मापने की क्षमता अधिक तीव्र होती है।
2. इस विधि में सरलता व सुगमता का गुण पाया जाता है। दूसरे दूसरों में, इस विधि द्वारा तैयार की गयी मनोवृत्ति मापनी से व्यक्तियों की मनोवृत्ति को मापने में कोई कठिनाई नहीं होती और सुगमता से हमें एक ऐसा सूचक भी प्राप्त हो जाता है जिसकी सहायता से हम यह समझ पाते हैं कि व्यक्ति की मनोवृत्ति अध्ययन की जाने वाली वस्तु या विषय के अनुकूल है या प्रतिकूल है।

थर्सटन मापनी विधि में मौजूद इन गुणों के बावजूद इस विधि में कुछ अवगुण (दोष) हैं जो निम्न हैं:-

1. कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि थर्सटन विधि द्वारा मनोवृत्ति मापनी बनाने में काफी समय खर्च होता है साथ ही साथ अधिक धन की भी आवश्यकता पड़ती है। थर्सटन ने स्वयं इस बात पर बल दिया है कि एक वैध (अंसपक) मनोवृत्ति मापनी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि निर्णायकों की संख्या ज्यादा से ज्यादा हो। संभवतः ऐसी परिस्थिति में समय व धन दोनों ही अधिक खर्च होगा।
2. फ्रैन्सवर्थ (1943) ने बताया है कि थर्सटन की यह पूर्वकल्पना की निर्णायकों द्वारा सभी ग्यारह श्रेणियों को मनोवैज्ञानिक रूप से समान माना जाता है, सही नहीं है। वास्तविकता यह है कि निर्णायक इन सभी श्रेणियों को समान समझकर कथनों को नहीं छांटते हैं।

**5.5.2 लिकर्ट की तीव्रता योग मापक पद्धति (Likert's Technique of Summated Ratings):-**

लिकर्ट (1932) द्वारा निर्मित मनोवृत्ति मापनी में किसी विषय के प्रति अनुकूल तथा प्रतिकूल मनोवृत्तियों का मापन किया जाता है। इस मापनी को बनाते समय सर्वप्रथम अधिक संख्या में धनात्मक तथा ऋणात्मक कथनों को एकत्र किया जाता है। प्रत्येक कथन के सामने पांच बिन्दु मापनी लगाया जाता है जिसकी सहायता से मनोवृत्तियों को 5 भिन्न-भिन्न मात्राओं में मापा जाता है।



कथनों को एकत्र करने के बाद उसके चयन के लिए पद विश्लेषण विधि अपनाते हैं। कथनों के पद विश्लेषण के लिए टी-मान ज्ञात करते हैं। किसी कथन का टी-मान 1.75 या इससे अधिक प्राप्त होने पर कथन को परीक्षण में शामिल किया जाता है। बहुधा सर्वप्रथम सर्वाधिक टी-मान वाले कथनों को चुनकर अंतिम रूप से उन कथनों की सूची ही लिकर्ट विधि द्वारा बनायी गयी मनोवृत्ति मापनी है।

- लिकर्ट मापनी विधि के गुण तथा दोष-

गुण:-

1. लिकर्ट विधि में निर्णायकों का प्रयोग न करके प्रयोज्यों का प्रयोग किया जाता है। अतः कथनों का अंतिम चयन निर्णायकों की अपनी मनोवृत्ति के प्रभाव से मुक्त होता है।
2. लिकर्ट विधि द्वारा मनोवृत्ति मापनी बनाने में समय व धन कम लगता है। अतः लिकर्ट विधि में व्यवहारिकता का गुण पाया जाता है।
3. लिकर्ट विधि में लचीलेपन का गुण भी पाया जाता है तथा इससे प्राप्त आंकड़ों द्वारा विभिन्न तरह के क्रमसूचक सांख्यिकीय विश्लेषण को भी आसानी से किया जा सकता है।

दोष:-

1. लिकर्ट विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि इस विधि में अधिकतम प्राप्तांक तथा न्यूनतम प्राप्तांक का अर्थ तो स्पष्ट है क्योंकि पहले द्वारा अनुकूल मनोवृत्ति तथा दूसरे द्वारा प्रतिकूल मनोवृत्ति का पता चलता है। परंतु जो अंक अधिकतम प्राप्तांक तथा न्यूनतम प्राप्तांक के बीच में आते हैं, द्वारा क्या ज्ञात होता है, कि व्याख्या नहीं की गयी है।

2. लिफ्ट विधि द्वारा बनाई गई मनोवृत्ति मापनी से मनोवृत्ति की दिशा का तो पता चलता है परंतु मात्रा का नहीं। दूसरे दूसरों में यह तो ज्ञात होता है कि मनोवृत्ति अनुकूल है या प्रतिकूल परन्तु यह पता नहीं चलता कि अनुकूलता तथा प्रतिकूलता की मात्रा कितनी है।

### 5.5.3 अर्थ भेदक प्रविधि (The Semantic Differential Tehcnique) :-

इस प्रविधि का विकास आसगुड, सुसी, टनेनबॉम (1957) द्वारा किया गया था। इस प्रविधि में दो छोर वाले विशेषण मापनियों की सहायता से मनोवृत्ति का मापन करते हैं। इस प्रविधि की सहायता से सुंदर-असुंदर, मोटा-पतला, तीव्र-मंद जैसे विशेषणों का उपयोग किया जाता है। इसका प्रथम छोर दूसरों का अत्याधिक नकारात्मक तथा अंतिम छोर अत्याधिक सकारात्मक अर्थ प्रस्तुत करता है। इन दो छोर वाले विशेषणों पर प्रयोज्य की प्रतिक्रियां नोट की जाती है। प्रतिक्रिया नोट करने के लिए सात बिन्दु मापनी का उपयोग किया जाता है। प्रयोज्य का सम्पूर्ण प्राप्तांक उसके द्वारा 7 बिंदुओं पर लगाये गये निशान के मूल्यांकन के आधार पर प्राप्त किये गये अंको को जोड़कर प्राप्त किया जाता है। अर्थभेदक मापनी में वस्तु के गुणार्थक अर्थ को मापने के लिए द्विध्रुवीय विशेषण की एक श्रृंखला तैयार की जाती है जो प्रायः 7 बिंदु मापनी द्वारा पृथक रहती है। इन विशेषणों द्वारा मनोवृत्ति वस्तु के प्रति मनोवृत्ति की 3 मूल विमाओं के बारे में बताया गया है:-

- 1- शक्ति (Potency or P):- मनोवृत्ति वस्तु में कितनी शक्ति या भौतिक आकर्षण है।
- 2- मूल्यांकन (Evaluation or E):- मनोवृत्ति वस्तु में कितनी अनुकूलता या प्रतिकूलता है।
- 3- क्रिया (Activity or A):- मनोवृत्ति वस्तु में गति होने की कितनी मात्रा है।

शक्ति को कुछ खास विशेषण युग्म जैसे मजबूत-कमजोर, बड़ा-छोटा, कड़ा-मुलायम आदि द्वारा अर्थभेदक मापनी में लिखा जाता है। मूल्यांकन को कुछ विशेषण युग्म जैसे अच्छा बुरा, साफ गंदा, ईमानदार, बेईमान आदि द्वारा मापनी में दिखाया जाता है। इसी प्रकार क्रिया को कुछ विशेषण युग्म सक्रिय निष्क्रिय, तेज-धीमा, गर्म-ठण्डा, द्वारा दिखाया जाता है। इन तीनों तरह के विशेषण युग्मों को मिलाकर करीब 40-50 युग्म तैयार किये जाते हैं।

- अर्थभेदक मापनी विधि के गुण तथा दोष -

गुण:-

1. किसी दो या दो से अधिक वस्तुओं के प्रति एक ही व्यक्ति की मनोवृत्ति की तुलना करने में यह विधि सबसे सरल तथा उपयोगी है।
2. इस विधि द्वारा मनोवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति के मापन में कम समय लगता है।

दोष:-

1. इस मापनी विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि विशेषणों का जो युग्म तैयार किया जाता है वह पूर्ण रूप से उपयुक्त नहीं होता। फलतः उसके आधार पर मापी गयी मनोवृत्ति की वैधता संदिग्ध हो जाती है।

2. कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इस मापनी पर प्रयोज्यों द्वारा दी गयी अनुक्रियाएं मात्र सतही होती है। उदाहरणार्थ ऐसा हो सकता है कि एक व्यक्ति पुलिस को बेईमान मानता हो पर मापनी पर उसे उतना बेईमान न बता रहा हो।

#### 5.5.4 बोगार्डस की सामाजिक दूरी मापनी (Bogardus Scale of Social Distance):-

मनोवृत्ति के मापन के लिए सन् 1925 में सामाजिक अंतर या सामाजिक दूरी मापनी का निर्माण बोगार्डस द्वारा किया गया था। इनका मत था कि विभिन्न धर्म, जाति तथा राष्ट्रियता के लोगों के प्रति हमारी घनिष्ठता में भिन्नता पायी जाती है। जिन लोगों से हम घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं उनके प्रति हमारी दूरी कम होती है तथा जिनसे हमारी घनिष्ठता कम होती है उनसे दूरी अधिक होती है। इसी कारण हम अन्य समूह के लोगों के प्रति विभिन्न मात्रा में अंतःसम्बन्ध या अंतःक्रिया करते हैं। अन्य समूहों के लोगों के प्रति घनिष्ठता तथा दूरी की इस भिन्न-भिन्न मात्रा के आधार पर ही हम उनके साथ व्यवहार करते हैं। इसीलिए घनिष्ठता या दूरी व्यवहार को पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। अतः इस सामाजिक दूरी के आधार पर हम मनोवृत्तियों का मापन कर सकते हैं।

बोगार्डस ने विभिन्न देशों के नागरिकों के प्रति सामाजिक दूरी मापने के लिए इस विधि का प्रयोग किया था। तब से आज तक अनगिनत शोध कार्यों में इस प्रकार की मापनी का प्रयोग लगातार हमारे देश तथा विदेशों में हो रहा है। भारत में इस दिशा में कार्य की शुरुआत कुप्पूस्वामी (1952) द्वारा की गयी।

#### मापनी निर्माण की विधि:-

बोगार्डस की इस विधि द्वारा मनोवृत्ति मापन के लिए सामाजिक दूरी मापनी का निर्माण करने के लिए निम्न चरणों से गुजरना पड़ता है -

1. इस विधि से मनोवृत्ति मापनी का निर्माण करने के लिए सर्वप्रथम कुछ ऐसे कथन चुन लिये जाते हैं जो घनिष्ठता तथा दूरी की विभिन्न मात्राएं व्यक्त करते हैं। इन कथनों को क्रमबद्ध रूप से लिखकर छपवा लेते हैं। कथनों का क्रम इस प्रकार होता है कि सबसे कम दूरी व्यक्त करने वाला कथन सबसे पहले, अंत में सबसे अधिक दूरी व्यक्त करने वाला तथा अन्य कथन उनके द्वारा व्यक्त की गयी दूरी के आधार पर बीच में क्रम से होते हैं। इन कथनों को बोगार्डस ने श्रेणियां कहा है।
2. कथनों को छपवाने के बाद उन प्रयोज्यों को दे दिया जाता है जिनकी सामाजिक दूरी का मापन करना होता है। उन्हें यह निर्देश दिया जाता है कि "आप अपनी प्रथम भाव प्रतिक्रिया के अनुसार दिये गये देश या जाति के सदस्यों के साथ स्वेच्छानुसार कितनी दूरी या निकटता रखना चाहेंगे उसी के अनुसार एक या अधिक श्रेणियों पर सही (✓) का चिन्ह लगा दें।



3. प्रयोज्यों द्वारा प्रत्येक (✓) चिन्हित किये गए कथन को एक अंक प्रदान किया जाता है। इन अंको के योग के आधार पर विभिन्न देशों या जाति के लोगों के प्रति प्रयोज्य की सामाजिक दूरी या निकटता की गणना की जाती है।
4. जिस व्यक्ति के प्राप्तियों का योग जितना अधिक होता है उसकी सामाजिक दूरी दिये गये देश या जाति के प्रति उतनी कम होती है। कम प्राप्तियों अधिक सामाजिक दूरी के द्योतक होते हैं।

बोर्गार्डस ने विभिन्न राष्ट्र के नागरिकों के प्रति अमेरिकन लोगों की सामाजिक दूरी मापने के लिए निम्नलिखित सात श्रेणियों (कथनों) का उपयोग किया था।

- 1- विवाह के द्वारा घनिष्ठ सम्बन्ध बनाकर।
- 2- अपने क्लब में व्यक्तिगत मित्र बनाकर।
- 3- अपने मुहल्ले में पड़ोसी के रूप में।
- 4- अपने व्यवसाय में नौकरी दिलाने के रूप में।
- 5- अपने देश में नागरिक के रूप में।
- 6- अपने देश में पर्यटक के रूप में।
- 7- अपने देश से निकालकर।

- बोर्गार्डस सामाजिक दूरी मापनी विधि के गुण व दोष-

गुण:-

1. बोर्गार्डस की सामाजिक दूरी मापनी विभिन्न धर्मों, जातियों, देशों आदि के सदस्यों के प्रति मनोवृत्तियों का मापन करने की सबसे आसान विधि है।

परंतु इसमें कुछ दोष निम्नलिखित हैं -

1. बोर्गार्डस की सामाजिक दूरी मापनी में सम्मिलित श्रेणियों (कथनों) की दूरी समान नहीं होता जिस कारण वास्तविक स्थिति का पता लगाना कठिन हो जाता है।
2. इस मापनी का दूसरा बड़ा दोष यह है कि इसमें कथनों का एकत्रीकरण अध्ययनकर्ता की स्वेच्छा से होता है। इनको एकत्र करने की न कोई कसौटी है और न ही कोई सांख्यिकीय पद्धति। इससे मापनी में वस्तुनिष्ठता न होकर वैयक्तिकता आ जाती है।

## 5.6 सारांश

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मनोवृत्ति का विकास एवं मापन समाज मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण विषय रहा है इनके द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जिनसे

मनोवृत्ति का निर्माण तथा विकास प्रभावित होता है। इसी प्रकार मनोवृत्ति के मापन के लिए अनेक विधियों का प्रतिपादन समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है।

### 5.7 शब्दावली

- **संस्कृति:** पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त रीति-रिवाजों, व्यवहार प्रतिमानों, मूल्यों को प्राप्त करना तथा उनके अनुरूप व्यवहार करना संस्कृति कहते हैं।
- **व्यक्तित्व शीलगुण:** व्यक्तित्व की विशेषताओं के योग को शीलगुण कहा जाता है।
- **समूह प्रभाव:** व्यक्तियों की उपस्थिति का मानसिक विचारों पर पड़ने वाले प्रभाव को समूह प्रभाव कहते हैं।
- **सामाजिक सीखना:** सामाजिक रीति-रिवाजों, प्रतिमानों मूल्यों को सीखना ही सामाजिक सीखना कहा जाता है।
- **प्रत्यक्षण:** अपने चारों ओर के वातावरण के बारे में अर्थपूर्ण तत्कालिक ज्ञान को प्रत्यक्षण कहते हैं।

### 5.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- मनोवृत्ति विकास में निम्न में से किसका प्रभाव सबसे अधिक पाया जाता है।

- (i) स्रोत की उपयुक्तता से।
- (ii) स्रोत का व्यक्ति के साथ सम्बन्धता से।
- (iii) स्रोत की आकर्षणशीलता से।
- (iv) स्रोत जिससे व्यक्ति को सूचना मिलती है, की विश्वसनीयता से।

उत्तर: (1) (iv)

### 5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Bogardus, E.S. (1952) : Measuring Social Distance, p.p. 299-308, of Appl. Social Psychol., 9
- Pace, C.R. (1939) : A Situation Test To Measure Social, Political of Social Psychol., 10.
- Thurstone, L.L. (1929) : The Theory of Attitude Measurement, pp. 222-241, Psychol. Bull., 36

- 
- डा० आर.एन.सिंह (2008) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान,  
अग्रवाल प्रकाशन, हॉस्पिटल रोड, आगरा
- Mishra Girishwar (2007) : Applied Social Psychology In India,  
Sage, Publication New Delhi.
- 

### 5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. मनोवृत्ति के विकास में सहायक मुख्य कारक कौन-कौन से हैं ?
2. मनोवृत्तियों के मापन की किन्हीं दो विधियों का वर्णन कीजिए ?
3. थर्सटन तथा लिंकर्ट मापनियों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए ?

## इकाई-6 मनोवृत्ति परिवर्तन के सिद्धान्त और कारक(Theories and Factors of Attitude Change)

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 मनोवृत्ति परिवर्तन के प्रकार
  - 6.3.1 अनुकूल परिवर्तन
  - 6.3.2 प्रतिकूल परिवर्तन
- 6.4 मनोवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक
- 6.5 मनोवृत्ति परिवर्तन के सिद्धान्त
  - 6.5.1 संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त
  - 6.5.2 सामाजिक सीखना सिद्धान्त
  - 6.5.3 कार्यात्मक सिद्धान्त
  - 6.5.4 विविध सिद्धान्त
- 6.6 सारांश
- 6.7 शब्दावली
- 6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

### 6.1 प्रस्तावना

मनोवृत्तियां बहुत कुछ स्थायी होती हैं परन्तु इनका अर्थ यह नहीं कि मनोवृत्तियां परिवर्तित नहीं होती। समाज में रहकर व्यक्ति मनोवृत्तियों को सीखता है या अर्जित करता है। अतः इनका परिवर्तन भी सम्भव है। समय-समय पर मनोवृत्ति के निर्माण एवं संपोषित करने वाले कारकों में परिवर्तन होने पर परिवर्तित होती रहती है। यदि वस्तु या व्यक्ति के प्रति हमारी मनोवृत्ति प्रतिकूल है तो सम्भव है कि कुछ दिनों बाद यह मनोवृत्ति बदलकर अनुकूल हो जाये लेकिन ऐसा नहीं भी हो सकता है। परन्तु इतना तो निश्चित है कि परिस्थिति में परिवर्तन होने से व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है।

### 6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:-

- मनोवृत्तियों में परिवर्तन के बारे में पढ़ सकेंगे।
- मनोवृत्तियों में परिवर्तन के सिद्धान्तों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने वाले अन्य महत्वपूर्ण कारकों के बारे में जान सकेंगे।

### 6.3 मनोवृत्ति परिवर्तन के प्रकार

मनोवृत्तियों में परिवर्तन दो प्रकार से हो सकता है:-

#### 6.3.1 अनुकूल परिवर्तन (Congruent Change):-

जब किसी मनोवृत्ति में परिवर्तन मनोवृत्ति की कर्षण शक्ति के अनुकूल होता है तो ऐसा परिवर्तन अनुकूल परिवर्तन कहलाता है। जैसे यदि मनोवृत्ति धनात्मक है तो और अधिक धनात्मक हो जाये या यदि ऋणात्मक है तो और अधिक ऋणात्मक हो जाये।

#### 6.3.2 प्रतिकूल परिवर्तन (Incongruent Change):-

जब किसी मनोवृत्ति में परिवर्तन मनोवृत्ति की कर्षण शक्ति के विपरीत होता है तो ऐसे परिवर्तन को प्रतिकूल परिवर्तन कहते हैं। जैसे यदि मनोवृत्ति धनात्मक है तो उसकी धनात्मकता इतनी कम होती जाये कि मनोवृत्ति ऋणात्मक हो जाये। इसी प्रकार यदि मनोवृत्ति ऋणात्मक है तो उसकी ऋणात्मकता इतनी कम होती जाये कि मनोवृत्ति धनात्मक हो जाये।

### 6.4 मनोवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक

मनोवृत्ति परिवर्तन को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं:-

- 1) **जनमाध्यम एवं सम्प्रेषण (Mass Media and Communcation):-** पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, समाचार पत्र, टेलीविजन आदि प्रचलित जनमाध्यम और सम्प्रेषण के साधन हैं। इन साधनों द्वारा देश के अधिकांश व्यक्तियों तक सूचना पहुंचाई जा सकती है। इन साधनों का बार-बार प्रयोग कर उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन किया जा सकता है। पीटरसन एवं थर्सटन (1937), होवलैण्ड एवं वीस (1952) तथा जेनिस एवं फेसबैक (1953) ने अपने अध्ययनों में पाया कि मनोवृत्ति परिवर्तन पर सम्प्रेषण का प्रभाव पड़ता है।
- 2) **सम्पर्क (Contact):-** जब व्यक्ति परस्पर सम्पर्क में आते हैं और उन्हें साथ-साथ उठने-बैठने खाने-पीने और रहने का अवसर मिलता है। तो ऐसे सम्पर्क से भी मनोवृत्तियां परिवर्तित हो जाती हैं। गटमैन एवं फोवा (1951) में अपने अध्ययन द्वारा स्पष्ट किया कि सम्पर्क के कारण मनोवृत्तियों का परिवर्तन होता है।

- 3) **स्कूल का प्रभाव (Effect of School Experience):-** बालक जिस विद्यालय में पढ़ता है वहां का वातावरण, स्कूल के साथी, अध्यापक यह सभी उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इन सभी लोगों का व्यवहार, व्यक्तित्व और मनोवृत्तियां एक बच्चे की मनोवृत्ति को बदल सकती है और नई मनोवृत्ति का निर्माण भी। न्यूकाम्ब (1943) ने अपने अध्ययन में भी यही पाया।
- 4) **प्रतिष्ठा निर्देश (Prestige Suggestion):-** जब कोई व्यक्ति किसी बड़े नेता, समाज सुधारक महात्मा या विद्वान का भाषण सुनता है तो भाषण द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठा निर्देशों के कारण भी मनोवृत्तियां परिवर्तित हो जाती हैं। लेविस (1941) ने अपने अध्ययनों द्वारा यही निष्कर्ष निकाला।
- 5) **व्यक्तिगत स्पष्ट अनुभव (Personal Vivid Experience):-** प्रायः देखा गया है कि लोग आंखों देखी बात पर अधिक विश्वास करते हैं। किसी भी वस्तु, घटना या व्यक्ति आदि के सम्बन्ध में व्यक्तिगत और स्पष्ट अनुभव मनोवृत्तियों के परिवर्तन में अधिक सहायक होते हैं। स्मिथ (1943) तथा हारलन (1947) के अध्ययन द्वारा भी इसी बात की पुष्टि होती है।
- 6) **संदर्भ समूह में परिवर्तन (Changing in Reference Group):-** समाज मनोवैज्ञानिक द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के संदर्भ समूह में परिवर्तन होने पर व्यक्ति की मनोवृत्ति में भी परिवर्तन आ जाता है। न्यूकाम्ब (1950) ने बेनिंगटन महाविद्यालय की छात्राओं पर अध्ययन कर उनकी मनोवृत्ति का मापन किया गया और पाया कि उनकी मनोवृत्ति में अनुदारता अधिक थी। न्यूकाम्ब के अनुसार ऐसा होना स्वाभाविक था क्योंकि वे सभी धनी परिवारों से सम्बन्ध रखती थी और उनके माता-पिता भी अनुदार थे। कॉलेज का वातावरण भी ऐसा था कि इससे उदार मनोवृत्ति को अधिक प्रोत्साहन मिलता था। न्यूकाम्ब के अनुसार ऐसा इसलिए संभव हो सकता क्योंकि छात्राओं का संदर्भ समूह अब बदलकर कॉलेज हो गया था। जहां उदार मनोवृत्ति की प्रधानता थी।
- 7) **अपेक्षित भूमिका निर्वाह (Required Role Playing):-** कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति को ऐसा व्यवहार दूसरे लोगों के सामने करना पड़ता है जिसे वह करना नहीं चाहता क्योंकि ऐसा व्यवहार उसकी निजी मनोवृत्ति के विपरीत होता है। ऐसा देखा गया है कि इस तरह की भूमिका करते-करते व्यक्ति की निजी मनोवृत्ति परिवर्तित होकर किये गये व्यवहार के अनुकूल हो जाती है। अर्थात् वह आम मनोवृत्ति के समान हो जाती है। क्लबर्टसन (1957) ने अपने प्रयोगशाला प्रयोग में पाया है कि भूमिका निर्वाह के कारण निग्रो के प्रति प्रयोज्यो की सामान्य मनोवृत्ति तथा निग्रो गोरे आवासीय संगठन के प्रति प्रयोज्यों की विशिष्ट मनोवृत्ति में क्रमशः 76.1% तथा 76.7% धनात्मक परिवर्तन हुआ। इतना ही नहीं भूमिका निर्वाह का प्रभाव भूमिका करने वाले के अलावा भूमिका देखने वाले की मनोवृत्ति पर भी पड़ते पाया गया। इसके अलावा अन्य अध्ययनों द्वारा भी स्पष्ट है कि भूमिका निर्वाह की प्रक्रिया का मनोवृत्ति परिवर्तन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

8) **समूह संबंध में परिवर्तन (Change in Group Affiliation):-** समूह सम्बन्ध में परिवर्तन का प्रभाव मनोवृत्ति परिवर्तन पर सीधा पड़ता है। यदि व्यक्ति पुराने या वर्तमान समूह सम्बन्ध को छोड़कर एक नये समूह से सम्बन्ध बना लेता है तो स्वभावतः वह अपनी मनोवृत्ति में नये समूह के नियमों के अनुसार परिवर्तन करता है।

जब भी समूह संबंधन में परिवर्तन होता है, व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन की प्रक्रिया दो बातों पर आधारित होती है - समूह की विशेषता (characteristics of membership of the person in the group)। समूह की विशेषता का तात्पर्य समूह के मूल्यों विश्वास तथा मानदण्ड से होता है। यदि किसी व्यक्ति के लिए नया समूह जिससे वह सम्बन्ध जोड़ना चाहता है का मानदण्ड अधिक आकर्षक है, समूह का विश्वास स्वीकार करने योग्य है तथा समूह का मूल्य या मान अधिक महत्वपूर्ण है, ऐसी स्थिति में वह अपनी मनोवृत्ति में इस नये समूह के मानदण्डों, विश्वासों तथा मूल्यों के अनुसार शीघ्र परिवर्तन कर लेता है। समूह में व्यक्ति की सदस्यता से तात्पर्य नये समूह में व्यक्ति की सदस्यता की स्थिति और उसके महत्व से होता है। यदि नयी सदस्यता की स्थिति अच्छी है और उसका महत्व तुलनात्मक रूप से अधिक है तो व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में सदस्यता की मांग के अनुसार तुरंत परिवर्तन कर लेता है। होमान्स (1950) ने अपने अध्ययन में पाया कि यदि व्यक्ति की स्थिति नये समूह में ऊंची होती है साथ ही उसकी लोकप्रियता अधिक होती है तो वह अपनी मनोवृत्ति में नये समूह की सदस्यता के मांग के अनुसार शीघ्र ही परिवर्तन लाकर उसी के अनुरूप व्यवहार करना शुरू कर देता है।

9) **व्यक्तित्व परिवर्तन प्रविधियां (Personality Change Techniques):-** कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाकर उनकी मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने की कोशिश की है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि व्यक्तित्व संरचना में परिवर्तन लाने से व्यक्ति की मनोवृत्ति में होने वाला परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक स्थाई होता है। काज और उनके सहयोगियों (Katz, et. al. 1956) के अध्ययन के अनुसार निग्रो के प्रति मनोवृत्ति परिवर्तन के लिये तथ्यपूर्ण सूचना अपील तथा आत्मसूझ विधि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इससे पता चला कि निग्रो बच्चों के प्रति गोरे प्रयोज्यों की प्रतिकूल मनोवृत्ति में तथ्यपूर्ण सूचना अपील विधि द्वारा कोई परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु आत्मसूत्र विधि द्वारा विशेषकर जैसे गोरे व्यक्तियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन हुआ जिनमें आत्मरक्षात्मकता का शीलगुण कम था। एक्सलाईन (Axline, 1948) द्वारा किये गये अध्ययन से ज्ञात होता है कि सात वर्षीय कुछ ऐसे गोरे समस्यात्मक बच्चों को लिया गया जो प्रजातीय मनोवृत्तियों से काफी पीड़ित थे। अर्थात् ऐसे बच्चे निग्रो बच्चों के प्रति या तो काफी आक्रामक थे या काफी असामाजिक व्यवहार करते थे। गोरे बच्चों के व्यक्तित्व में खेल चिकित्सक द्वारा बदलाव लाया गया जिससे पता चला कि निग्रो बच्चों के प्रति उदारता व प्रेम बढ़ गया। इन अध्ययनों से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व परिवर्तन द्वारा भी व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है।

10) **बाधित सम्पर्क (Enforced Contact):-** मनोवृत्ति परिवर्तन में बाधित सम्पर्क का महत्वपूर्ण स्थान है। बाधित सम्पर्क से तात्पर्य ऐसे सम्पर्क से होता है जिसमें व्यक्तियों को कुछ ऐसे व्यक्तियों के साथ लाचारी में अन्तःक्रिया करना पड़ता है जिनके साथ वह अन्तःक्रिया करना बिल्कुल पसन्द नहीं करता। उदाहरणार्थ एक दलित व एम सवर्ण को एक ही कमरे में रहने दिया जाए तो वह बाधित सम्पर्क का ज्वलन्त उदाहरण होगा। कई मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों में देखा गया कि बाधित सम्पर्क में व्यक्तियों को एक दूसरे को समझने का मौका मिलता है जिसके परिणामस्वरूप एक दूसरे के लिये स्वयं ही उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन आ जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिकी सैनिक के शोध द्वारा किये अध्ययन से पता चला कि गोरे सैनिकों तथा काले सैनिकों को एक साथ एक हीदल रहकर शत्रु का सामना करना था। शोध सर्वे से ज्ञात हुआ अधिकतर गोरे सैनिकों के पदाधिकारियों ने पहले इस ढंग से दल बनाने के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति व्यक्त की लेकिन कुछ समय पश्चात् दूसरा सर्वे करने से देखा गया कि 75 सैनिक एवं अधिकारियों की मनोवृत्ति नाकारात्मक से बदलकर सकारात्मक हो गई थी। कुछ प्रयोगों में आवासीय योजना में बाधित सम्पर्क का मनोवृत्ति परिवर्तन पर प्रभाव देखा गया। इसमें 2 तरह की आवासीय योजनाएं शामिल की गई - पृथक आवासीय योजना तथा संगठित आवासीय योजना। पृथक आवासीय योजना में गोरी गृहपत्नियां व श्याम गृह पत्नियां अलग-अलग मकानों में रहती थी जबकि संगठित आवासीय योजना में वे दोनों प्रकार की गृहपत्नियां एक ही मकान में एक साथ रहती थीं। कुछ दिनों बाद दोनों की मनोवृत्तियां मापी गई तो परिणाम में पाया कि संगठित आवासीय योजना में रहने वाली गोरी गृह पत्नियों की मनोवृत्ति पृथक आवासीय योजना में रहने वाली गोरी पत्नियों की मनोवृत्ति की तुलना में काफी परिवर्तित थी।

उपर्युक्त अध्ययनों से स्पष्ट हो जाता है कि बाधित सम्पर्क स्थापित किये जाने पर विभिन्न समूहों को एक दूसरे को समझने का मौका अधिक मिलता है। इससे उसके मन में उत्पन्न गलतफहमियां दूर हो जाती हैं और व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति परिवर्तित कर लेता है।

11) **अतिरिक्त सूचनाएं (Additional Information):-** अतिरिक्त सूचनाओं द्वारा भी व्यक्ति में मनोवृत्ति परिवर्तन होता है। व्यक्ति को शिक्षा व प्रचार के लिये साधनों जैसे - रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र के माध्यम से नाना प्रकार की सूचनाएं दी जाती हैं यही नहीं बल्कि व्यक्ति स्वयं भी अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रिया करके नाना तरह की सूचनाएं प्राप्त करता है। इन सूचनाओं के द्वारा ही व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाता है।

समाज मनोवैज्ञानिकों ने ऐसी परिस्थिति के 4 प्रकारों का वर्णन किया है -

1- **सामूहिक परिस्थिति तथा एकांत परिस्थिति (Group Situation and Solitary Situation):-** विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि यदि कोई सूचना व्यक्ति को एक ऐसी परिस्थिति में दी जाती है जहां



- बहुत से लोग एकत्रित हैं तो उसमें व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन एकांत परिस्थिति में दी गई सूचना की अपेक्षा अधिक होता है।
- 2- **प्रकट एवं गुप्त वादा (Public and Private Commitment):-** जब व्यक्ति अपने मतो को खुलकर लोगों के सामने रखता है तो उसे हम प्रकट वादा कहते हैं परन्तु जब व्यक्ति अपने विचारों को गुप्त रखता है यानि कोई उनके बारे में जान नहीं पाते हैं तो इसे गुप्त वादा कहा जाता है। अनेको अध्ययनों से स्पष्ट है कि प्रकट वादा की परिस्थिति में जब मनोवृत्ति परिवर्तन के उद्देश्य से कोई सूचना दी जाती है तो वह सूचना अधिक प्रभावकारी नहीं होती और यदि वही सूचना गुप्त वादा की परिस्थिति में दी जाती है तो उससे मनोवृत्ति परिवर्तन प्रभावकारी होता है। वादा करने की परिस्थिति भी एक महत्वपूर्ण कारक है जिससे मनोवृत्ति परिवर्तन प्रभावित होता है।
- 3- **समूह निर्णय (Group Decision):-** समाज मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि जब कोई सूचना समूह निर्णय विधि द्वारा दी जाती है तो उससे मनोवृत्ति में अधिक परिवर्तन आता है। समूह निर्णय विधि वह विधि है जहां कई व्यक्ति एक साथ मिलकर किसी विषय पर चर्चा करते हैं। इसी चर्चा के माध्यम से उन्हें मनोवृत्ति में परिवर्तन करने के लिये विशेष सूचना भी दी जाती है। एक अध्ययन के अनुसार पशु के खास अंगो जैसे - हृदय, गुर्दा आदि जिसे मनुष्य भोजन के रूप में कम खाते हैं के प्रति गृहणियों में चली आ रही नकारात्मक मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना था। प्रयोगकर्ता द्वारा लेक्चर के माध्यम से उन अंगो की उपयोगिता बढ़ाने सम्बन्धी विशेष सूचना उन्हें दी गई इसके तहत एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें समूह की सभी गृहणियों ने खुलकर अपना मत रखा। परिणाम में देखा गया लेक्चर विधि द्वारा दी गई सूचनाओं से 30% और समूह निर्णय विधि द्वारा दी गई सूचनाओं से 32% गृहणियों ने अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाया।
- 4- **संस्कृति (Culture):-** सांस्कृतिक लक्षणों (culture traits) का मनोवृत्तियों के निर्माण विकास और परिवर्तन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। प्रत्येक समाज की संस्कृति अलग-अलग होती है जब एक संस्कृति के लोग दूसरी संस्कृति के लोगों के सम्पर्क में आते हैं तो संस्कृति के अनुसार उनकी मनोवृत्तियों में परिवर्तन होता है।

### 6.5 मनोवृत्ति परिवर्तन के सिद्धान्त

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनोवृत्ति परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने के लिये जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है उन्हे चार श्रेणियों में बांटा गया है। जिनका वर्णन निम्न प्रकार है:-

#### 6.5.1 संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त (Cognitive consistency theories):-

इस श्रेणी में आने वाले मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:-

- (i) हाईडर का संतुलन सिद्धान्त

- (ii) न्यूकाम्ब का ए-बी-एक्स सिद्धान्त
- (iii) फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक विसन्नादिता का सिद्धान्त
- (iv) राजेनवर्ग का भावात्मक-संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त
- (v) सामंजस्य सिद्धान्त

**(i) हीडर का संतुलन सिद्धान्त (Heider's Balance Theory) :-**

हीडर (1946) ने संज्ञानात्मक व्यवस्था की अवस्था का वर्णन अपने सिद्धान्त में किया है जो बताता है किन दशाओं में सामान्य संतुलन असंतुलन में बदलता है और उस असंतुलन को बदल कर व्यक्ति किस प्रकार पुनः संतुलित अवस्था में आता है। ये तीन अवस्थाएं हैं:-

- 1- संतुलन की अवस्था या सामान्य अवस्था
- 2- असंतुलन की अवस्था जो ब्राह्य कारकों के हस्तक्षेप से पैदा होती है।
- 3- संतुलन की अवस्था को पुनः प्राप्त करने हेतु परिवर्तन के लिए दबाव की अवस्था।

हीडर के अनुसार व्यक्ति (P) अन्य व्यक्ति (O) के प्रति किस प्रकार का मनोभाव रखता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों की किसी उभयनिष्ठ वस्तु (X) के प्रति कैसी पसंद है। इसलिए हीडर के प्रतिपादन को 'P-O-X प्रतिपादन' भी कहा जाता है। यदि दोनों व्यक्तियों P तथा O का मनोभाव उभयनिष्ठ वस्तु X के प्रति सकारात्मक है तो संज्ञानात्मक संतुलन होगा। इसी प्रकार यदि दोनों का मनोभाव कुछ धनात्मक तथा कुछ ऋणात्मक हो तो असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाती है। हीडर का मत है कि असंतुलन दबाव उत्पन्न करता है। मनोवृत्ति परिवर्तन इस दबाव की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि दबाव अत्याधिक है तभी मनोवृत्ति में परिवर्तन संभव होता है अन्यथा नहीं। जिसके फलस्वरूप वे उसी प्रकार से बनी रह जाती है।

**(ii) संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त (Theory of cognitive Dissonance):-**

इस सिद्धान्त में मनोवृत्ति तथा व्यवहार के बीच संगति का बहुत अधिक महत्व है ऐसा माना गया है। संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्तों में फेस्टिंगर, हाइडर और आसगुड के सिद्धान्त प्रचलित हैं। यहां केवल फेस्टिंगर और हाइडर के सिद्धान्त का वर्णन किया गया है:-

संज्ञानपरक विसन्नादिता का सिद्धान्त (Theory of cognitive Dissonance) :-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फेस्टिंगर (1957) ने किया। फेस्टिंगर के अनुसार व्यक्तियों की मनोवृत्ति में एक दूसरे से संगति होती है। संज्ञानपरक तत्व का अर्थ किसी भी ज्ञान मत या विश्वास से हो सकता है जो वातावरण, उस व्यक्ति, किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में हो सकता है। विसन्नादिता का अर्थ है दो या दो से अधिक संज्ञानपरक तत्वों में असंगति (Inconsistency)। विसन्नादिता की मात्रा का निम्न सूत्र है –

$$\text{महत्व } \times \text{ विसन्नादी तत्वों की संख्या}$$

विसन्नादिता =

महत्व x सन्नादी तत्वों की संख्या

यह सूत्र स्पष्ट करता है कि विसन्नादिता उतनी ही कम होगी जितना कि Dissonant और Consonant तत्वों में अंतर कम होगा। फेस्टिंगर के अनुसार विसन्नादिता की उपस्थिति व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से कष्टप्रद है।

मनोवृत्ति से सम्बन्धित संज्ञानात्मक तत्वों में यदि विसन्नादिता उत्पन्न कर दी जाये तो मनोवृत्ति बदल जाती है।

फेस्टिंगर तथा कार्लस्मिथ (1959) ने विसन्नादिता से सम्बन्धित तीन परिकल्पनाओं का परीक्षण कर इसे सत्यापित किया है -

1. व्यक्ति विसन्नादिता का अनुभव उस समय करता है जब उसे उसकी किसी व्यक्तिगत मनोवृत्ति के विरुद्ध कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है।
2. बाध्य करने की शक्ति अधिक होने पर विसन्नादिता अधिक होगी और यदि बाध्य करने वाली शक्ति कम हो तो विसन्नादिता की मात्रा अधिक होगी।
3. विसन्नादिता कम करने के लिए व्यक्ति बाह्य क्रियाओं के अनुरूप अपनी मनोवृत्ति बना लेता है। इस दिशा में जेनिस (1968) और कोहेन (1964) के अध्ययन उल्लेखनीय हैं।

**मूल्यांकन (Evaluation) -**

**पक्ष:-**

1. फेस्टिंगर का विसन्नादिता सिद्धान्त अत्यंत व्यापक तथा उपयोगी है। इसके आधार पर वृहद परिस्थितियों में मनोवृत्ति में आए परिवर्तन की व्याख्या सहज व तर्कपूर्ण ढंग से हो सकती है।
2. इस सिद्धान्त ने पुनर्बलन सिद्धान्त की इस मान्यता को गलत सिद्ध किया कि व्यक्ति पुरस्कार या पुनर्बलन के कारण जल्दी सीखता है जबकि फेस्टिंगर ने पाया कि व्यक्ति उन कार्यों को जल्दी सीखता है जिनके लिए वह कठिन परिश्रम करता है या दुख भोगता है।

**विपक्ष:-**

1. संज्ञानात्मक विसन्नादिता सिद्धान्त की एक कमी यह है कि यह मनोवृत्ति परिवर्तन में निहित प्रेरणा की व्याख्या नहीं करता। विसन्नादिता सिद्धान्त की एक कठिनाई यह भी है कि आत्मप्रतिवेदित मापनियों जिनके द्वारा मनोवृत्ति परिवर्तन का मापन किया जाता है। वे वास्तव में मनोवृत्ति में शुद्ध परिवर्तन को नहीं वरन् मिथ्या और विकृत परिवर्तन को दर्शाती हैं।

**(iii) रोजेनबर्ग का भावात्मक-संज्ञात्मक संगति सिद्धान्त (Rosenberg's Affective Consistency Theory):-**

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक रोजेनबर्ग हैं। इस सिद्धान्त में उन्होंने मनोवृत्ति के दो तत्वों के बीच के सम्बन्धों पर अधिक बल डाला है।

रोजेनबर्ग ने अपने सिद्धान्तों में भावात्मक तत्व को साधारण ढंग से परिभाषित किया है परन्तु संज्ञानात्मक तत्व के साधारण अर्थ को थोड़ा विस्तृत किया है। इनके अनुसार संज्ञानात्मक तत्व का अर्थ मनोवृत्ति वस्तु के प्रति सिर्फ संज्ञान ही नहीं बल्कि उस वस्तु तथा व्यक्ति के अन्य महत्वपूर्ण मूल्यों के बीच सम्बन्धों के बारे में एक विश्वास से भी होता है। रोजेनबर्ग का विचार था कि मनोवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति में जो भाव होता है वह उस वस्तु के प्रति व्यक्ति में पाये जाने वाले विश्वास से सहसम्बन्धित होता है।

रोजेनबर्ग ने संज्ञानात्मक तत्वों को मापने के लिये एक विशेष प्रविधि का भी वर्णन किया है जिसमें एक संज्ञानात्मक सूचांक ज्ञात किया जाता है। जो यह बताता कि व्यक्ति की मनोवृत्ति उसके मूल्यांक से कहां तक संगत है। अगर किसी व्यक्ति में किसी मनोवृत्ति वस्तु के प्रति तीव्र धनात्मक भाव है तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति संज्ञानात्मक भी अधिक होगा। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रोजेनबर्ग ने अपने सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया है कि व्यक्ति की मनोवृत्ति उसके महत्वपूर्ण मूल्यों में संगत ढंग से स्थिर होता है।

रोजेनबर्ग के सिद्धान्त की निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण प्राक्कल्पनाएं हैं:-

1. जब किसी मनोवृत्ति के भावात्मक व संज्ञानात्मक तत्व आपस में संगत होते हैं तो मनोवृत्ति में स्थिरता तथा दृढ़ता बनी होती है।
2. लेकिन जब मनोवृत्ति के इन दोनों तत्वों अर्थात् भावात्मक तत्व तथा संज्ञानात्मक तत्व में असंगति उत्पन्न हो जाती है तो मनोवृत्ति में भी अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है तथा इसमें परिवर्तन की सम्भावना तीव्र हो जाती है।

रोजेनबर्ग की प्राक्कल्पनाओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि यदि वर्तमान स्थिर मनोवृत्ति के भावात्मक तत्व में परिवर्तन कर दिया जाए, तो एक ऐसी शक्ति उत्पन्न होगी जिससे अपने आप ही दूसरे तत्व में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस होने लगेगी।

रोजेनबर्ग के इस सिद्धान्त के कुल गुण निम्नलिखित हैं:-

1. रोजेनबर्ग के इस सिद्धान्त द्वारा मनोवृत्ति के संगठन तथा विघटन दोनों की व्याख्या हो जाती है। जब तक मनोवृत्ति के संज्ञानात्मक तत्व तथा भावात्मक तत्व में संगति होती है, मनोवृत्ति संगठित है परन्तु जैसे ही भावात्मक व संज्ञानात्मक तत्व में असंगति होती है मनोवृत्ति विघटित हो जाती है। इस सिद्धान्त के द्वारा

मनोवृत्ति में हुए परिवर्तन की मात्रा की भी व्याख्या हो जाती है। यह सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करता है कि जिस सीमा तक भावात्मक तत्व में असंगति होगी मनोवृत्ति में उस सीमा तक परिवर्तन होगा।

इन गुणों के साथ-साथ इस सिद्धान्त में कुछ अवगुण भी हैं:-

1. इस सिद्धान्त की सबसे प्रमुख बात यह है कि भावात्मक तत्व में परिवर्तन होने से संज्ञानात्मक तत्व में परिवर्तन हो जाता है। परन्तु इसे कुछ मनोवैज्ञानिकों ने खण्डित किया है और कहा है कि सदा ऐसा नहीं होता है। संज्ञानात्मक तत्व में पहले परिवर्तन होता है और बाद में भावात्मक तत्व में।
2. इस सिद्धान्त में मनोवृत्ति परिवर्तन के अन्य नियमों जैसे - सीखना एवं पुनर्बलन नियमों के बावजूद भी रोजेनबर्ग का सिद्धान्त संज्ञानात्मक संगति के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी रोजेनबर्ग का सिद्धान्त संज्ञानात्मक संगति के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

#### (iv) सामंजस्य सिद्धान्त (Congruity Theory):-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन औसगुड तथा टानेनवॉम ने किया है। इस सिद्धान्त के द्वारा मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या में मौलिक पूर्वकल्पना अन्य संगति सिद्धान्त के अनुकूल ही है - असंगति से मनोवृत्ति परिवर्तन के लिए व्यक्ति में दबाव उत्पन्न होता है। इसका अर्थ है कि जब मनोवृत्ति के संज्ञानात्मक तत्वों से असंगति उत्पन्न होती है तो इससे व्यक्ति में मनोवृत्ति परिवर्तन करके असंगति से उत्पन्न तनाव को दूर करने की प्रबलता बढ़ जाती है। सामंजस्य सिद्धान्त के अनुसार दो संज्ञानात्मक तत्व जो आपस में सम्बन्धित होते हैं, दोनों में परिवर्तन होता है ताकि सामंजस्य में वृद्धि हो सके तथा मनोवृत्ति परिवर्तन का स्वरूप स्थिर हो सके। इस तरह से इस सिद्धान्त में संज्ञानात्मक परिवर्तन की मात्रा तथा दिशा जिनसे सामंजस्य या संगतता में वृद्धि होती है के बारे में पूर्वानुमान होता है।

उदाहरण के लिये, कांग्रेस के किसी सदस्य के लिये आप दिन-रात मेहनत करके उसे चुनाव जिताते हैं और वह संसद का सदस्य बन जाता है तो इसके प्रति आपकी मनोवृत्ति अनुकूल है। मान लिया जाए कि संसद में एक खास प्रस्ताव आता है कि गौहत्या बन्द कर दी जाए। कांग्रेस इसका समर्थन करती है फिर भी प्रस्ताव पास नहीं हो पाता है क्योंकि अन्य दलों द्वारा इसका विरोध किया गया है। ऐसी परिस्थिति में क्या आपकी मनोवृत्ति सिर्फ कांग्रेस के प्रति परिवर्तित होगी या केवल राजनैतिक दलों के प्रति ही परिवर्तित होगी ? सच है कि आपकी मनोवृत्ति इन दोनों के प्रति परिवर्तित होगी ताकि एक सामंजस्य की स्थिति कायम हो सके।

#### 6.5.2 सामाजिक सीखना सिद्धान्त (Social Learning Theories):-

इस श्रेणी के मुख्य सिद्धान्त निम्न हैं:-

- (i) क्लासिकल अनुबंधन मॉडल पर आधारित सिद्धान्त।

(ii) साधनात्मक अनुबंधन मॉडल पर आधारित सिद्धान्त।

### सामाजिक सीखना सिद्धान्त (Social Learning Theory):-

मनोवृत्ति परिवर्तन के इस सिद्धान्त का विकास क्लासिक अनुबंधन तथा साधनात्मक अनुबंधन के पुनर्बलन नियमों पर आधारित है। क्लासिक अनुबंधन नियम का जन्म पैव्लोव के प्रयोगात्मक कार्यों के परिणाम स्वरूप हुआ था। इस नियम का आधार पुनर्बलन था। इस नियम के अनुसार यदि एक स्वाभाविक उद्दीपक जैसे - भोजन के साथ दूसरा तटस्थ उद्दीपक जैसे - घंटी की आवाज बार-बार उपस्थित किया जाता है तो कुछ प्रयास के बाद इस तटस्थ उद्दीपक के द्वारा ही स्वाभाविक अनुक्रिया जैसे - लार निकलना जो सिर्फ स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति होती थी, उत्पन्न होने लगती है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि साहचर्य के आधार पर तटस्थ उद्दीपन में स्वाभाविक उद्दीपक का गुण उत्पन्न हो जाता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह देखना था कि क्लासिक अनुबंधन के नियमों द्वारा किस तरह से किसी देश का नाम (जैसे - नीदरलैण्ड, मॉरीशस आदि) के प्रति और व्यक्तियों के नाम (जैसे - पीटर, जॉन्सन आदि) के प्रति कोई भी व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन करता है। प्रायोगकर्ताओं ने 6 ऐसे देश के नामों को प्रयोज्यों को दिखलाया जिनके प्रति प्रयोज्यों की मनोवृत्ति प्रारंभ में न स्वीकारात्मक थी और न ही ऋणात्मक थी। कुछ नामों के साथ धनात्मक भाव उत्पन्न करने वाले शब्द जैसे - खुश, सुन्दर, अच्छा आदि भी दिखलाये गये तथा कुछ नामों के साथ ऋणात्मक भाव जैसे - तीखा, कुरूप, उदास आदि दिखलाये गये जिस तरह से पैव्लोव के प्रयोग में घंटी की आवाज (अनुबंधित उद्दीपक तथा भोजन (स्वाभाविक उद्दीपक) को एक साथ कई बार उपस्थित करने पर मात्र घंटी की आवाज से ही कुत्ता में लार स्राव की अनुक्रिया होती है ठीक उसी तरह से राष्ट्र एवं व्यक्तियों के नाम को जब कई बार धनात्मक एवं ऋणात्मक दूसरों के साथ-साथ दिखलाया गया तो राष्ट्र एवं नाम के प्रति प्रयोज्यों में उसी ढंग की मनोवृत्ति उत्पन्न होती थी जैसे कि धनात्मक एवं ऋणात्मक दूसरों को सुनने पर होती थी।

मनोवृत्ति परिवर्तन में क्लासिक अनुबंधन के नियमों के अलावा साधनात्मक अनुबंधन के नियमों को भी महत्वपूर्ण बताया गया है। साधनात्मक अनुबंधन का सार तत्व यह है कि मानव व्यवहार उसके परिणामों पर आधारित होता है। एक प्रायोगकर्ता ने अपने प्रयोग में कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं के प्रति वाद-विवाद में कुछ प्रयोज्यों को पक्ष तथा कुछ को विपक्ष में बोलने को कहा। वाद-विवाद समाप्त होने पर कुछ प्रयोज्यों को प्रायोगकर्ता ने विजयी घोषित किया तथा कुछ प्रयोज्यों को हारने वाला घोषित किया। इसके बाद उसकी मनोवृत्ति मापी गई और देखा गया कि जिन्हें विजयी घोषित किया गया था, उन्होंने अपनी मनोवृत्ति में वाद-विवाद में अपनाये गये विचार के अनुसार परिवर्तन कर दिये। परन्तु जिन्हे हारने वाला कहा गया उनकी मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं आया। सिंगर (Singer, 1961) ने भी अपने प्रयोग में बहुत कुछ ऐसा ही परिणाम पाया है। इसी तरह थार्नडाइक एवं स्कीनर ने अनेको प्रयोग से यह दिखा दिया है कि प्राणी का व्यवहार उसके परिणामों पर

आधारित होता है। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन साधनात्मक अनुबन्धन के नियमों के अनुकूल भी करता है।

### 6.5.3 कार्यात्मक सिद्धान्त (Functional Theories):-

इस श्रेणी में निम्न सिद्धान्त आते हैं:-

- (i) काट्ज तथा स्टोर्टलैण्ड का सिद्धान्त
- (ii) स्मिथ बुरनर एवं व्हाईट का सिद्धान्त

### कार्यात्मक सिद्धान्त (Functional Theories):-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन काट्ज और स्काटलैण्ड (1960) ने किया। इनके अनुसार मनोवृत्ति परिवर्तन तथा परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध को समझने के लिए मनोवृत्तियों के प्रेरणात्मक आधार का सहारा लिया है। काट्ज ने मनोवृत्तियों के निम्न चार कार्यों का वर्णन किया है:-

#### 1- मूल्य प्रदर्शक कार्य (The value expressive Function):-

एक व्यक्ति को इससे संतुष्टि मिल सकती है जब वह अपनी मनोवृत्तियों की व्यक्तिगत मूल्यों और आत्म प्रत्यय से जोड़ता है।

#### 2- ज्ञान प्रकार्य (The knowledge function):-

प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि उसमें चीजों को समझने हेतु ज्ञान होगा।

#### 3- नैमित्तिक, समायोजनात्मक, उपयोगितावादी कार्य (The Instrumental Adjustive Utilitarian Functions) -

इसका अर्थ है कि व्यक्ति को जिन वस्तुओं से पुरस्कार प्राप्त होता है उनके प्रति धनात्मक तथा जिनसे दण्ड मिलता है उनके प्रति ऋणात्मक मनोवृत्ति विकसित करता है।

#### 4- अहं सुरक्षात्मक कार्य (Ego-defensive Function) :-

व्यक्ति को उसके स्वयं के प्रति दुखद सच्चाई की अनुभूति को रोकना तथा वातावरण की कठोर सच्चाई से रक्षा करना मनोवृत्तियों का मुख्य कार्य है।

### 6.5.4 विविध सिद्धान्त (Miscellaneous theories):-

इस श्रेणी के मुख्य सिद्धान्त निम्न हैं:-

- (i) केलमैन का त्रिप्रक्रिया सिद्धान्त।
- (ii) आत्मसात्करण - विरोध सिद्धान्त।
- (iii) अनुकूलन स्तर सिद्धान्त।

**(i) त्रि-प्रक्रिया सिद्धान्त (Three Process Theory) :-**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कैलमैन (1961) ने किया है। कैलमैन ने तीन प्रक्रियाओं की सहायता से मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या की है इसलिए यह त्रि-प्रक्रिया सिद्धान्त कहलाता है। ये प्रक्रियाएं निम्नलिखित हैं:-

**1- अनुवर्तन (Compliance):-** यह वह प्रक्रिया है जब व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या समूह के विचारों या प्रभावों को इस कारण स्वीकार करता है कि वह भविष्य में इनसे लाभान्वित हो सकता है। दूसरे दूसरों में जब व्यक्ति पुरूस्कार पाने हेतु या दण्ड से बचने हेतु किसी दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के विचार को स्वीकार करता है उसे अनुवर्तन कहते हैं।

**2- तादात्मीकरण (Identification):-** यह वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार, विचारों या प्रभावों को अपना लेता है।

**3- आत्मीकरण (Internalization):-** इस प्रक्रिया में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचारों, प्रभावों या व्यवहारों को इसलिए स्वीकार करता है कि वह विचार, प्रभाव तथा व्यवहार उसके स्वयं के मूल्यों के समरूप होते हैं।

**मूल्यांकन (Evaluation):-**

किसलर (1969) ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा कि अनुवर्तन की प्रक्रिया का उपयोग बोधगम्य रूप से नहीं किया जा सकता और मनोवृत्ति परिवर्तन की प्रक्रिया इस प्रक्रिया के बिना भी सम्पादित हो जाती है।

**(ii) आत्मसातकरण-विषमता सिद्धान्त (Assimilation Contrast Theory):-**

आत्मसात-विषमता सिद्धान्त का प्रतिपादन शेरीफ तथा होभलैण्ड ने किया। इन दोनों मनोवैज्ञानिकों ने थर्सटन द्वारा मनोवृत्ति मापने के लिये विकसित मापनी से सम्बन्धित उस पूर्व कल्पना को चुनौती दी जिसमें कहा गया था कि निर्णायकों की अपनी मनोवृत्ति का प्रभाव मनोवृत्ति कथनों की तुल्यभासी अंतराल विधि के विभिन्न श्रेणियों में छांटने पर नहीं पड़ता है।

आत्मसात-विषमता सिद्धान्त के अनुसार मनोवृत्ति परिवर्तन के उद्देश्य से जब भी व्यक्ति को कोई सूचना दी जाती है तो इसकी प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर होती है कि व्यक्ति उस सूचना को किस तरह से स्वीकार करता है।

इस प्रक्रिया में 2 स्तरीय तथ्य होते हैं:-

1. सूचना प्राप्तकर्ता सम्बद्ध विषय के बारे में दी गयी सूचना का मूल्यांकन उसके बारे में अपने पास पहले से मौजूद रहे तथ्यों के आलोक में करता है।
2. इस मूल्यांकन के आधार पर सूचना प्राप्तकर्ता उस सूचना द्वारा प्रस्तावित तथ्य के आलोक में अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन करके उसे आत्मसात कर लेगा या उस सूचना को अस्वीकृत कर देगा।



पहले चरण में सम्मिलित निर्णयात्मक प्रक्रिया को मद्देनजर रखते हुए शरीफ ने बताया है कि मनोवृत्ति परिवर्तन में दी गई सूचना की प्रभावशीलता निम्नांकित में से किसी भी प्रसार में हो सकती है।

1- स्वीकरण का विस्तार:- इस श्रेणी में उन सूचनाओं को रखा जाता है जो सूचना प्राप्तकर्ता के मन से पूर्व से मौजूद तथ्यों के अनुकूल होते हैं और उसके आलोक में व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन करता है।

2- अवचनबद्धता का विस्तार (Latitude of noncommitments):- इस श्रेणी में वैसी सूचनाओं को रखा जाता है जो सूचना प्राप्तकर्ता के पास मौजूद तथ्यों से भिन्न होता है जिसके कारण व्यक्ति उसको ठीक ढंग से आत्मसात तो नहीं कर पाता है परंतु साथ ही साथ उसे अस्वीकृत भी नहीं कर पाता है।

3- अस्वीकारण का विस्तार (Latitude of rejection):- इस श्रेणी में उन सूचनाओं को रखा जाता है जो सूचना प्राप्तकर्ता के पास मौजूद तथ्यों से बिल्कुल मेल नहीं खाते हैं। फलस्वरूप वह उसे अस्वीकृत कर देता है। परिणाम स्वरूप ऐसी सूचनाओं से सूचना प्राप्तकर्ता की मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मनोवृत्ति परिवर्तन के बारे में पूर्व कथन करने के लिए यह तय कर लिया जाता है कि सूचना प्राप्तकर्ता की वर्तमान स्थिति या वर्तमान मनोवृत्ति जिसे आंतरिक स्थिरण बिन्दु कहते हैं तथा दी गई सूचना से उत्पन्न मनोवृत्ति में कितना अन्तर है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मनोवृत्ति परिवर्तन के लिए निम्न अवस्थाओं का होना आवश्यक है:-

1. शोधकर्ता को दिये गये विषय के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति के वर्तमान स्थिति का पता लगाना होगा।
2. उसके बाद यह तय करना होगा स्वीकरण के विस्तार कितनी है।
3. शोधकर्ता को यह देखना होगा कि व्यक्ति को दी जाने वाली प्रभावोत्पादक सूचना स्वीकरण के विस्तार के क्षेत्र में है या नहीं। उदाहरण - यदि सरकार की ओर से किसी स्थान पर मंदिर बनेगा परन्तु जनता दल इसका विरोध करती है। और दूसरी पार्टी इस घोषणा का स्वागत करती है फिर यह तय होता है कि मंदिर में मूर्ति केवल शिव जी की ही लगेगी। इससे जनता दल के लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं होगा क्योंकि यह घोषणा उनके अस्वीकरण के विस्तार में पड़ रहा है। अब दूसरी पार्टी के जिन सदस्यों को शिव जी में अधिक विश्वास है उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन कोई खास नहीं होगा।

इस सिद्धान्त के आलोचकों का मत है कि विस्तार के निर्धारण का कार्य में आत्मनिष्ठता अधिक होती है जिससे सिद्धान्त का पूर्वकथन संदेह के घेरे में आ जाता है।

## 6.6 सारांश

संक्षेप में यही कह सकते हैं कि हम विभिन्न उद्दीपकों तथा सामाजिक परिस्थितियों के प्रति जो प्रतिक्रियाएं या व्यवहार करते हैं वे हमारी प्रतिक्रियाओं या व्यवहार का ढंग हमारी मनोवृत्तियों द्वारा ही निर्देशित होता है। इस आधार पर मनोवृत्तियों का व्यापक प्रभाव हमारे सभी व्यवहारों, सोचने-समझने के तरीकों पर निश्चित रूप से

पड़ता है इसलिए मनोवृत्तियों का अध्ययन अनिवार्य है। अतः हम कह सकते हैं कि मनोवृत्ति के स्वरूप, विकास तथा परिवर्तन की प्रक्रिया को समझे बिना सामाजिक मनोविज्ञान तथा सामाजिक व्यवहार का ज्ञान अधूरा है। हमारे देश में ही नहीं अन्य देशों में हुए अध्ययन व शोधकार्य बताते हैं कि मनोवृत्तियां न केवल हमारे व्यवहार को समझने के सूत्र देती हैं वरन् उनके पूर्वकथन में भी सहायक होती हैं इसलिए मनोवृत्तियों के स्वरूप, विकास की प्रक्रिया तथा मापन के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

### 6.7 शब्दावली

- **मनोवृत्ति परिवर्तन:** सापेक्षिक तौर पर मनोवृत्तियों में आये परिवर्तन को मनोवृत्ति परिवर्तन कहते हैं।
- **सम्प्रेषण:** अपने विचारों, भावनाओं तथा इच्छाओं को दूसरे व्यक्तियों के साथ बांटना या व्यक्त करना संप्रेषण कहलाता है।
- **प्रतिष्ठा निर्देश:** किसी सम्मानित या गणमान्य व्यक्ति के द्वारा दिये गये सुझावों और विचारों के अनुरूप व्यवहार में परिवर्तन प्रतिष्ठा निर्देश कहलाता है।
- **घटक:** किसी वस्तु के निर्माण में शामिल तत्वों को घटक कहा जाता है।

### 6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थान भरिए:-

1. संज्ञानपरक-विसन्नादिता सिद्धान्त का प्रतिपादन ..... ने किया है।
2. प्रकार्यात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन ..... ने किया है।
3. त्रि-प्रक्रिया सिद्धान्त ..... ने प्रतिपादित किया है।

उत्तर: 1- फेस्टिंगर                      2- काट्ज                      3- कैलमैन

### 6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Allport, G.W.(1935)	:	Hand book of Social Pshychology (Clark University Press, Worcestor
Allport, F.H. & Katz, D (1931)	:	Student's Attitudes (Craftsman Press, Syracuse
Drever, James (1962)	:	A Dictionary of Psychology, Pengain Books, Harmondsworth, Middle Sex,

---

	U.S.A
Droba, D.D. (1933)	: The Nature of Attitude, pp. 444-463, Journal of Social Psychology p.4.
Guttman, L.	: A Basis for scaling Qualitative Data, pp. 139, 150, Amer. Social Rev., 9.
Kretch,D. & Crutchfield,(1982) R.S.	: Individual IN Society
Kimball Young (1957)	: A Hand Book of Social Psychology
Thurstone, L.L.	: The Theory of Attitude Measurement, pp. 222-241, Pshycho. Bull. 36, 1929.
Secord & Beckman	: Social Pshychology, 1964
डा0 आर.एन.सिंह (2008)	: आधुनिक समाज मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, हॉस्पिटल रोड, आगरा
Mishra Girishwar (2007)	: Applied Social Psychology In India, Sage, Publication New Delhi.

---

### 6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. मनोवृत्ति परिवर्तन क्या है ? इसे कौन-कौन से कारक प्रभावित करते हैं ?
2. मनोवृत्ति में परिवर्तन कैसे होता है ? मनोवृत्ति परिवर्तन की प्रक्रिया के मुख्य सिद्धान्त कौन-कौन से हैं ?

## इकाई-7 पूर्वाग्रह का अर्थ एवं विशेषताएँ तथा प्रकार(Meaning, Characteristics and Types of Prejudice)

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 पूर्वाग्रह का अर्थ
- 7.4 पूर्वाग्रह की विशेषताएँ
- 7.5 पूर्वाग्रह के प्रकार
- 7.6 सारांश
- 7.7 शब्दावली
- 7.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

### 7.1 प्रस्तावना

सामाजिक जीवन में प्रायः यह अनुभव किया जाता है कि लोग एक दूसरे के बारे में उनकी समूह सदस्यता, जाति, धर्म, भाषा, नागरिकता या उसकी सामाजिक स्थिति को आधार मानते हुए एक सकारात्मक या नकारात्मक भाव विकसित कर लेते हैं और यह जानने का प्रयत्न नहीं करते हैं कि उस व्यक्ति में उस तरह के गुण या दोष हैं भी अथवा नहीं। जैसा कि आप जानते हैं कि दैनिक जीवन में अनुकूल भावना ही नहीं प्रतिकूल भावनाएँ भी स्वाभाविक रूप से पाई जाती हैं। समाज में रहते हुए हम कुछ लोगों से प्रेम या स्नेह करते हैं, और उसी आधार पर उनके प्रति हमारे हृदय में सहयोग अथवा सहानुभूति के भाव होते हैं। परन्तु, इसके विपरीत, उसी समाज के कुछ व्यक्तियों या समूहों से हम घृणा करते हैं, या अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं। हम प्रत्येक विषय में उनको अपने समूह से पृथक मानते हैं, हेय समझते हैं; तथा उसी के अनुसार अपने व्यवहार में अपने भावों को ढालते हैं। ऐसा करने का कोई तार्किक कारण नहीं होता, फिर भी दूसरे समूह या व्यक्तियों के प्रति जो संवेगात्मक मनोभाव हमारे अन्दर पनप जाता है, उसी के अनुरूप हम उनके प्रति विद्वेष, घृणा और कभी-कभी अत्याचारपूर्ण व्यवहार करने को तत्पर होते हैं। अतः समूह या व्यक्तियों के प्रति हमारे इन्हीं मनोभावों तथा व्यवहार प्रतिमानों को 'पूर्वाग्रह' कहते हैं। हम यहाँ इन्हीं व्यवहारों व मनोभावों के कारण को जानने का प्रयास करेंगे।

## 7.2 उद्देश्य

अन्तःसमूह या बाह्य समूह के प्रति हमारे अनुकूल या प्रतिकूल विचारों तथा धारणाओं को ही 'पूर्वाग्रह' कहा जाता है, इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप:

- पूर्वाग्रह क्या है, इसे समझ सकेंगे।
- पूर्वाग्रह की क्या विशेषताएँ होती हैं, इसे जान सकेंगे।
- पूर्वाग्रह कितने प्रकार के होते हैं, जान सकेंगे।
- पूर्वाग्रह हमारे व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं, समझ सकेंगे।

## 7.3 पूर्वाग्रह का अर्थ

'पूर्वाग्रह' अंग्रेजी शब्द 'Prejudice' का हिन्दी रूपान्तर है। अंग्रेजी शब्द 'Prejudice' लैटिन भाषा के 'Prejudicium' शब्द से बना है जिसमें 'Pre' का अर्थ है 'पूर्व' तथा 'Judicium' का अर्थ 'निर्णय' अथवा 'धारणा'। इस दृष्टिकोण से पूर्वाग्रह का शाब्दिक अर्थ हुआ 'पूर्वनिर्णय' (Prejudgement)। इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि पूर्वाग्रह का तात्पर्य व्यक्तियों या वस्तुओं के प्रति पूर्व निर्णय, भाव या प्रतिक्रिया से है; जो पूर्व निर्धारित होने के कारण वास्तविक अनुभव पर आधारित नहीं होती। पूर्वाग्रह एक ऐसी अभिवृत्ति है जो व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति या समूह के प्रति एक निश्चित ढंग से प्रतिक्रिया करने के लिए तत्पर करती है और इसमें संवेगात्मकता, दृढ़ता, आक्रामकता, पक्षपात एवं गलत सूचनाओं की छाप रहती है। उदाहरण के लिए हरिजनों को अछूत, मुसलमानों को कठोर, अंग्रेजों को धोखेबाज, जापानी को बुद्धिमान, नेपाली को साहसी कहना इत्यादि सभी अभिवृत्तियाँ पूर्वाग्रह ही हैं। सामान्यतया पूर्वाग्रह में समूह के सदस्यों का निषेधात्मक मूल्यांकन होता है, लेकिन यह विधेयात्मक भी हो सकता है। एक ही समय लोग दूसरे समूह के सदस्यों को नापसन्द कर सकते हैं तथा अपने समूह के सदस्यों का केवल समूह सदस्यता के आधार पर विधेयात्मक मूल्यांकन कर सकते हैं। दोनों ही दशाओं में व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताओं का कोई महत्व नहीं होता, बल्कि वह समूह महत्वपूर्ण होता है जिसका वह व्यक्ति सदस्य होता है।

पूर्वाग्रह को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। सेकार्ड तथा बैकमैन ने लिखा है, "पूर्वाग्रह एक मनोवृत्ति है जो व्यक्ति को किसी समूह या इसके सदस्यों के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से सोचने, प्रत्यक्षीकरण करने, अनुभव करने तथा क्रिया करने के लिए पहले से ही तत्पर बना देती है।" जबकि आगबर्न का मानना है, "पूर्वाग्रह जल्दबाजी में किया गया एक ऐसा निर्णय या मत है जो उपयुक्त परीक्षण के बिना ही अस्तित्व में आ सकता है।" क्रेच, क्रचफील्ड तथा बैलेकी ने भी पूर्वाग्रह को प्रतिकूल अभिवृत्ति के

रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार, “पूर्वाग्रह किसी वस्तु के प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति है जो बहुत कुछ रूढ़ियुक्ति तथा संवेग से प्रभावित होती है और विरोधी सूचना द्वारा आसानी से नहीं बदलती है।”

पूर्वाग्रह सामान्य रूप से एक ऐसी सामाजिक अवधारणा है, जो सामाजिक अन्तःक्रिया के दौरान पनपती है। पूर्वाग्रह किसी समूह के प्रति सकारात्मक अथवा नकारात्मक, अनुकूल अथवा प्रतिकूल, पक्ष अथवा विपक्ष में हो सकता है। पूर्वाग्रह प्रायः व्यक्ति की अपने समूह तथा उसके सदस्यों को सकारात्मक ढंग से मूल्यांकित करने के लिए तथा दूसरे समूह एवं उनके सदस्यों को नकारात्मक ढंग से मूल्यांकित करने के लिए उन्मुख करता है। हम वास्तविकता को समझे बिना किसी समूह या व्यक्ति के बारे में उसकी जाति या धर्म के आधार पर जो प्रतिकूल या निषेधात्मक धारणा बना लेते हैं, वही पूर्वाग्रह है। मायर्स ने पूर्वाग्रह को परिभाषित करते हुए लिखा है, “किसी समूह एवं उसके वैयक्तिक सदस्यों के प्रति निर्मित औचित्य-विहीन निषेधात्मक अभिवृत्ति ही पूर्वाग्रह है।” वास्तव में पूर्वाग्रह अन्य धर्म अथवा प्रजाति या जाति के सदस्यों के प्रति नकारात्मक रूप में अधूरे या बिना सही ज्ञान के जल्दी में लिया गया निर्णय है। अतः स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह वह अतार्किक एवं संवेगात्मक मनोभाव है, जो एक समूह के लोगों को दूसरे समूह के लोगों के प्रति कुछ विशिष्ट अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार करने की प्रेरणा देता है।

#### 7.4 पूर्वाग्रह की विशेषताएँ

यह स्पष्ट हो चुका है कि पूर्वाग्रह एक प्रकार का पूर्व निर्णय है। यह व्यक्ति को किसी समूह तथा सदस्यों के प्रति प्रतिकूल व्यवहार करने के लिए तत्पर करता है। इसमें विवेक व तर्क का अभाव होता है। इसका स्वरूप संवेगात्मक तथा पक्षपातपूर्ण होता है। पूर्वाग्रह की अनेक विशेषताएँ होती हैं, उनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत् हैं—

1. पूर्वाग्रह सीखे हुए होते हैं- पूर्वाग्रह जन्मजात नहीं होते बल्कि व्यक्ति इन्हें सीखता है। पूर्वाग्रहों का विकास बच्चों में तीसरे-चौथे वर्ष से ही प्रारम्भ हो जाता है। गुडमैन ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया है कि बच्चों में शिक्षा और अनुभव के आधार पर दूसरी जाति के लोगों और दूसरे राष्ट्र के प्रति मित्रता या शत्रुता की भावनाएँ विकसित होती हैं। बच्चे अपने परिवार, समाज या समुदाय के मानकों, मूल्यों, परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों से प्रभावित होकर दूसरे समूह, वर्ग या समुदाय तथा उसके सदस्यों के प्रति विशेष पूर्वाग्रह सीख लेते हैं।
2. पूर्वाग्रह अतार्किक होते हैं- पूर्वाग्रह तथ्यों पर आधारित नहीं होते हैं, इसमें विवेक, तर्क एवं संगति का कोई स्थान नहीं होता है। यही कारण है कि जब पूर्वाग्रह से सम्बन्धित सत्य तथ्य व्यक्ति के सामने उपस्थित किये जाते हैं तब भी व्यक्ति इन सही तथ्यों को मानने को तैयार नहीं होता है।
3. पूर्वाग्रह मुख्यतः अचेतन होते हैं- मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि जिन व्यक्तियों में सबसे अधिक पूर्वाग्रह होते हैं वे यह नहीं जानते हैं कि वे सचमुच पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं। इस अचेतन गुण के कारण ही अनेक अच्छे

और दयालु व्यक्ति भी हरिजनों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार करते हैं, और उनसे सामाजिक दूरी बनाये रखते हैं।

4. पूर्वाग्रह संवेगात्मक रंग से रंगे होते हैं- पूर्वाग्रह जब किसी व्यक्ति, जाति या समूह के प्रति अनुकूल होते हैं तब व्यक्ति दूसरे लोगों, जाति या समूहों के प्रति स्नेह और प्रेम सम्बन्धी व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है। दूसरी ओर जब पूर्वाग्रह प्रतिकूल होता है तो व्यक्ति दूसरे लोगों, जाति और समूह के प्रति घृणा, विद्वेष आदि संवेग मुख्य रूप से दिखलाता है। उच्च जाति के लोगों का निम्न जाति के लोगों के प्रति और एक धर्म के लोगों का दूसरे धर्म के लोगों के प्रति व्यवहार प्रायः संवेगात्मक रंग से रंगा होता है। चैपलिन ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि पूर्वाग्रह में संवेगात्मक दृढ़ता पाई जाती है।
5. पूर्वाग्रह दोषपूर्ण एवं दृढ़ सामान्यीकरण पर आधारित होते हैं- पूर्वाग्रह के विकास में तर्क और विवेक का विशेष महत्व नहीं है। प्रायः व्यक्ति पूर्वाग्रहों को अपने परिवार या निकट सम्बन्धियों के अनुकरण के आधार पर सीखता है। इनको व्यक्ति अपने व्यवहार का अंग इसलिए बना लेता है क्योंकि उसके परिवार के लोग और निकट सम्बन्धी भी इसी प्रकार के पूर्वाग्रह रखते हैं। पूर्वाग्रहों का आधार इतना मजबूत होता है कि वह उसमें किसी भी परिवर्तन को स्वीकृति नहीं देता है।
6. पूर्वाग्रह सन्तोष प्रदान करते हैं- पूर्वाग्रह एक अर्थ में समूह विकार का द्योतक है फिर भी लोग इसे बनाये रखते हैं क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें सन्तोष प्राप्त होता है। इन्हीं पूर्वाग्रहों के कारण हम प्रायः श्रेष्ठता की भावना का अनुभव करते हैं। कभी-कभी यह देखा गया है कि पूर्वाग्रहों के कारण हम हिंसा व शत्रुता का बहाना ढूँढ़ निकालते हैं।
7. सत्यता का अभाव- पूर्वाग्रह का प्रायः सत्यता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। चूँकि इनका निर्माण ही गलत सूचनाओं के आधार पर होता है इसलिए इनमें सत्यता का अभाव होना स्वाभाविक ही है। उदाहरण के लिए, सवर्णों द्वारा शूद्र या निम्न जाति के लोगों को अछूत व निम्न कोटि मानना इत्यादि ऐसी बातें हैं जिनके पीछे सत्यता नहीं दिखाई पड़ती है।
8. पूर्वाग्रह का स्वरूप कार्यात्मक होता है- पूर्वाग्रह केवल मानसिक स्तर पर ही व्यक्ति में नहीं पाये जाते हैं बल्कि व्यवहारिक स्तर पर भी व्यक्ति में पाये जाते हैं। इन्हीं पूर्वाग्रहों के कारण व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों, जातियों, धर्म या समूहों के लोगों से विशेष प्रकार का व्यवहार करता है। इसके द्वारा दमित इच्छाओं की सन्तुष्टि होती है, आत्मसम्मान एवं प्रतिष्ठा के भाव को मजबूत करने में मदद मिलती है तथा कुण्ठा एवं आक्रमणकारी व्यवहारों को विद्वेषपूर्ण कार्यों द्वारा व्यक्त करने का मौका मिलता है।

### 7.5 पूर्वाग्रह के प्रकार

पूर्वाग्रह का स्वरूप सार्वभौमिक माना गया है क्योंकि यह विश्व के सभी देशों में पाया जाता है। विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों, धर्मों, वर्गों और यहाँ तक कि पुरुषों एवं महिलाओं में भी, एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह देखने को मिलता है। इसका बड़ा व्यापक स्वरूप है। इसकी व्यापकता का अनुमान लगाने के लिए पूर्वाग्रह के कुछ प्रकारों का उल्लेख किया जा रहा है।

1. **प्रजातीय पूर्वाग्रह-** प्रजातीय पूर्वाग्रह उसे कहते हैं, जिसमें एक प्रजाति के सदस्य अपने को दूसरी प्रजाति की तुलना में श्रेष्ठ मानते हैं, और उसी आधार पर बाह्य प्रजाति के प्रति घृणा, अवहेलना तथा अनादर की भावना रखते हैं। अमेरिका में गोरे लोग नीग्रो को कम बुद्धि का व असभ्य समझते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण यह मानते हैं कि हरिजन अछूत व अपवित्र होते हैं। इन प्रजातीय पूर्वाग्रहों की गहराई में जाकर देखें तो हमें ज्ञात होगा कि इसमें सच्चाई कम है।
2. **यौन पूर्वाग्रह-** लिंग के आधार पर जो पूर्वाग्रह विकसित होते हैं उन्हें यौन पूर्वाग्रह कहते हैं। अनेक समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि हुई है कि महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों को अधिक सक्षम, प्रभावशाली, महत्वाकांक्षी एवं विचारवान माना जाता है; इसके विपरीत महिलाओं को नम्य, हँसमुख, भावुक, कमजोर, दूसरे पर निर्भर रहने वाली एवं नेतृत्व गुणों से रहित समझा जाता है। इसी आधार पर उनके साथ व्यवहार किया जाता है। परन्तु प्रसन्नता की बात है कि आज महिलाएँ हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं और धीरे-धीरे महिलाओं के प्रति इस तरह के पूर्वाग्रहों में कमी आ रही है।
3. **जाति पूर्वाग्रह-** यह पूर्वाग्रह जाति व्यवस्था पर आधारित है। हमारे देश में अनेक जाति के लोग रहते हैं। एक जाति के लोग आपस में एक दूसरे को एक ही समूह का सदस्य मानते हैं, चाहे वे किसी भी क्षेत्र, नौकरी या व्यवसाय के हों। अपनी जाति के लोगों को श्रेष्ठ मानते हुए उनके प्रति सकारात्मक तथा दूसरी जाति के लोगों को तुच्छ व हेय समझते हुए उनके प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं, और उनके प्रति बैर भाव उत्पन्न हो जाता है। यही बैर भाव जब अधिक बढ़ जाता है तो जातीय दंगे जन्म लेते हैं।
4. **धार्मिक पूर्वाग्रह-** धार्मिक विश्वासों के आधार पर विभिन्न धार्मिक समूहों में श्रेष्ठता या अधमता की भावना पैदा होती है, और उसी के आधार पर एक धार्मिक समूह दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति घृणा, अवहेलना या अनादर के भाव प्रकट करता है। लोग अपने धर्म को अच्छा तथा उपयोगी मानते हैं एवं अन्य धर्मों को निम्नस्तरीय मानते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दू धर्मावलम्बी इस्लाम तथा मुस्लिम धर्मावलम्बी हिन्दू धर्म में अनेक प्रकार के दोषों का उल्लेख करते हैं। इन पूर्वाग्रहों के कारण समाज में तनाव तथा संघर्ष की समस्या पैदा होती है।



5. **आयु पूर्वाग्रह-** अधिक आयु के लोग कम आयु के लोगों को अपरिपक्व, कम अनुभवी व जोशीला समझते हैं वहीं दूसरी ओर बूढ़े लोगों को निष्क्रिय, असामाजिक, जराग्रस्त समझा जाता है और ऐसा समझकर वयोवृद्ध लोगों के साथ व्यवहार किया जाता है। वयोवृद्ध लोगों के प्रति दूसरे आयु के लोग नकारात्मक अभिवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं।
6. **भाषाई पूर्वाग्रह-** अपने देश में अनेक प्रकार की भाषा बोलने वाले लोग रहते हैं। एक तरह की भाषा बोलने वाले लोग अपने को एक समूह का सदस्य समझते हैं दूसरे प्रकार की भाषा बोलने वाले लोगों को अपना नहीं समझते हैं, उन्हें अपरिचित व उनकी भाषा को अप्रिय एवं असंगत समझा जाता है। भाषा को लेकर भी तनाव व मनमुटाव उत्पन्न होता है। इस प्रकार का व्यवहार भाषा पूर्वाग्रह के कारण उत्पन्न होता है।
7. **राजनैतिक पूर्वाग्रह-** भारतवर्ष में अनेक राजनैतिक दल हैं, जो जिस राजनैतिक दल का सदस्य है, वह उस दल के आदर्श व सिद्धान्तों को ही सर्वोच्च स्थान देता है, और दूसरे दलों को भ्रष्टाचारी व हेय समझता है। राजनैतिक पूर्वाग्रह विशेष रूप में उस दल के सदस्यों से बहुत ही कटु होता है, जिसके हाथों में सत्ता होती है। ऐसे दल का सदस्य अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए विरोधी दलों के सदस्यों के प्रति हर दृष्टि से पक्षपात करता है। इस प्रकार एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह व्यवहार का आधार राजनैतिक होता है।
8. **साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह-** इस प्रकार के पूर्वाग्रह का आधार समुदाय या सम्प्रदाय है। दो समुदायों के बीच पाये जाने वाले पूर्वाग्रह को साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह कहते हैं। भारतीय समाज में हिन्दू समुदाय तथा मुस्लिम समुदाय के बीच इस प्रकार का पूर्वाग्रह देखा जा सकता है। एक दूसरे के प्रति न केवल नकारात्मक मनोवृत्ति रखते हैं बल्कि बैरभाव भी। समय-समय पर होने वाले हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे इसी तरह के पूर्वाग्रह के ही परिणाम हैं।

## 7.6 सारांश

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि यदि किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति में अन्य जातीय समूहों या वर्गों के प्रति तार्किकता, न्याय और मानवता का अभाव है तो इसे पूर्वाग्रह कहा जाता है। पूर्वाग्रह एक प्रकार का पूर्व निर्णय है। यह एक ऐसा विश्वास या मत है जो तथ्यों पर आधारित नहीं होता है। हम बिना किसी तार्किक औचित्य के, पहले से ही इस प्रकार की धारणा बना लेते हैं कि उस बाह्य समूह के सदस्य हमसे हेय हैं, हमारे साथ उठने-बैठने, मेल-मिलाप रखने, वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने या अन्य किसी प्रकार के निकट सामाजिक सम्बन्धों के दायरे में सम्मिलित होने के पूर्णतया अयोग्य हैं। पूर्वाग्रह एक ऐसी मनोवृत्ति है जो अधिकांश परिस्थितियों में नकारात्मक या प्रतिकूल होती है और कुछ परिस्थितियों में सकारात्मक या अनुकूल होती है। इसमें कठोरता अधिक तथा लचीलापन कम पाया जाता है। पूर्वाग्रह का प्रभाव व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण, चिन्तन, कल्पनाशीलता, भाव तथा व्यवहार पर पड़ता है। पूर्वाग्रह सीखे जाते हैं जिनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, इसमें सत्यता व

मानवता का अभाव होता है। पूर्वाग्रह का कारण हमारा व्यवहार एक विशिष्ट दिशा में अभिप्रेरित होता है। वास्तव में पूर्वाग्रह अन्य धर्म अथवा प्रजाति या जाति के सदस्यों के प्रति नकारात्मक रूप में अधूरे या बिना सही ज्ञान के शीघ्रता में लिया गया निर्णय है। पूर्वाग्रह की विशेषता होती है कि वह विवेकहीन होता है, अर्जित होने के साथ ही संवेगात्मकता से रँगा होता है, इसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है तथा यह दृढ़ एवं स्थिर सामान्यीकरण पर आधारित होता है। जातीय, यौन, आयु, भाषाई, साम्प्रदायिक, धार्मिक, क्षेत्रीय, राजनैतिक आदि कई प्रकार के पूर्वाग्रह होते हैं।

### 7.7 शब्दावली

- **पूर्वाग्रह:** एक प्रकार का पूर्व निर्णय है यह एक ऐसा विश्वास या मत है, जो तथ्यों पर आधारित नहीं होता है।
- **विभेदन:** अन्य समूहों के प्रति नकारात्मक भावनाएँ, विश्वास तथा व्यवहार प्रवृत्तियाँ विभिन्न नकारात्मक कार्यों द्वारा व्यक्त होती है। इन्हीं व्यक्त व्यवहारों और कार्यों को विभेदन कहते हैं।
- **रूढ़ियुक्तियाँ:** किसी भी व्यक्ति के सम्पूर्ण विचारों या उसकी मनोवृत्तियों के संयुक्त रूप को रूढ़ियुक्ति कहा गया है, जिसके आधार पर हम किसी व्यक्ति, वर्ग, धर्म, राष्ट्र या वस्तु के सम्बन्ध में एक दृढ़ व स्थायी चित्र अपने मस्तिष्क में अंकित करते हैं।
- **साम्प्रदायिकता:** अपने ही धार्मिक तथा जातीय समूह के प्रति एक तीव्र निष्ठा की भावना है।
- **अभिवृत्ति:** व्यक्ति के मन की एक विशिष्ट दशा होती है जिसके द्वारा वह समाज की विभिन्न परिस्थितियों, वस्तुओं, व्यक्तियों आदि के प्रति अपने विचार या मनोभाव को व्यक्त करता है।
- **आक्रामकता:** दूसरों या स्वयं को हानि पहुँचाने के लिए किया जाने वाला ध्वंसात्मक व्यवहार या व्यवहार करने की इच्छा।
- **प्रत्यक्षीकरण:** वे प्रक्रियाएँ जो संवेदी सूचनाओं को संगठित करती हैं।
- **व्यवहार:** कोई भी प्रकट क्रिया/प्रतिक्रिया जो व्यक्ति करता है तथा जिसका किसी प्रकार प्रेक्षण किया जा सकता हो।
- **अन्तःक्रिया:** व्यक्तियों के बीच आदान-प्रदान, बात-चीत।
- **अन्तःसमूह:** अपने ही समूह की सदस्यता।
- **मानक:** वह व्यवहार या प्रत्याशा है जो एक समूह के सभी सदस्यों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इन्हीं के आधार पर समूह के व्यक्तियों की भावनाओं और व्यवहार की उपयुक्तता का मूल्यांकन किया जाता है।
- **कुण्ठा:** किसी वांछित लक्ष्य पर पहुँचने के लिए व्यक्ति द्वारा किया गया व्यवहार जब बीच में ही अवरुद्ध हो जाता है, तो इससे उत्पन्न होने वाली मनोदशा को दर्शाता है।

7.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. पूर्वाग्रह सम्बन्धित होता है:

- (क) व्यक्ति के साथ (ख) समूह के साथ  
(ग) क तथा ख दोनों (घ) संस्कृति के साथ

2. पूर्वाग्रह मूलतः किस मूल प्रवृत्ति पर आधारित है?

- (क) सुरक्षा मूल प्रवृत्ति (ख) घृणा मूल प्रवृत्ति  
(ग) जीवन मूल प्रवृत्ति (घ) आक्रमण मूल प्रवृत्ति

3. पूर्वाग्रह की एक मुख्य विशेषता है:

- (क) भेदीकरण (ख) स्थिराकृति  
(ग) संज्ञानात्मक विसंगति (घ) संज्ञानात्मक जटिलता

4. पूर्वाग्रह सीखे हुए होते हैं। सत्य/असत्य

5. पूर्वाग्रह अतार्किक होते हैं। सत्य/असत्य

6. पूर्वाग्रह चेतन होते हैं। सत्य/असत्य

7. पूर्वाग्रह में सत्यता होती है। सत्य/असत्य

8. पूर्वाग्रह का स्वरूप सार्वभौमिक है। सत्य/असत्य

9. पूर्वाग्रह का एक प्रकार आयु पूर्वाग्रह भी है। सत्य/असत्य

10. यौन पूर्वाग्रह भारतवर्ष में नहीं पाया जाता है। सत्य/असत्य

उत्तर: (1) ख (2) ख (3) क (4) सत्य (5) सत्य (6) असत्य

(7) असत्य (8) सत्य (9) सत्य (10) असत्य

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार, (2006): समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- मुहम्मद, सुलेमान, (2005): उच्चतर समाज मनोविज्ञान, मनोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, डी0एन0 (दसवाँ संस्करण): 'सामाजिक मनोविज्ञान' साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- त्रिपाठी, लालबचन, (1998.99), 'आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान', एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- मायर्स, डी0जी0, (1999), 'सोशल साइकोलॉजी', मैकग्रा-हिल कॉलेज, न्यूयार्क।
- बेरान एवं बायर्न, (2000), 'सोशल साइकोलॉजी', एलन एवं बेकन, टोरन्टो।

---

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. पूर्वाग्रह को परिभाषित करें तथा इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करें।
2. पूर्वाग्रह के सम्प्रत्यय तथा स्वरूप की विवेचना करें।
3. पूर्वाग्रह के मुख्य प्रकारों का वर्णन करें।
4. पूर्वाग्रह के नकारात्मक प्रभाव पर प्रकाश डालें।
5. भारत में जाति पूर्वाग्रह एवं यौन पूर्वाग्रह पर एक लेख लिखें।

## इकाई-8 पूर्वाग्रह के कारण, पूर्वाग्रह, विभेदन एवं रुढ़ियुक्तियों में भेद (Causes of Prejudice; Difference between Prejudice, Discrimination and Stereotype)

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 पूर्वाग्रह के कारण
- 8.4 विभेदन
- 8.5 रुढ़ियुक्तियाँ
- 8.6 पूर्वाग्रह एवं विभेदन में भेद
- 8.7 पूर्वाग्रह एवं रुढ़ियुक्तियों में भेद
- 8.8 सारांश
- 8.9 शब्दावली
- 8.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 8.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
- 8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

### 8.1 प्रस्तावना

पूर्वाग्रह एक ऐसी मनोवृत्ति है जो व्यक्ति को किसी समूह या उसके सदस्यों के प्रति अनुकूल अथवा प्रतिकूल ढंग से सोचने, प्रत्यक्षीकरण करने, महसूस करने, तथा कार्य करने के लिए उन्मुख करती है। जैसा कि पहले हम जाने चुके हैं कि पूर्वाग्रह के कई प्रकार होते हैं। सभी व्यक्ति में सभी तरह के पूर्वाग्रह नहीं होते। किसी में यौन, जाति, उम्र तो किसी प्रजातीय व धार्मिक पूर्वाग्रह पाया जाता है। पूर्वाग्रह के निर्माण, विकास और संपोषण को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। यह अपेक्षाकृत स्थायी या दीर्घकालिक प्रक्रम है जो व्यक्ति से अधिक समाज के स्तर पर सक्रिय रहता है। यह व्यक्तियों द्वारा अनुभव किये जाने वाले सामाजिक यथार्थ का एक अपरिहार्य अंग होता है। यहाँ यह विचार किया जायेगा कि पूर्वाग्रहों का विकास क्यों होता है? इसे कौन-कौन से कारक प्रभावित करते हैं?

### 8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्नलिखित बातों के बारे में जान जायेंगे-

- पूर्वाग्रह के कारण
- विभेदन का अर्थ एवं स्वरूप
- रुढ़ियुक्तियों के बारे में

- पूर्वाग्रह और विभदन में भेद
- पूर्वाग्रह एवं रुढ़ियुक्तियों में भेद

### 8.3 पूर्वाग्रह के कारण

आलपोर्ट ने अपनी पुस्तक 'दी नेचर ऑफ प्रिज्यूडिस' में पूर्वाग्रह के कारणों को कुछ विशेष सिद्धान्तों एवं उपागमों के अन्तर्गत बताया है। व्यक्ति के स्तर पर ये कारक उसके अधिगम एवं अन्य प्रक्रमों पर निर्भर करते हैं। पूर्वाग्रह के कारकों में मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, परिस्थितिजन्य, संज्ञानात्मक आदि हैं। इन सभी कारकों में से कुछ प्रमुख कारकों का उल्लेख किया जा रहा है-

1. **सामाजिक अधिगम-** बच्चों में अपने माता-पिता, भाई-बहनों, अध्यापकों, पड़ोसियों के व्यवहार को अनुकरण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। समाजीकरण के इन माध्यमों से उन्हें जैसी शिक्षा मिलती है, उनमें वैसी ही मनोवृत्ति विकसित होती है। यही कारण है कि यदि माता-पिता किसी जाति या धर्म के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित होते हैं तो उनके बच्चों में भी उसी तरह का पूर्वाग्रह विकसित हो जाता है। अधिगम व अनुकरण के आधार पर ही बच्चा दूसरी जाति के लोगों के व्यवहारों और मूल्यों आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करता है। इसी आधार पर वह विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रहों को सीख लेता है। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि हुई है कि बच्चे अपने माता-पिता की पूर्वाग्रही मनोवृत्ति को काफी कम उम्र में सीख लेते हैं।
2. **शिक्षा-** पूर्वाग्रह को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक शिक्षा है। शिक्षा औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों तरीकों से दी जाती है। औपचारिक शिक्षा विद्यालय में दी जाती है। औपचारिक शिक्षा अधिक होने से व्यक्तियों में किसी समस्या या अन्य व्यक्तियों के बारे में तथ्यपरक रूप से सोचने-समझने की शक्ति विकसित होती है। अनौपचारिक शिक्षा परिवार के सदस्यों द्वारा बच्चों को दी जाती है। माता-पिता बच्चों को इस बात की शिक्षा देते हैं कि उन्हें किस समूह के बच्चों के साथ खेलना चाहिए, कौन समूह ठीक है, और किस समूह से दूर रहना चाहिए। इस दिशा में हुए अध्ययनों में देखा गया है कि औपचारिक शिक्षा में जैसे-जैसे वृद्धि होती है; पूर्वाग्रहों की मात्रा उसी रूप में कम हो जाती है। आलपोर्ट के अध्ययन के परिणाम से स्पष्ट हुआ है कि शिक्षित व्यक्तियों में अशिक्षित व्यक्तियों की अपेक्षा पूर्वाग्रह की मात्रा कम होती है।
3. **जाति-** अपने देश में भिन्न-भिन्न जातियों के लोग रहते हैं। कुछ जातियाँ अपने को ऊँचा व श्रेष्ठ मानती हैं। ऊँची जाति के लोग निम्न जाति के लोगों के प्रति अधिक पूर्वाग्रही होते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में पाया गया है कि उच्च जाति के हिन्दुओं में जाति पूर्वाग्रह निम्न जाति की हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक होती है। यह भी पाया गया है कि ब्राह्मण, कायस्थ एवं राजपूतों में निम्न जाति के लोगों की अपेक्षा अपनी जातियों को ऊँचा समझने की प्रवृत्ति अधिक होती है। कुछ अध्ययन परिणाम यह भी बतलाते हैं कि ब्राह्मण जाति के लोग अपने को अधिक श्रेष्ठ समझते हैं। इन अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि भिन्न-भिन्न जाति के लोग

अपनी जाति वाले लोगों के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति रखते हैं और दूसरी जाति वाले लोगों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं।

4. **धार्मिक सम्बन्धन-** भारतवर्ष में अनेक धर्म के मानने वाले लोग रहते हैं। किसी भी धर्म को मानने वाले व्यक्तियों में उस धर्म के प्रति अगाध प्रेम व विश्वास होता है, वे उसे श्रेष्ठ समझते हैं और दूसरे धर्म के लोगों को हेय दृष्टि से देखते हैं। अपने धर्म के प्रति विधेयात्मक अभिवृत्ति जबकि दूसरे धर्म के लोगों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं, जो पूर्वाग्रह को जन्म देते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति अधिक पूर्वाग्रह होता है तथा परम्परागत, सामाजिक, राजनैतिक मनोवृत्तियाँ अधिक तीव्र होती हैं। धार्मिक विश्वास और अन्य विश्वास की कड़ी इतनी मजबूत हो जाती है कि उस विशेष धर्म के समक्ष अन्य धर्म उसे तुच्छ लगते हैं। दूसरे धर्म के प्रति पूर्वाग्रह जन्म ले लेता है।
5. **जनसंचार माध्यम-** पूर्वाग्रहों के निर्माण और विकास में सिनेमा, दूरदर्शन, समाचार-पत्र, पत्रिकाओं, रेडियो आदि की भूमिका महत्वपूर्ण है। इन माध्यमों के द्वारा हमें दूसरे व्यक्तियों एवं समूहों के बारे में तरह-तरह की सूचनाएँ मिलती हैं जिसके आधार पर पूर्वाग्रह निर्मित होता है। दूरदर्शन पर दिखाये जाने वाले कार्यक्रमों के बीच-बीच में अनेक प्रकार के विज्ञापन दिखाये जाते हैं जिससे प्रभावित होकर हम इन विज्ञापनों के अनुरूप व्यवहार करना सीखते हैं। एक अध्ययन में पाया गया कि जो महिलाएँ दूरदर्शन पर केवल ऐसे कार्यक्रम देखती थीं जिसमें महिलाओं की परम्परागत भूमिका पर अधिक बल डाला जाता था, उनमें महिलाओं के परम्परागत व्यवहारों के प्रति अधिक अनुकूल पूर्वाग्रह विकसित हो गया।
6. **व्यक्तित्व विशेषताएँ-** अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में यह देखा गया है कि व्यक्ति का जैसा व्यक्तित्व होता है वैसा ही उसमें पूर्वाग्रहों का निर्माण होता है। दृढ़ चिन्तन, दण्डात्मक प्रवृत्ति आदि गुण जिन लोगों में प्रधान होता है, उनमें उन व्यक्तियों की अपेक्षाकृत पूर्वाग्रह अधिक होता है जिनमें ऐसे शीलगुण कम होते हैं। इसी प्रकार जिन लोगों में मैत्री की भावना अधिक पाई जाती है उनमें पूर्वाग्रह उन व्यक्तियों से भिन्न होते हैं जिनमें मैत्री की भावना कम मात्रा में पाई जाती है।
7. **असुरक्षा और चिन्ता-** व्यक्ति में पूर्वाग्रह असुरक्षा की भावना तथा चिन्ता से विकसित होती है। जिस समाज के लोगों में जितनी ही अधिक असुरक्षा और चिन्ता की भावना पाई जाती है उतनी ही उनमें पूर्वाग्रहों के निर्माण और विकास की सम्भावना अधिक होती है। जिस व्यक्ति में अपनी नौकरी, व्यवसाय, सामाजिक स्तर आदि के बारे में असुरक्षा की भावना नहीं होती है, वह सदैव अन्य व्यक्तियों या समूहों के प्रति एक स्पष्ट एवं वस्तुनिष्ठ विचार विकसित करता है। फलस्वरूप उसमें पूर्वाग्रह जल्दी विकसित नहीं होता। इसी तरह जब व्यक्ति में चिन्ता का स्तर अधिक होता है तो उनमें पूर्वाग्रह की मात्रा भी बढ़ जाती है।

8. शहरी-ग्रामीण क्षेत्र- मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन से यह स्पष्ट किया है कि ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों में पूर्वाग्रह तथा रुढ़िवाद की मात्रा शहरी क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की पूर्वाग्रह एवं रुढ़िवाद की मात्रा से अधिक होती है। यह भी पाया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति अधिक उदार होती है। परिणामस्वरूप इनमें पूर्वाग्रह कम होता है।

#### 8.4 विभेदन

किसी अन्य समूह के प्रति नकारात्मक भावनाएँ, विश्वास तथा व्यवहार-प्रवृत्तियाँ विभिन्न नकारात्मक कार्यों द्वारा व्यक्त होती हैं। इन्हीं व्यक्त व्यवहार और कार्यों को पक्षपात कहते हैं। पूर्वाग्रह के वास्तविक कारणों के बारे में मतभेद हो सकता है परन्तु पूर्वाग्रह की परिणति के रूप में विभेदन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। किसी जाति, प्रजाति अथवा अल्पसंख्यक समूह के प्रति समूह सदस्यता के कारण उत्पन्न गलत अथवा अनुचित अभिवृत्तियों पर आधारित व्यवहार को विभेदन कहते हैं। यह सम्भव है कि बिना किसी पूर्वाग्रह के भी विभेदन हो और बिना किसी विभेदन के भी पूर्वाग्रह हो। पूर्वाग्रह विभेदन के रूप में परिलक्षित होगा अथवा नहीं, यह पूर्वाग्रह की तीव्रता तथा सामाजिक बाधाओं पर निर्भर करता है। फेल्डमैन का कथन है कि, “पूर्वाग्रह की व्यवहारात्मक अभिव्यक्ति विभेदन कहलाती है। विभेदन में किसी विशेष समूह में सदस्यता के कारण उस समूह के सदस्यों के साथ धनात्मक या ऋणात्मक ढंग से व्यवहार किया जाता है।” व्यक्ति में पूर्वाग्रह होने पर भी वह हमेशा लक्ष्य समूह के प्रति विभेदन दिखलायेगा ही, यह कोई जरूरी नहीं है। ऐसा इसलिए होता है कि सामाजिक परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी होती हैं जो पूर्व ग्रसित व्यक्ति को खुलकर विभेदन की अनुमति नहीं देती। उदाहरण के लिए, एक उच्च जाति का जातीय पूर्वाग्रह से ग्रसित अधिकारी कार्यालय में एक निम्न जाति के कर्मचारी के प्रति किसी प्रकार का विभेद नहीं दिखला सकता है क्योंकि दोनों ही सरकारी नौकर हैं और कानून सामाजिक विभेद की आज्ञा नहीं देता है।

#### 8.5 रुढ़ियुक्तियाँ

रुढ़ियुक्ति के अंग्रेजी प्रतिरूप Stereotype शब्द का उपयोग सर्वप्रथम वाल्टर लिपमैन ने सन् 1922 में किया। इस शब्द से लिपमैन का अभिप्राय उन विचारों तथा प्रवृत्तियों से था, जो मस्तिष्क में जागृत होने के बाद एक चित्र या प्रतिमा अंकित कर देती है। रुढ़ियुक्त का अर्थ वह धारणा है जो हमें गलत वर्गीकरण के लिए बाध्य करती है। यह वह शब्द या सम्बोधन है, जो संक्षेप में एक व्यक्ति या समूह के प्रति हमारे मनोभावों को व्यक्त करता है, और हमारे शब्दों में उस व्यक्ति या समूह की किसी विशिष्ट विशेषता को प्रकट करता है। किम्बल यंग के अनुसार, “सबसे अच्छी परिभाषा इस रूप में की जा सकती है कि रुढ़ियुक्त एक मिथ्या, वर्गीकरण करने वाली अवधारणा है, जिसके प्रति रुचि या अरुचि, स्वीकृति या अस्वीकृति की तीव्र संवेगात्मक अनुभूति जुड़ी रहती है।”



रुढ़ियुक्तियाँ मिथ्या या अतार्किक युक्तियाँ होती हैं, जिनका प्रमुख आधार तीव्र संवेग या अनुभूति होता है। रुढ़ियुक्तियों के माध्यम से हम अपने विचारों या मनोभावों को एक क्रमबद्ध रूप में इस भाँति प्रस्तुत करते हैं कि किसी वस्तु, विषय, समूह या वर्ग के प्रति हमारी अपनी रुचि या अरुचि, स्वीकृति या अस्वीकृति व्यक्त हो जाती है। रुढ़ियुक्तियाँ अतार्किक होते हुए भी संवेगात्मक रूप से शक्तिशाली तथा सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इस कारण होती हैं कि इनके अध्ययन से ही हम किसी वस्तु, विषय, व्यक्ति या समूह के प्रति लोगों के विचारों तथा मनोवृत्तियों का एक सहज अनुमान लगा सकते हैं। किसी भी समूह के प्रति पूर्वाग्रह प्रायः रुढ़ियुक्तियों द्वारा सही सिद्ध और दृढ़ किया जाता है। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि रुढ़ियुक्ति विचारों का एक ऐसा पुँज है जो ऐसी गलत अथवा अधूरी सूचना पर आधारित होता है जिसे अविवेचनात्मक रूप से पूरे समूह के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

इस प्रकार किसी समूह के सभी व्यक्तियों को एक चयनात्मक तथा अधूरी सूचना के आधार पर जो सर्वथा आधार रहित व असत्य होती है, एक ही वर्ग या श्रेणी में रखने की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का नाम रुढ़ियुक्ति है। जैसे 'पाकिस्तानी कट्टर होते हैं', 'अंग्रेज बुद्धिमान होते हैं', 'हिप्पी गन्दे होते हैं' आदि वर्ण या श्रेणियाँ रुढ़ियुक्तियाँ कहलाती हैं। सिकार्ड तथा बेकमैन के अनुसार यह व्यक्तियों का सामान्यतः अतिरंजित वर्गीकरण है। किसी भी धार्मिक, जातीय अथवा प्रजातीय समूह के सभी व्यक्ति कभी भी समान नहीं हो सकते। उनमें आवश्यक रूप से वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है। इसलिए किसी भी समूह के सभी सदस्यों को एक ही वर्ग में रखना सम्भव नहीं है। कभी-कभी रुढ़ियुक्तियों के कारण अन्य समूहों के बारे में गलत प्रत्याशित व्यवहार के कारण समूहों के आपसी सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं और एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह एवं पक्षपात जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं।

## 8.6 पूर्वाग्रह एवं विभेदन में भेद

पूर्वाग्रह तथा विभेदन शब्दों का व्यवहार हम अक्सर करते हैं और प्रायः दोनों शब्दों का प्रयोग समान अर्थ में करते हैं। लेकिन यह सही नहीं है, दोनों दो भिन्न अर्थ वाले शब्द हैं। दोनों में निम्नलिखित अन्तर है-

1. पूर्वाग्रह एक तरह की अभिवृत्ति है, जबकि विभेदन पूर्वाग्रह को व्यक्त करने वाली क्रिया है। बेरान एवं बायर्न ने कहा है कि अपने से भिन्न किसी सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति व्यक्ति की नकारात्मक मनोवृत्ति को पूर्वाग्रह कहेंगे जबकि उसकी नकारात्मक क्रियाओं को विभेदन कहेंगे।
2. पूर्वाग्रह के तीन पक्ष हैं जिन्हें संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक कहते हैं, जबकि विभेदन में केवल क्रियात्मक पक्ष ही प्रधान होता है। उदाहरण के लिए एक ब्राह्मण हरिजनों के प्रति नकारात्मक तथा बैरपूर्ण मनोवृत्ति रखता है, यह पूर्वाग्रह है। इससे प्रभावित होकर वह हरिजनों को मन्दिर में जाने से रोकता है तथा धार्मिक व पवित्र पुस्तकों को पढ़ने पर पाबन्दी लगा देता है और इसका उल्लंघन करने पर शारीरिक दण्ड देता है, उसका यह व्यवहार विभेदन है।

3. पूर्वाग्रह का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। इसका सम्बन्ध तीन विमाओं अर्थात् संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक होता है। इसके विपरीत विभेदन का क्षेत्र सीमित होता है इसका सम्बन्ध केवल क्रियात्मक विमा से होता है।
4. विभेदन के लिए पूर्वाग्रह एक कारण है जबकि विभेदन स्वयं उसका परिणाम है।
5. पूर्वाग्रह के बिना विभेदन सम्भव नहीं है जबकि विभेदन के बिना भी पूर्वाग्रह सम्भव है। उदाहरण के लिए यदि किसी ब्राह्मण में हरिजनों के प्रति नकारात्मक तथा बैरपूर्ण मनोवृत्ति नहीं हो तो वह हरिजनों के साथ विभेदमूलक व्यवहार नहीं करेगा, दूसरी ओर विभेदमूलक व्यवहार नहीं करने पर भी उस ब्राह्मण में नकारात्मक मनोवृत्ति हो सकती है।

### 8.7 पूर्वाग्रह एवं रुढ़ियुक्तियों में भेद

पूर्वाग्रह एवं रुढ़ियुक्तियों को हम कभी-कभी समान समझ लेने की भूल कर बैठते हैं। वास्तव में इन दोनों में अन्तर है-

1. पूर्वाग्रह, मनोवृत्ति का एक विशेष प्रकार है। दूसरी ओर रुढ़ियुक्ति एक धारणा या प्रतिमा है, जिसके आधार पर अवास्तविक वर्गीकरण किया जाता है। नीग्रो के प्रति श्वेतों की नकारात्मक मनोवृत्ति पूर्वाग्रह है जबकि कुछ विशेष शीलगुण (जैसे रंग, रूप) के आधार पर नीग्रो तथा श्वेत वर्ग का विभाजन रुढ़ियुक्ति है।
2. पूर्वाग्रह की अपेक्षा रुढ़ियुक्ति में स्थिरता अधिक पाई जाती है। अतः रुढ़ियुक्ति की अपेक्षा पूर्वाग्रह में परिवर्तन की सम्भावना अधिक रहती है।
3. पूर्वाग्रह एक समूह के सदस्यों के अपरिपक्व या पक्षपातपूर्ण मत हैं दूसरी ओर रुढ़ियुक्ति गलत वर्गीकरण करने वाली धारणाएँ हैं।
4. पूर्वाग्रह अनुकूल या प्रतिकूल होते हैं, जबकि रुढ़ियुक्तियों में यह विशेषता नहीं पाई जाती है।
5. पूर्वाग्रह एक समूह के मानदण्डों के निष्कर्ष स्वरूप प्राप्त होते हैं, दूसरी ओर रुढ़ियुक्तियाँ निष्कर्ष स्वरूप प्राप्त नहीं होती है, यह निर्णय और प्रत्यक्षीकरण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

### 8.8 सारांश

भारतवर्ष में रहने वाले लोग भिन्न-भिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय के ही नहीं हैं बल्कि भिन्न-भिन्न भाषाओं को बोलने वाले भी हैं। लेकिन फिर भी सभी में सांस्कृतिक एकता है। इसके बावजूद भी हम विभिन्न जातियों, धर्मों व सम्प्रदायों के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं। जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि पूर्वाग्रह के कई प्रकार होते हैं। इनके विकास के कारण भी अलग-अलग होते हैं। पूर्वाग्रह के कारणों का अध्ययन समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों, इतिहासविदों ने भी किया है। इनमें मुख्य रूप से सामाजिक कारक यथा सामाजिक शिक्षण,

औपचारिक, धार्मिक विश्वास तथा अन्धविश्वास, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, ग्रामीण-शहरी क्षेत्र, सामाजिक परिवेश, सामाजिक श्रेणीकरण आदि, मनोवैज्ञानिक कारकों में कुण्ठा तथा आक्रमण, सामाजिक संज्ञान, व्यक्तित्व, इसके अलावा सांस्कृतिक, प्रचार, आघातजन्य अनुभव, विफलता एवं नैराश्य भी पूर्वाग्रह के कारण हैं।

पूर्वाग्रह के लक्ष्य समूह के सदस्यों के प्रति किया जाने वाला ऋणात्मक व्यवहार विभेदन है। पूर्वाग्रह के कारण व्यक्ति जिस समूह के प्रति पूर्वाग्रहग्रस्त होता है, उस समूह के सदस्य के साथ सामान्य बर्ताव नहीं करता है। उसे उन अधिकारों और लाभों से वंचित कर दिया जाता है जो अन्य समूह के सदस्य स्वाभाविक रूप से प्राप्त करते हैं। विभेदन और पूर्वाग्रह के बीच वही सम्बन्ध है जो व्यवहार और अभिवृत्ति के बीच होता है। पूर्वाग्रह की अभिवृत्ति के कारण कोई व्यक्ति विभेदन व्यवहार करेगा या नहीं? यदि करेगा तो कैसा करेगा? यह कई अन्य कारणों पर निर्भर करता है। पूर्वाग्रह एक तरह की मनोवृत्ति है और उसका क्रियात्मक प्रदर्शन विभेदन है।

किसी सामाजिक वर्ग के बारे में बना हुआ मानसिक चित्र ही रुढ़ियुक्तियाँ हैं। वास्तव में रुढ़ियुक्त एक धारणा है, जिसके आधार पर व्यक्तियों को एक निश्चित वर्ग में विभाजित कर दिया जाता है। उस वर्ग के कुछ निश्चित शीलगुण या विशेषताएँ निर्धारित कर दी जाती हैं, जिनके आधार पर उस वर्ग या उसके सदस्यों को पहचाना जाता है। रुढ़ियुक्तियों एवं पूर्वाग्रह में महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। वास्तव में पूर्वाग्रहों को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक रुढ़ियुक्तियाँ हैं। अनेक पूर्वाग्रह रुढ़ियुक्तियों के आधार पर बनते हैं। पूर्वाग्रह प्रतिकूल या अनुकूल होते हैं जबकि रुढ़ियुक्तियों में यह विशेषता नहीं पाई जाती है।

### 8.9 शब्दावली

- **सामाजिक यथार:** सामाजिक अर्थों से निर्मित हमारे द्वारा प्रत्याशित संसार जो प्रायः अन्य व्यक्तियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर निर्मित होता है।
- **समाजीकरण:** वह प्रक्रिया जिसके द्वारा हम समाज का सदस्य बनना सीखते हैं।
- **सामाजिक दूरी:** किसी समाज में समूहों या व्यक्तियों के बीच अलगाव की मात्रा।
- **मूल्य:** व्यक्ति या समूहों द्वारा माना जाने वाला विचार कि क्या जरूरी है, सही है, अच्छा है या बुरा।
- **अनुकरण:** दूसरों के व्यवहारों या कार्यों को जानबूझकर अपनाना।

### 8.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. रुढ़ियुक्त का तात्पर्य ऐसे समूह विश्वास से है-
  - (क) जो सीधा परिवर्तनशील होता है।
  - (ख) जो अत्यधिक दृढ़ होता है।
  - (ग) जो समय बीतने के साथ क्रमशः बदलता है।

(घ) जो स्वतः बदल जाता है।

2. रुढ़ियुक्त में -

(क) व्यक्तियों का अतिरंजित वर्गीकरण किया जाता है।

(ख) समूहों के बीच भिन्नताओं को अर्जित समझा जाता है।

(ग) विभिन्न समूहों के बीच भिन्नताओं को वंशागत समझा जाता है।

(घ) उपरोक्त सभी।

3. पूर्वाग्रह एक प्रकार है -

(क) मनोवृत्ति का (ख) मूल प्रवृत्ति का

(ग) संवेग का (घ) प्रेरणा का

4. पूर्वाग्रह का एक मुख्य कार्य है-

(क) स्वधारणा का निर्माण (ख) आत्मविश्वास का प्रोत्साहन

(ग) अहं प्रतिरक्षा (घ) इनमें से कोई नहीं

5. पूर्वाग्रह जन्मजात होते हैं। सत्य/असत्य

6. पूर्वाग्रह एक पक्षपातपूर्ण मत है। सत्य/असत्य

7. विभेदन पूर्वाग्रह की व्यवहारात्मक अभिव्यक्ति है। सत्य/असत्य

8. पूर्वाग्रह के कारण व्यक्ति विभेदन दिखायेगा ही। सत्य/असत्य

उत्तर : (1) ख (2) ग (3) क (4) ग (5) असत्य (6) सत्य (7) सत्य (8) असत्य

### 8.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- श्रीवास्तव, डी0एन0, (दसवाँ संस्करण), : 'सामाजिक मनोविज्ञान', साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- सिंह, अरुण कुमार, (2006): 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- हसनैन, एन0, (1994) : 'नवीन सामाजिक मनोविज्ञान', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- त्रिपाठी, लालबचन, (1998.99) : 'आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान', एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- मायर्स, डी0जी0, (1999) : 'सोशल साइकोलॉजी', मैकग्रा हिल कॉलेज, न्यूयार्क।
- सीकार्ड बेकमैन, (1974) : 'सोशल साइकोलॉजी', मैकग्रा हिल इण्टरनेशनल बुक कम्पनी, टोकियो।

### 8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूर्वाग्रह तथा विभेदन में भेद बतलाइए।

2. पूर्वाग्रह के मुख्य कारणों का वर्णन कीजिए।
3. रुढ़ियुक्ति की परिभाषा दें तथा इसकी विशेषताओं का उल्लेख करें।
4. रुढ़ियुक्ति किसे कहते हैं?
5. रुढ़ियुक्ति तथा पूर्वाग्रह में अन्तर स्पष्ट करें।

## इकाई-9 पूर्वाग्रह दूर करने की विधियाँ, भारत में सम्प्रदायिकता(Methods of reducing prejudice, Communalism in India)

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 पूर्वाग्रह दूर करने की विधियाँ
- 9.4 भारत में सम्प्रदायिकता
- 9.5 सारांश
- 9.6 शब्दावली
- 9.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 9.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
- 9.9 निबन्धात्मक प्रश्न

### 9.1 प्रस्तावना

पूर्वाग्रह एक ऐसी मनोवृत्ति है जिसका सामाजिक कुप्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। पूर्वाग्रह के कारण अन्तर-धार्मिक, जातीय व अन्तरवैयक्तिक संघर्ष देखने को मिलते हैं। इससे लोगों में भेदभाव, तनाव, साम्प्रदायिक दंगे आदि उत्पन्न होते हैं। पूर्वाग्रह को दूर व कम करने की विभिन्न विधियों का उल्लेख समाज मनोवैज्ञानिकों ने किया है। आपको भी इन विधियों से अवगत होना चाहिए ताकि हम इन्हें दूर कर सकें या कम कर सकें।

साम्प्रदायिकता अपने ही जातीय समूह के प्रति तीव्र निष्ठा की भावना है। साम्प्रदायिकता के कारण लोग अपने जातीय समूह को विशेष महत्व देते हैं। यह एक अन्तर-धार्मिक संघर्ष की स्थिति पैदा करता है जिसमें आपसी घृणा, पक्षपात, पूर्वाग्रह तथा सन्देह पाये जाते हैं जिसके कारण सामाजिक तनाव उत्पन्न होता है।

### 9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य होंगे कि:

- पूर्वाग्रह को दूर करने की विधियों को जान सकें,
- पूर्वाग्रह को कैसे कम किया जाय इसे जान सकें,
- साम्प्रदायिकता का अर्थ जान सकें, और
- भारत में साम्प्रदायिकता के बारे में जान सकें।

### 9.3 पूर्वाग्रह दूर करने की विधियाँ

पूर्वाग्रह समाज के अधिकांश लोगों के जीवन का एक बड़ा हिस्सा है। पूर्वाग्रह के कारण समाज में अनेक समस्याएँ पैदा होती हैं और व्यक्ति के सामाजिक चिन्तन का स्वरूप विकृत हो जाता है। समाज में तनाव व संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। समाज तथा व्यक्ति दोनों ही स्तरों पर पूर्वाग्रह मानव हितों को नुकसान पहुँचाता है। इसके प्रभाव के कारण अनावश्यक मनमुटाव, वैमनस्य और लड़ाई-झगड़े पैदा होते हैं। पूर्वाग्रहों के परिणामों को देखते हुए समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे दूर करने व कम करने के उपायों पर भी विचार किया है। यहाँ पर पूर्वाग्रह को दूर व कम करने की कुछ विधियों का उल्लेख किया जा रहा है।

1. **शिक्षा-** समाज मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि उचित शिक्षा प्रदान कर पूर्वाग्रह को कम किया जा सकता है। इनका मानना है कि औपचारिक शिक्षा जो स्कूल, मदरसा, कॉलेज आदि द्वारा दी जाती है, इनके शिक्षकों को चाहिए कि बच्चों को ऐसी शिक्षा न दें जिससे उनमें किसी प्रकार की पूर्वाग्रह की वृद्धि होती है। ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए जिनको पढ़ने से बच्चों में अच्छा मानसिक स्वास्थ्य विकसित हों एवं किसी प्रकार का पूर्वाग्रह इनके मन में न विकसित हो। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में पाया है कि शिक्षा का स्तर ऊँचा होने से व्यक्ति में पूर्वाग्रह की मात्रा कम हो जाती है क्योंकि शिक्षा से व्यक्ति में उदारता बढ़ती है। अनौपचारिक शिक्षा माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्यों तथा पास-पड़ोस के लोगों द्वारा बच्चों को दी जाती है। इन लोगों को चाहिए कि बच्चों के सामने ऐसी बातें नहीं करें जिससे वे किसी समुदाय, जाति या वर्ग के लोगों के प्रति पूर्वाग्रही हो जायें।
2. **अन्तर समूह सम्पर्क-** सर्वप्रथम आलपोर्ट ने इस बात पर बल दिया कि पूर्वाग्रह से ग्रस्त व्यक्ति और लक्षित व्यक्ति अर्थात् जिस व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह है, इन दोनों व्यक्तियों में उचित सम्पर्क कराया जाता है, एक दूसरे के निकट आते हैं, तो पूर्वाग्रही व्यक्ति को उनके बारे में समझने का अधिक अवसर मिलता है। परिणामस्वरूप लक्ष्य व्यक्ति के बारे में बहुत सारी गलतफहमियाँ अपने आप दूर हो जाती हैं और व्यक्ति में पूर्वाग्रह कम हो जाता है। एक अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है कि अन्तर समूह सम्पर्क रखने वाले जब समान स्तर के होते हैं तब इस स्थिति में अन्तर समूह सम्पर्क का पूर्वाग्रह को कम करने में अधिक प्रभाव पड़ता है। जब भिन्न-भिन्न जातीय समूहों, धार्मिक समूहों के सदस्यों को आपस में प्रत्यक्ष रूप से मिलने-जुलने का तथा नजदीक से एक-दूसरे से बातचीत करने का मौका मिलता है तो वे जान पाते हैं कि वे एक-दूसरे को जितना भिन्न समझते थे, वास्तव में वे उतना भिन्न नहीं हैं। उनकी नकारात्मक मनोवृत्ति सकारात्मक बन जाती है या नकारात्मक मनोवृत्ति की प्रबलता घट जाती है। इस कारण एक दूसरे के प्रति आकर्षण बढ़ता है और पूर्वाग्रह दूर हो जाता है।

3. **विधान-** विधान या कानून के माध्यम से पूर्वाग्रह को दूर किया जा सकता है। विधान द्वारा सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने से पूर्वाग्रह को विकसित व सम्पोषित करने वाले परिवेश सम्बन्धी कारक कमजोर हो जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं जिससे पूर्वाग्रह दूर या कम हो जाता है। भारतवर्ष में हरिजनों से सम्बन्धित अनेक तरह के पूर्वाग्रह मौजूद थे जिनमें छुआछूत प्रमुख था। सरकार ने सामाजिक कानून बनाकर छुआछूत को गैर कानूनी घोषित किया, फलस्वरूप हरिजनों से छुआछूत सम्बन्धी पूर्वाग्रह अब करीब-करीब समाप्त हो गया है। इसी तरह जातीय पूर्वाग्रह को कम करने के लिए भारत सरकार ने अन्तरजातीय विवाह को कानूनी घोषित किया है इससे भी एक जाति का दूसरे जाति के प्रति पूर्वाग्रह कम हुआ है।
4. **प्रचार-** पूर्वाग्रहों को कम करने में प्रचार द्वारा वांछित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। रेडियो, फिल्म, दूरदर्शन, समाचार-पत्रों के माध्यम से किया गया प्रचार पूर्वाग्रह को कम करने में काफी सहायक हुआ है। मायर्स ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह परिणाम प्राप्त किया है कि पूर्वाग्रह विरोधी प्रचार से पूर्वाग्रह 60 प्रतिशत तक कम हो जाते हैं।
5. **व्यक्तित्व परिवर्तन-** समाज मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व में परिवर्तन मनोचिकित्सा की विभिन्न विधियों एवं विरेचन द्वारा करके उनमें व्याप्त पूर्वाग्रह को कम करने पर जोर दिया है। अतः यदि व्यक्तित्व में परिवर्तन उत्पन्न किया जाय तो पूर्वाग्रहों में भी परिवर्तन हो सकता है। परन्तु यह विधि अधिक समय लेती है और व्यक्तित्व परिवर्तन कठिन भी है, इसलिए यह अपेक्षाकृत कम उपयोगी सिद्ध हो पाती है। व्यक्तित्व परिवर्तन के साथ-साथ परिस्थितियाँ भी परिवर्तित की जाय तो अधिक सहायता मिल सकती है।
6. **समूह सदस्यता में परिवर्तन-** पूर्वाग्रह के निर्माण में सामाजिक समूहों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। अतः यदि किसी पूर्वाग्रसित व्यक्ति को उस समूह की सदस्यता मिल जाय जिसके प्रति वह पूर्वाग्रसित है तो उसके पूर्वाग्रह में कमी आयेगी, ऐसा इसलिए होगा क्योंकि वह समूह का अनुमोदन तथा प्रशंसा प्राप्त करने के लिए समूह के साथ तादात्म्यकरण करेगा और अनुकूल विचार विकसित करेगा। वाटसन ने भी यह निष्कर्ष दिया है कि नवीन समूहों की सदस्यता ग्रहण करने पर उसके प्रति विचार परिवर्तित हो जाते हैं और पूर्वाग्रहों में कमी आती है। इसी प्रकार विभिन्न राजनैतिक दल एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रसित बातें करते हैं, परन्तु जब वे अपनी पार्टी छोड़कर किसी अन्य पार्टी में चले जाते हैं तो उस पार्टी के प्रति उनका भाव बदल जाता है।
7. **अलगाव विरोधी नीति-** भिन्न-भिन्न समूहों के बीच अलगाव नीति के कारण पूर्वाग्रह के विकास तथा सम्पोषण में सहायता मिलती है। अतः सरकारी अधिकारियों व समाज सुधारकों को चाहिए कि समूह अलगाव नीति का विरोध करें तथा समूह समाकलन नीति पर अमल करें। आज भी देखा जा रहा है कि हरिजनों, दलितों, शोषितों के लिए अलग आवासीय योजना चलाई जा रही है, जातीय छात्रावास बनाये जा रहे हैं। इसी प्रकार अलग-अलग जाति व धर्म के लोग अपनी आवासीय योजनाएँ चलाते हैं। अनेक शहरों व कस्बों में जाति और वर्ग के आधार पर अलग-अलग मुहल्ले व बस्तियाँ हैं। इस तरह के अलगाव का यदि



समाज में विरोध किया जाये तो इससे भी पूर्वाग्रह को कम किया जा सकता है क्योंकि भिन्न-भिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदाय के लोगों की साथ रहने की प्रवृत्ति जब बढ़ेगी तो पारस्परिक सम्पर्क के कारण उनमें पूर्वाग्रह कम होंगे।

8. **नागरिक संगठन-** पूर्वाग्रहों को दूर या कम करने में नागरिक संगठन या नागरिक समितियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इन नागरिक संगठनों में भिन्न-भिन्न जाति, वर्ग, धर्म व सम्प्रदाय के लोगों, वरिष्ठ व सम्मानित लोगों को रखा जाय जो आपस में भाई-चारा बढ़ाने और पूर्वाग्रहों को कम करने का कार्य करें तो इससे समाज में शान्ति स्थापित होगी और पूर्वाग्रह दूर होगा।

#### 9.4 भारत में सम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता वह संकीर्ण मनोवृत्ति है जो एक धर्म अथवा सम्प्रदाय के लोगों में अपने धार्मिक एवं राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए पाई जाती है तथा उसके परिणामस्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों में तनाव एवं संघर्ष पैदा होते हैं। साम्प्रदायिकता अपने ही जातीय समूह के प्रति, न कि सम्पूर्ण समाज के प्रति, तीव्र निष्ठा की भावना है। किसी विद्वान ने ठीक ही लिखा है कि अपने धार्मिक सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदायों के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, हेय दृष्टि, घृणा, विरोध और आक्रमण की वह भावना साम्प्रदायिकता है, जिसका आधार वह वास्तविक या काल्पनिक भय या आशंका है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे अपने सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट कर देने या हमें जान-माल की क्षति पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है। वास्तव में साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत वे सभी भावनाएँ व क्रियाकलाप आ जाते हैं जिनमें किसी धर्म अथवा भाषा के आधार पर किसी सम्प्रदाय विशेष के हितों पर बल दिया जाये। साम्प्रदायिकता के कारण व्यक्ति अपने सम्प्रदाय या जातीय एवं धार्मिक समूह को अधिक महत्व देता है और अन्य समाजों एवं राष्ट्रों के हितों की अवहेलना करता है।

भारत में जनसंख्या के आधार पर हिन्दू (82.63 प्रतिशत), मुसलमान (11.36 प्रतिशत), ईसाई (2.43 प्रतिशत), सिख (1.96 प्रतिशत), बौद्ध (0.71 प्रतिशत) तथा जैन (0.48 प्रतिशत) रहते हैं। आँकड़ों को देखने से लगता है कि पूरे राष्ट्र में बहुसंख्यक धार्मिक समूह के रूप में हिन्दू हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि कुछ प्रान्तों में ये अल्पसंख्यक हैं, जैसे-जम्मू एवं कश्मीर में मुसलमान 64.19 प्रतिशत, नागालैण्ड एवं मिजोरम में ईसाई क्रमशः 80.19 प्रतिशत तथा 83.80 प्रतिशत तथा पंजाब में सिख 60.17 प्रतिशत हैं, जनसंख्या के आधार पर भारत में मुसलमान यद्यपि अल्पसंख्यक हैं फिर भी इनकी संख्या पाकिस्तान की तुलना में यहाँ अधिक है। हिन्दू कई सम्प्रदायों जैसे-आर्यसमाजी, सनातनी और वैष्णव में बँटे हुए हैं। इसी प्रकार मुसलमान शिया और सुन्नी में विभक्त हैं। हिन्दूओं और मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्ध एक लम्बे अन्तराल से तनावपूर्ण रहे हैं जबकि हिन्दुओं और सिखों ने एक-दूसरे को कुछ वर्षों विशेष कर 1984 से 1990 के बीच से सन्देह की दृष्टि से देखना शुरू किया। यहाँ हम मुख्यतः हिन्दू-मुसलमान और हिन्दू-सिख सम्बन्धों का विश्लेषण करेंगे।

1. हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिकता- भारत में मुसलमानों के आक्रमण दसवीं शताब्दी में आरम्भ हो गये थे, परन्तु मोहम्मद गजनवी और मोहम्मद गोरी जैसे प्रारम्भिक मुसलमान विजेता धार्मिक आधिपत्य जमाने की अपेक्षा लूटमार में अधिक दिलचस्पी रखते थे। उस समय जब कुतुबुद्दीन दिल्ली का पहला सुल्तान बना तब इस्लाम ने भारत में पैर जमाये, इसके पश्चात् मुगलों ने अपने साम्राज्य तथा इस्लाम को काफी संगठित तथा विकसित किया। मुगल शासकों द्वारा किये जा रहे कुछ कार्य जैसे मंदिरों को तोड़कर मस्जिद बनवाना, तथा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए बाध्य करना आदि से हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक झगड़े बढ़े। इसके बाद जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से अंग्रेजों ने भारत पर अपना आधिपत्य जमाया, तो उन्होंने प्रारम्भ में हिन्दुओं को संरक्षण देने की नीति अपनाई तथा मुसलमानों को भी खुश करने का भरसक प्रयत्न किया। 1857 में जब प्रथम स्वतंत्रता संग्राम प्रारम्भ हुआ तो हिन्दुओं एवं मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर लड़ाई लड़ी। इस लड़ाई में उन्हें सफलता तो नहीं मिली परन्तु अंग्रेजों को यह समझ में आ गया कि इन दोनों के मिल जाने पर भारत में वे पैर नहीं जमा पायेंगे। अतः अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू एवं मुसलमानों के साम्प्रदायिक झगड़ों को प्रोत्साहन मिला। यद्यपि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पारस्परिक विरोध एक पुराना मामला है परन्तु भारत में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजी शासन की विरासत है।

हम भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से उपलब्ध तथ्यों पर विचार करें तो यह स्पष्ट होगा कि 1918 तथा 1922 के बीच जितने गम्भीर प्रयास हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए हुए, वे इन समुदायों एवं कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं के वार्तालाप के रूप में हुए। इन नेताओं के बीच प्रारम्भ से ही एक अप्रत्यक्ष सहमति थी कि हिन्दू, मुसलमान एवं सिख ऐसे पृथक समुदाय हैं जिनके धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रथाओं में एकता न होकर केवल राजनीतिक एवं आर्थिक मामलों में ही एकता है। इस तरह हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के बीज तो इसी अवधि में ही पड़ चुके थे। 1942 के बाद मुस्लिम लीग एक सशक्त राजनीतिक दल की तरह उभरी और उसके नेता एम0ए0 जिन्ना ने कांग्रेस को एक 'हिन्दू' संगठन कहा जिसका अनुमोदन अंग्रेजों ने इस आशय से किया कि वे मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़का सकने में सफल हो पायें। कांग्रेस के अन्दर भी मदनमोहन मालवीय, सरदार वल्लभ भाई पटेल एवं के0एम0 मुंशी जैसे कुछ नेताओं ने हिन्दू-समर्थक दृष्टिकोण अपनाया जिससे साम्प्रदायिक तत्वों का मनोबल ऊँचा हुआ। पाकिस्तान का नारा मुस्लिम लीग ने लाहौर में सर्वप्रथम 1940 में दिया। बाद में जब कांग्रेस नेताओं ने 1946 में विभाजन की स्वीकृति दे दी, तो उससे 1947 में लाखों की संख्या में हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों का रक्तपात हुआ। लगभग 2 लाख लोगों के मारे जाने का अनुमान है और लगभग 60 लाख मुसलमान और साढ़े चार लाख हिन्दू एवं सिख शारणार्थी हो गये। विभाजन के बाद भी कांग्रेस साम्प्रदायिकता पर काबू नहीं पा सकी। इसलिए यह कहा जा सकता है कि भारत में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता

के राजनीतिक-सामाजिक स्रोत थे और उनमें झगड़े के लिए केवल धर्म ही कारण नहीं था। आर्थिक स्वार्थ, सांस्कृतिक और सामाजिक रीति-रिवाज (जैसे त्यौहार, सामाजिक प्रथाएँ और जीवनशैलियाँ) भी महत्वपूर्ण कारक थे जिन्होंने दोनों समुदायों को और विभाजित किया।

आज भारत में मुसलमान दूसरा सबसे बड़ा धार्मिक समुदाय है और विश्व में दूसरे सबसे बड़े मुस्लिम अल्पसंख्यक हैं। लगभग 12 करोड़ मुसलमान हमारे देश के सभी भागों में फैले हुए हैं। जम्मू और कश्मीर, असम और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों में हिन्दू जनसंख्या की तुलना में मुस्लिम अनुपात अधिक है। मुसलमान भी भाषा, संस्कृति और सामाजिक आर्थिक स्थितियों में इतने ही भिन्न हैं जितने कि हिन्दू उत्तर प्रदेश के मुसलमानों और केरल के मुसलमानों में कोई समानता नहीं है। उनको मिलाने वाला कारक केवल धर्म है, यहाँ तक कि उनकी भाषा भी एक नहीं है। सूक्ष्म अवलोकन से यह स्पष्ट है कि 16 शहर जो हिन्दू-मुस्लिम दंगों के लिए अतिसंवेदनशील हैं वे हैं--उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद, मेरठ, अलीगढ़, आगरा और वाराणसी; महाराष्ट्र में औरंगाबाद; गुजरात में अहमदाबाद, आन्ध्र प्रदेश में हैदराबाद, बिहार में जमशेदपुर और पटना; असम में सिल्चर और गौहाटी; पश्चिम बंगाल में कलकत्ता; मध्य प्रदेश में भोपाल; जम्मू और कश्मीर में श्रीनगर, और उड़ीसा में कटक। आधुनिक भारत में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध किन-किन कारकों से प्रभावित होता है, एक मनोवैज्ञानिक ने स्पष्ट किया है कि हिन्दू एवं मुस्लिम की मनोवृत्ति एवं प्रत्यक्षण में काफी अन्तर है जो इन दोनों के आपसी सम्बन्ध को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। 1992-93 के रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद के फैसले ने साम्प्रदायिक सद्भाव के सन्तुलन को गड़बड़ा दिया है। आज मुसलमान अपनी सुरक्षा और बचाव के लिए अधिक चिन्तित हैं।

2. हिन्दू-सिख साम्प्रदायिकता- भारत की जनसंख्या में लगभग 2 प्रतिशत से कम (1.3 करोड़) सिखों की संख्या है। ये पूरे देश में दूर-दूर तक फैले हुए हैं। उनका सबसे बड़ा केन्द्रीयकरण पंजाब में है जहाँ वे बहुमत में हैं। इतिहास से यह तथ्य सामने आया है कि सिख धर्म का आरम्भ हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध एक सुधार आन्दोलन के रूप में हुआ था। दसवें गुरु के बाद सिखों में गुरुओं की परम्परा समाप्त हो गई और ग्रन्थ साहब को सर्वाधिक आदर दिया जाने लगा। सिख आन्दोलन जो अस्सी के दशक में प्रारम्भ में हुआ। जब एक स्थानीय सम्पादक की हत्या कर दी गई, श्रीनगर की उड़ानों पर एक वायुयान का अपहरण हुआ और एक कल्पित राष्ट्र, खलिस्तान के लिए पासपोर्ट जारी किये गये, तब से यह आन्दोलन तेजी पकड़ने लगा। हत्याओं की संख्या बढ़ने लगी और सिखों का विरोध संगठित उग्रवादी एवं अधिक हिंसक हो गया। 1984 में जब अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर में उग्रवादी सिखों द्वारा इकट्ठे किये गये हथियारों को जब्त करने और आतंकवादियों को निकालने के लिए पुलिस ने गुरुद्वारे में 'आपरेशन ब्लू स्टार' योजना के अन्तर्गत प्रवेश किया तो यह सिख बर्दाशत नहीं कर पाये और अनेक सिख सरकार एवं कुछ हिन्दुओं के विरुद्ध हो गये। फिर 31 अक्टूबर 1984 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या की गयी तो भारत के अनेक

शहरों में हजारों सिखों की हत्या की गयी व उनके मकान एवं दुकान जलाये गये एवं सम्पत्ति लूट ली गयी। इससे सिखों में हिन्दुओं के प्रति आक्रोश उत्पन्न हो गया और कुछ आतंकवादी सिखों ने ट्रेन और बसों में यात्रा करने वाले हिन्दुओं को चुन-चुनकर मार डाला। हिन्दुओं और सिखों के बीच साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए प्रयत्नशील हरचन्द सिंह लोगोवाल की हत्या सन् 1985 में एक सिख हठधर्मी द्वारा की गयी। 1988 में जब अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर में पुनः 'आपेशन ब्लैक थन्डर' योजना द्वारा अनेक उग्रवादियों को दस दिन तक घेरे रहने के उपरान्त समर्पण करने के लिए मजबूर किया गया तब सिख उग्रवादियों ने पुनः अपना आन्दोलन तीव्र किया तथा कई शहरों में बम विस्फोट किये। यहाँ तक कि कनाडा से भारत आने वाले एक जहाज को बम-विस्फोट द्वारा उड़ाकर सैकड़ों हिन्दुओं को मार डाला गया। बहुत से हिन्दू उनके इन आतंकवादी गतिविधियों से डरकर पंजाब छोड़कर अन्य राज्यों में बस गये।

पंजाब में आतंकवाद की समस्या अब समाप्त हो चुकी है। परिणामस्वरूप हिन्दू-सिख समुदाय के बीच उत्पन्न मनमुटाव, अविश्वास, वैमनस्य, नकारात्मक मनोवृत्ति में थोड़ी कमी आई है और दोनों समुदायों के बीच सम्बन्ध पहले जैसे सामान्य होने लगे हैं।

### 9.5 सारांश

पूर्वाग्रह सामाजिक रूप से परिभाषित समूह तथा उसके सदस्यों के प्रति एक निषेधात्मक अभिवृत्ति है। पूर्वाग्रह एवं विभेद के कारण अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष तथा अन्तःसमूह संघर्ष उत्पन्न होते हैं। इससे लोगों में भेदभाव, तनाव, साम्प्रदायिक दंगे आदि उत्पन्न होते हैं। व्यक्ति तथा समाज दोनों ही स्तर पर पूर्वाग्रह के भयंकर परिणाम को देखते हुए समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह को दूर करने हेतु अनेक तकनीकों का विकास किया है। इसके अन्तर्गत माता-पिता तथा अध्यापकों द्वारा समाजीकरण, शिक्षा, पूर्वाग्रहयुक्त व्यक्ति तथा लक्ष्य व्यक्ति के बीच सम्पर्क, कानून, व्यक्तित्व परिवर्तन, अलगाव विरोधी नीति, समूह सदस्यता में परिवर्तन, नागरिक संगठन आदि का उपयोग पूर्वाग्रह के निराकरण में किया गया है।

साम्प्रदायिकता का अर्थ है अपने सम्प्रदाय का हित चाहना और दूसरे सम्प्रदाय या सम्प्रदायों के हितों की उपेक्षा करना। साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत वास्तव में वे सभी भावनाएँ व क्रियाकलाप आ जाते हैं जिनमें किसी धर्म अथवा भाषा के आधार पर किसी समुदाय विशेष के हितों पर बल दिया जाय और उन हितों के ऊपर भी प्राथमिकता दी जाये तथा उस समूह में पृथकता की भावना उत्पन्न की जाये या उसको प्रोत्साहन दिया जाये। भारत में साम्प्रदायिकता मुख्य रूप से अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' नीति की ही एक उपज है। भारत में देश के विभाजन से उत्पन्न हिन्दू मुस्लिम सम्बन्ध सामाजिक तनाव तथा साम्प्रदायिकता का एक महत्वपूर्ण स्रोत रहा है।

### 9.6 शब्दावली

- **औपचारिक शिक्षा:** ऐसी शिक्षा जो विद्यालय या अन्य शिक्षण संस्थाओं द्वारा दी जाती है।

- **अनौपचारिक शिक्षा:** अनौपचारिक शिक्षा माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्यों व पास-पड़ोस के लोगों द्वारा बच्चों को दी जाती है।
- **मानसिक स्वास्थ्य:** व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से अच्छी तरह तालमेल बिठाते हुए कार्य करते रहना।
- **तादात्म्यीकरण:** किसी व्यक्ति के साथ स्व को आत्मसात करके उसी के अनुरूप व्यवहार करने तथा उसके व्यक्तित्व के अनुरूप अपना भी व्यक्तित्व विकसित करने से है।
- **विरासत:** जो हमें अपने पूर्वजों से प्राप्त होती है।
- **प्रथा:** समाज से मान्यता प्राप्त, पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होने वाली सुव्यवस्थित दृढ़ जनरीतियाँ।
- **परम्परा:** उन सभी विचारों, आदतों और प्रथाओं का योग, जो व्यक्तियों के एक समुदाय का होता है, और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है।

### 9.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. पूर्वाग्रह का अर्थ है-
  - (क) वह मनोवृत्ति जो युक्ति संगत न हो।
  - (ख) वह व्यवहार जो किसी समूह के प्रति अनुचित हो।
  - (ग) वह व्यवहार जो विभेदन पर आधारित हो।
  - (घ) उपर्युक्त सभी।
2. व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा पूर्वाग्रह को कम करना तभी सम्भव होता है, जबकि:
  - (क) परिचय क्षमता हो
  - (ख) समान हैसियत हो
  - (ग) सहकारी पुरस्कार हो
  - (घ) उपर्युक्त सभी।
3. साम्प्रदायिकता की विशेषता नहीं है:
  - (क) साम्प्रदायिकता एक व्यवस्था है।
  - (ख) साम्प्रदायिकता एक विचाराधारा है।
  - (ग) साम्प्रदायिकता एक विशेष धर्म के प्रति अन्धभक्ति है।
  - (घ) साम्प्रदायिकता चरमवादी होती है।
4. साम्प्रदायिकता के परिणाम नहीं कहे जा सकते:
  - (क) पारस्परिक विश्वास
  - (ख) राष्ट्रीय एकता में बाधक
  - (ग) राष्ट्रीय सुरक्षा में बाधक
  - (घ) पारस्परिक तनाव
5. सम्प्रदायवाद के कारण हैं:

(क) संकीर्णता	(ख) राजनीति	
(ग) मतान्ध धार्मिक मूल्य	(घ) उपर्युक्त सभी	
6. पूर्वाग्रह को अन्तर समूह सम्पर्क द्वारा दूर किया जा सकता है।		सत्य/असत्य
7. समूह सदस्यता में परिवर्तन करके पूर्वाग्रह को कम किया जा सकता है।		सत्य/असत्य
8. साम्प्रदायिकता अपने ही जातीय समूह के प्रति तीव्र निष्ठा की भावना है।		सत्य/असत्य
9. भारत में मुसलमानों की संख्या पाकिस्तान की तुलना में अधिक है।		सत्य/असत्य
10. भारत में सिखों की जनसंख्या 2 प्रतिशत से अधिक है।		सत्य/असत्य
उत्तर :	(1) घ (2) घ (3) क (4) क (5) घ (6) सत्य	
	(7) सत्य (8) सत्य (9) सत्य (10) असत्य	

### 9.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- सिंह, अरुण कुमार, (2006) : 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- त्रिपाठी, लालबचन, (1998-99) : 'आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान', एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- रामआहूजा, (2000) : 'सामाजिक समस्याएँ', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- मिश्र, गिरीश्वर एवं जैन उदय, (1994) : 'समाज मनोविज्ञान के मूल आधार', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
- मो0 सुलेमान एवं दिनेश कुमार (2010) : 'मनोविज्ञान और सामाजिक समस्याएँ', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, डी0एन0, (दसवाँ संस्करण) : 'सामाजिक मनोविज्ञान', साहित्य प्रकाशन, आगरा।

### 9.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूर्वाग्रह क्या है? इसे कैसे कम किया जा सकता है?
2. पूर्वाग्रह को दूर करने की विधियों का संक्षेप में वर्णन करें।
3. साम्प्रदायिकता का अर्थ स्पष्ट करें।
4. हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के बारे में उल्लेख करें।
5. भारत में साम्प्रदायिकता पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

---

**इकाई-10 समूह का अर्थ, प्रकार, संरचना एवं कार्य (Meaning, Types, Structure and Functions of Group)**

---

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 समूह
- 10.4 स्वरूप एवं विशेषताएँ
- 10.5 समूह का वर्गीकरण या प्रकार
- 10.6 समूह की संरचना
- 10.7 समूह के कार्य
- 10.8 सारांश
- 10.9 तकनीकी पद
- 10.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

---

**10.1 प्रस्तावना**

---

प्रत्येक व्यक्ति एक से अधिक समूहों का सदस्य होता है। वह प्रायः सामूहिक स्तर पर सामाजिक कार्यकलापों में भाग लेता है। व्यक्ति अपने परिवार में रहते हुए उसके सदस्यों के साथ अन्तर्क्रिया करता है। परिवार के नियमों के अनुसार अपने आचरण को नियंत्रित करता है, तथा परिवारिक सुरक्षा को बनाए रखने तथा उसके लक्ष्यों की प्राप्ति में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। समूह एक व्यापक शब्द है, और अनेक प्रकार की सामाजिक स्थितियों को इंगित करने के लिए इस शब्द का उपयोग किया जाता है। किसी खेल के लिए गठित टीम, बारातियों का दल, किसी कथा वाचक की कथा सुनने के लिए एकत्र लोग, किसी अधिकारी के समक्ष लोगों की परेशानियों का

वर्णन करने के लिए कई लोगों का स्वतः गठित दल, दुर्गा पूजा समिति, शैक्षणिक यात्रा समूह एक मुहल्ले से दूर के विद्यालय में अध्ययन स्वयं सेवक दल इत्यादि समूह के उदाहरण हैं। समूह लोगों की एक जैसी आवश्यकताओं के आधार पर स्वतः गठित हो जाते हैं अथवा उनका गठन प्रयत्न करके औपचारिक स्तर पर किया जाता है। समूह कुछ घण्टों या दिनों के लिए गठित हो सकते हैं। समूह और व्यक्ति के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। एक ओर समूह व्यक्ति के व्यवहारों, विचारों, अभिवृत्तियों एवं आवश्यकताओं को प्रभावित करते हैं तो दूसरी ओर व्यक्ति समूह संरचना तथा कार्य-कलापों को प्रभावित करता है। व्यक्ति द्वारा सामूहिक स्तर पर किए जाने वाले व्यवहार, उनका निष्पादन स्तर अथवा निर्णय व्यक्ति स्तर पर किए जाने वाले व्यवहारों निष्पादनों तथा निर्णयों से भिन्न होते हैं। प्रत्येक समूह में व्यक्तियों के अलग-अलग स्थान होते हैं। और प्रत्येक व्यक्ति अलग प्रकार की भूमिका का निर्वाह करता है।

समूह और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध का स्वरूप गतिकीय होता है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति और समूह के बीच का सम्बन्ध स्थिर एवं अपरिवर्तनीय न होकर अस्थिर एवं सतत परिवर्तनशील होता है। परिणामस्वरूप समूह संरचना तथा समूहों के प्रकार भी गतिकीय होते हैं।

समूह गतिकी क्या है? समूह गतिकी के अर्थ के सम्बन्ध में कई तरह के विचार मिलते हैं, जिससे इसके सही अर्थ को समझना कठिन सा बन गया है। एक विचार यह है कि समूह - गतिकी का तात्पर्य समूह-संगठन तथा संचालन के स्वरूप से है। इस विचार के समर्थकों ने प्रजातांत्रिक नेतृत्व सदस्यता - सहभागिता तथा सामूहिक सहयोग पर विशेष रूप से बल दिया है। दूसरा विचार यह है कि समूह - गतिकी का तात्पर्य भूमिका-निर्वाह समूह - चिकित्सा, संवेदनशीलता- प्रशिक्षण तथा अन्य सम्बद्ध प्रविधियों से है लेकिन “लेविन (1944-1945) ने समूह गतिकी शब्द का उपयोग एक विशेष अर्थ में किया है। स्मरणीय है कि लेविन ने ही इस शब्द का उपयोग सबसे पहले किया। उनके अनुसार समूह गतिकी का अर्थ इस बात का अध्ययन करना है कि किस प्रकार के अध्ययन से परिवर्तन की संभावना अधिक होती है, तथा किस दिशा में परिवर्तन की सम्भावना अधिक होती है। (द्विवेदी 1979) ने इस रूप में गतिकी की परिभाषा देते हुए कहा कि समूह - “गतिकी का तात्पर्य समूहों के अन्दर होने वाले परिवर्तनों से है। तथा इसका सम्बन्ध सामाजिक परिस्थितियों में समूह - सदस्यों के बीच पारस्परिक प्रतिक्रिया तथा पक्तियों से है।”

रेबर एवं रेबर (2001)के अनुसार “समूह गतिकी का अर्थ है समूहों का अध्ययन, जिसमें गत्यात्मक अन्तः समूह परस्पर क्रियाओं तथा अधिकार, अधिकार परिवर्तन, नेतृत्व, समूह निर्माण, एक समूह दूसरे समूहों के प्रति कैसे प्रतिक्रिया करता है, समग्रता, निर्णय लेना, आदि पर बल दिया जाता है।”

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि समूह - गतिकी के सम्बन्ध में तीन बातों का अध्ययन किया जाता है :-



1. किस प्रकार के समूह में परिवर्तन की संभावना अधिक होती है।
2. किन परिस्थितियों में समूह में परिवर्तन की संभावना अधिक होती है।
3. किस दिशा में परिवर्तन की संभावना अधिक होती है।

**समूह गतिकी अध्ययन के आशय:** समूह गतिकी के सम्बन्ध में किये गये अध्ययनों से इसके अनेक आशय का पता चलता है, वाइट एवं लिपिट(1960) ने उस्सास के लड़कों पर कई प्रयोगात्मक अध्ययन किये। उन्होंने अपने अध्ययनों में सत्तावादी, प्रजातांत्रिक तथा ढीलाढाला नेतृत्वों के प्रभावों को देखने का प्रयास किया। देखा गया कि सत्तावादी नेतृत्व में शुरू में निष्पादन कम हुआ लेकिन धीरे-धीरे सामान्य स्तर तक पहुँच गया प्रजातांत्रिक की अपेक्षा सत्तावादी नेतृत्व में समूह के निष्पादन में विचलन अधिक पाया गया। यह देखा गया कि प्रजातांत्रिक नेता की अनुपस्थिति में निष्पादन सामान्य रहा, किन्तु सत्तावादी नेता की अनुपस्थिति में निष्पादन घट गया। बिल्कुल ढीलाढाला नेतृत्व में निष्पादन बहुत कम पाया गया। प्रजातांत्रिक नेतृत्व में सदस्यों में संतुष्टि, मित्रता, सहयोग, आदि विशेषताएँ पाई गयी जबकि सत्तावादी नेतृत्व में आक्रमणशीलता बैर-भाव आदि विशेषताएँ अधिक पाई गयी। बिल्कुल ढीलाढाला नेतृत्व में निष्पादन बहुत कम पाया गया। प्रजातांत्रिक नेतृत्व में सदस्यों में संतुष्टि, मित्रता, सहयोग, आदि विशेषताएँ पाई गयी जबकि सत्तावादी नेतृत्व में आक्रमणशीलता, बैर- भाव आदि विशेषताएँ अधिक पाई गयी। बिल्कुल नेतृत्व वाले समूह के सदस्यों में अधिक संतुष्टि नहीं पाई गयी। होमन्स (Homans, 1950) ने समूह में संचालित पक्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि क्रिया के सामाजिक समूह में तीन तत्व होते हैं। क्रिया, पारस्परिक प्रतिक्रिया, तथा मनोभाव (Sentiment)। क्रिया का अर्थ यह है कि प्रत्येक समूह का अपना एक विशेष कार्य या उद्देश्य होता है जिसको प्राप्त करने हेतु सदस्यगण प्रयास करते हैं। पारस्परिक प्रतिक्रिया का तात्पर्य उन व्यवहारों से है जो समूह - लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सदस्यों के बीच घटित होते हैं। मनोभाव का अर्थ वे मनोवृत्तियाँ हैं, जो सदस्यों के बीच विकसित होती हैं। समूह के इन तीनों तत्वों के बीच गहरा सम्बन्ध होता है। क्रिया एक तत्व में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव दूसरे तत्वों पर पड़ता है। अतः समूह एक इकाई के रूप में और एक विशेष पंक्ति के रूप में कार्य करता है। इस कारण सदस्य पर समूह का दबाव पड़ता रहता है। समूह द्वारा पुरस्कार पाने अथवा दण्ड से बचने के लिए व्यक्ति अपने समूह के सामने झुक जाता है जिसको अनुपालन कहते हैं जो सदस्य अपने समूह के मूल्यों या प्रतिमानों का उल्लंघन करता है तथा समूह - दबाव के सामने नहीं झुकता है, उसे दण्डित होना पड़ता है अथवा समूह से निकलना पड़ता है।

---

## 10.2 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जानेंगे कि :

- समूह किसे कहते हैं?
- समूह कि क्या विशेषताएँ होती हैं? अथवा समूह को एक दूसरे से किन किन आधारों पर पृथक कर सकते हैं।
- मनोविज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न आधारों पर समूह को भिन्न-भिन्न प्रकारों में विभाजित किया है। आप सभी प्रकारों की व्याख्या कर सकते हैं।
- सामाजिक समूह के दो आवश्यक पक्ष होते हैं जिन्हें संरचना तथा कार्य कहते हैं। अतः इन दोनों पक्षों को अलग-अलग समझ सकते हैं।

---

## 10.3 समूह

---

सामान्यतः समूह का तात्पर्य दो या अधिक वस्तुओं या व्यक्तियों संग्रह से है। इस अर्थ में दो या अधिक बिन्दुओं अथवा पुस्तकों के संग्रह को भी समूह कहेंगे। परन्तु सामाजिक या मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से समूह के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं। पहली शर्त यह है कि वह दो या अधिक व्यक्तियों या प्राणियों का संग्रह हो और, दूसरी शर्त यह है कि उन व्यक्तियों के बीच कार्यात्मक सम्बन्ध हो। यदि दो अपरिचित व्यक्ति किया चौराहे पर एक ही साथ टहल रहे हों तो उन्हें समूह नहीं कहेंगे, क्योंकि उनके बीच कार्यात्मक सम्बन्ध या समान अनुभव का अभाव है। परन्तु क्या विक्रेता के द्वारा सम्बोधित किये जाने पर दोनों सामग्री को खरीदने के लिए आपस में समझौता कर ले तो इन्हें एक समूह मानेंगे, क्योंकि अब दोनों के बीच कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित हो गया है। लिण्डग्रेन (1969) ने इसी अर्थ में समूह की परिभाषा देते हुए कहा है। “दो या अधिक व्यक्तियों के किया कार्यात्मक सम्बन्ध में व्यस्त होने पर एक समूह का निर्माण होता है”।

व्यक्ति की तरह समूह की अपनी हस्ती होती है जिसकी निश्चित विशेषताएँ होती हैं, जिनका निरीक्षण तथा मापन किया जा सकता है और जिनके सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सकती हैं। जब समूह का निर्माण हो जाता है तो इसके साथ ही एक विशेष संरचना विकसित हो जाती है। - समूह के सदस्यों की भूमिकाएँ निर्धारित हो जाती हैं और सभी सदस्य अपने अधिकार तथा कर्तव्य के आलोक में एक - दूसरे के साथ पारस्परिक क्रिया करने लगते हैं, जिसका उद्देश्य किसी समान लक्ष्य की प्राप्ति होता है। इस प्रकार समूह एक सामाजिक इकाई का रूप धारण कर लेता है। शेरिफ एवं शेरिफ (1956) ने इसी दृष्टिकोण से समूह की परिभाषा दी है कि, “एक समूह एक

सामाजिक इकाई है जिसमें कुछ व्यक्ति हैं जो एक दूसरे के प्रति अपेक्षाकृत निश्चित पद एवं भूमिका सम्बन्ध रखते हैं, और जिसके अपने प्रतिमान या मूल्य होते हैं। कम से कम समूह के प्रति परिणाम के मामले में सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। लेकिन, यह परिभाषा भी सामाजिक समूह के जटिल स्वरूप को स्पष्ट करने में पूरी तरह सफल नहीं है। इस सम्बन्ध में बेरोन तथा बिर्ने 2003 की परिभाषा अधिक संतोषप्रद है। उनके अनुसार “समूह वह सामाजिक इकाई है, जिसमें दो या अधिक व्यक्ति सामाजिक पारस्परिक क्रिया में लगे होते हैं, जो एक-दूसरे के साथ स्थिर संरचित सम्बन्ध रखते हैं जो एक दूसरे पर अवलंबित होते हैं, सामूहिक लक्ष्यों में साझेदार होते हैं तथा इस बात का बोध रखते हैं कि वास्तव में वे एक समूह के अंग हैं”।

यह एक लम्बी परिभाषा है परन्तु काफी समग्र तथा संतोषजनक है इस परिभाषा में समूह पद की न्यूनतम आवश्यक विशेषताओं को शामिल किया गया है, जिनके बिना समूह के संप्रत्यय को भीड़ संग्रह पूर्णयोग या संकलन के संप्रत्यय से अलग करना संभव नहीं है। इस दृष्टिकोण से यह परिभाषा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है।

1. समूह एक सामाजिक इकाई है इस अर्थ में समूह वास्तव में संग्रह या पूर्णयोग से भिन्न हैं, क्योंकि इनमें सामाजिक इकाई पन का गुण नहीं होता है। अतः केवल ऐसे संग्रह को समूह कहा जाएगा जिसमें सामाजिक इकाई की विशेषता है।
2. इस सामाजिक इकाई में कुछ व्यक्तियों का होना आवश्यक है। सदस्यों की संख्या कम-से-कम दो और अधिक-से अधिक कुछ भी हो सकती है। यह विशेषता समूह को मूर्त तथा विशिष्ट बना देती है।
3. समूह के सदस्यों के बीच कार्यात्मक संबंध पाये जाते हैं समूह के अन्तर्गत सदस्यों की स्थिति तथा उनके भूमिका - सम्बन्ध अपेक्षाकृत निश्चित तथा स्थिर होते हैं।
4. समूह में होने वाली क्रियाओं, सदस्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों, समूह - इकाई के स्थायीकरण आदि विषयों से सम्बन्धित सदस्यों के अनुभव एवं व्यवहार को नियंत्रित तथा संचालित करने के लिए समूह में कुछ निश्चित मूल्य एवं प्रतिमान अवश्य होते हैं।
5. समूह के सदस्यों के सामने एक सामूहिक लक्ष्य होता है जिसको प्राप्त करने के लिए वे सभी सक्रिय प्रयास करते हैं। यही लक्ष्य उनके बीच एकता भाईचारा तथा एकात्मा का मूल आधार होता है।
6. समूह के सदस्यों में इस बात का बोध होता है कि वे सभी एक खास समूह के अंश हैं। इसलिए समूह के प्रति उनमें निष्ठा का भाव पाया जाता है।

स्मिथ तथा मैक्की (Smith and Mackie 1995) के द्वारा दी गयी परिभाषा से सभी उक्त बातों का समर्थन होता है। उन्होंने कहा है, “सामाजिक समूह का तात्पर्य दो या अधिक ऐसे व्यक्तियों से है जो कुछ ऐसी सामान्य विशिष्टता में साझा करते हैं, जो उनके अपने अथवा दूसरों के लिए सामाजिक रूप से अर्थपूर्ण होती है”।

#### 10.4 स्वरूप एवं विशेषताएँ

भारत में ही नहीं अपितु विश्व के सभी देशों में समूह शब्द का उपयोग बहुतायत से किया जाता है। समूह शब्द का उपयोग विविध प्रकार की स्थितियों में अनेक व्यक्तियों की अन्तर्क्रियाओं का द्योतन करने के लिए किया जाता है। सामाजिक मनोविज्ञान में समूह शब्द का उपयोग एक निश्चित अर्थ में किया जाता है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति परस्पर अन्तर्क्रिया के लिए एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, परस्पर लगाव का अनुभव करते हैं तथा लगभग समान आख्याओं एवं अभिवृत्तियों के साथ निश्चित लक्ष्य या लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तो उन व्यक्तियों के संघात को समूह का नाम दिया जाता है। समस्त सामाजिक मनोवैज्ञानिक इसी अर्थ में समूह शब्द का उपयोग करते हैं। किन्हीं व्यक्तियों का संघात समूह है या नहीं निम्न चार विशेषताओं के आधार पर पहचाना जा सकता है:

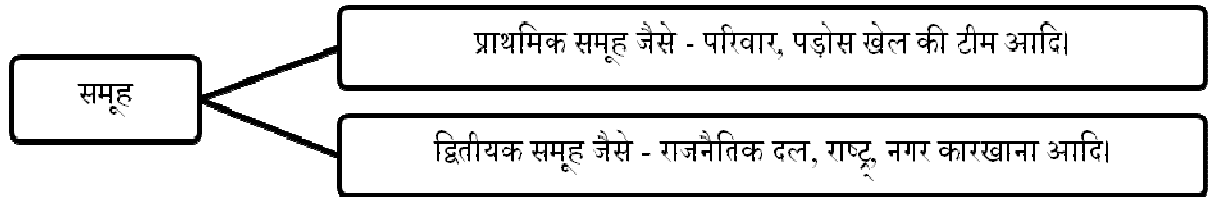
1. **परस्पर अन्तर्क्रिया-** व्यक्तियों के संघात को उस समय समूह के रूप में माना जाता है जब वे व्यक्ति एक दूसरे के साथ आमने-सामने होकर दूरभाष से अथवा पत्राचार के माध्यम से परस्पर अन्तर्क्रिया करते हैं।
2. **अन्तर्व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण-** जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक दूसरे का प्रत्यक्षीकरण पारस्परिक समानता के आधार पर करें तो वे एक समूह का रूप ग्रहण कर लेते हैं। यहाँ प्रत्यक्षीकृत समानता का तात्पर्य यह है कि ये लोग एक दूसरे को एक प्रकार की ही स्थिति में पाते हैं और अनुभव करते हैं कि वे सभी एक ही प्रकार समस्याओं का सामना कर रहे हैं।
3. **सामान्य लक्ष्य-** समूह तब बनता है जब कुछ व्यक्तियों का एक सामान्य लक्ष्य होता है और समूह के लोग उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पारस्परिक अन्तर्क्रिया के एक ही प्रकार के नियमों या मानकों का पालन करते हैं। लक्ष्य अमूर्त और अन्तःस्थ भी हो सकते हैं। समूह निर्माण के लिए आवश्यक यह होता है कि ये लक्ष्य उन सभी व्यक्तियों के लिए मूल्यवान और आकर्षक हों। सभी लोग, जो समूह के सदस्य हों, उस लक्ष्य या उन लक्ष्यों के लिए पर्याप्त मात्रा में अभिप्रेरित होते हैं।
4. **अन्योन्याश्रित सम्बन्ध-** समूह की अन्तिम विशेषता यह होती है कि प्रत्येक सदस्य की नियति दूसरे सदस्यों की नियति से जुड़ी होती है, अर्थात् सदस्यों की नियति में अन्योन्याश्रित का सम्बन्ध (Interdependent relationship) होता है। एक सदस्य के साथ होने वाली घटना से दूसरे सदस्य भी प्रभावित होते हैं। समूह की उपलब्धियों एवं असफलताओं के सभी न्यूनाधिक मात्रा में सहभागी होते हैं।

इस प्रकार जब कभी जिस भी स्थिति में अनेक लोगों की अन्तर्क्रिया में ये चार विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं तो उन लोगों के संघ को समूह का नाम दिया जाता है।

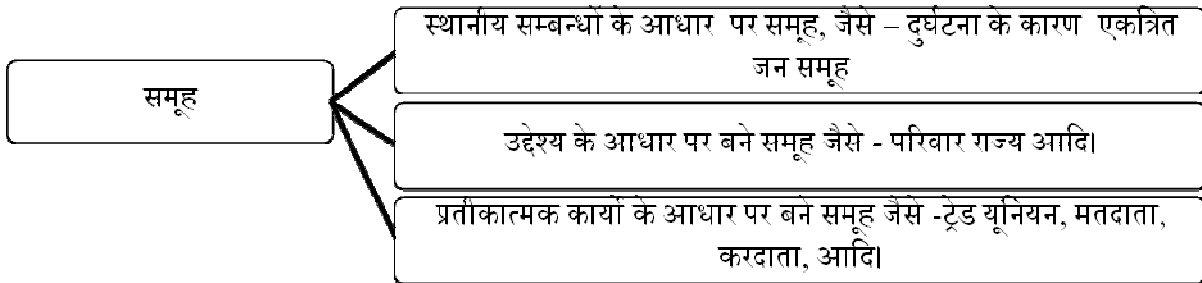
उदाहरण के लिए मान लीजिए कि चार या पाँच एक दूसरे से अपरिचित छात्र अचानक किया जलपान गृह या उद्यान में एक साथ मिल जाते हैं और एक दूसरे को देखकर अनुभव करते हैं कि सभी लगभग समवयस्क हैं और सम्भवतः सभी छात्र हैं। परिचय का सिलसिला परस्पर बातचीत में परिवर्तित हो जाता है और अध्ययन अध्यापन की चर्चा छिड़ जाती है। चर्चा की अवधि में सभी इसका अनुभव करते हैं कि नगर में कोई ऐसा मंच नहीं है जहाँ छात्र एकत्र होकर बात कर सकें। इस सामान्य आवश्यकता का अनुभव एक सामान्य लक्ष्य को जन्म देता है, जिसकी प्राप्ति के लिए उपस्थित सभी छात्र सामूहिक स्तर पर प्रयास करने का निश्चय करते हैं। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समय-समय पर कहीं मिलने और विचार को समृद्ध एवं अभिव्यक्ति क्षमता को प्रखर करने के लिए कुछ नियम बनाते हैं। परिणामस्वरूप एक समूह अपने आप बन जाता है। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार विकसित समूह में अन्तर्क्रिया, अन्तर्वैयक्तिक समानता का प्रत्यक्षीकरण, सामान्य लक्ष्य एवं अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

### 10.5 समूह का वर्गीकरण या प्रकार

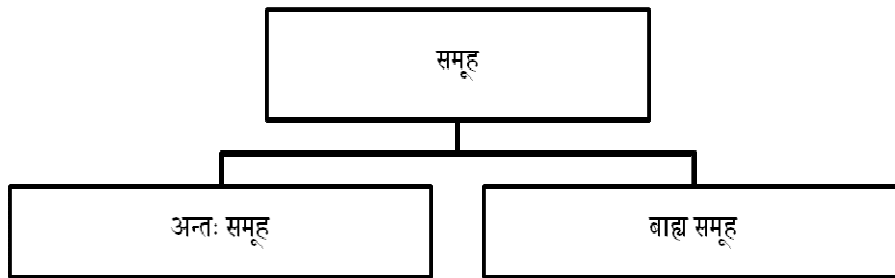
1. कूले का वर्गीकरण - कूले ने समूह को दो मुख्य भागों में बाँटा है:



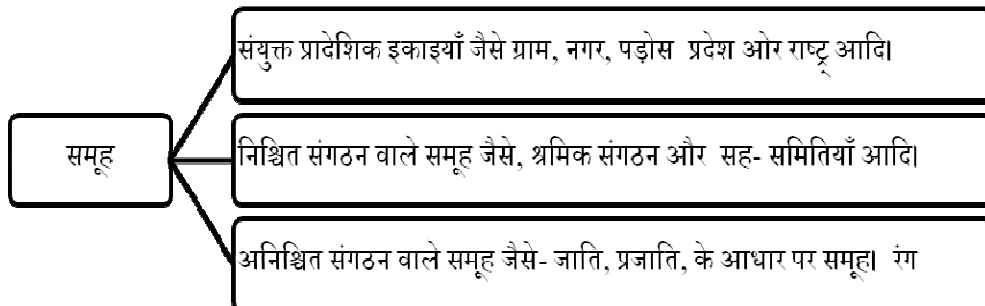
2. सापिर का वर्गीकरण - सापिर ने मुख्य तीन प्रकार के समूहों का वर्णन किया है।



1. समनर का वर्गीकरण - समनर ने समूहों के मुख्यतः दो प्रकार बतलाए हैं:



2. मेकाइवर और पेज का वर्गीकरण - मेकाइवर और पेज ने समूहों को तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया है:



3. गिलिन एवं गिलिन का वर्गीकरण - गिलिन एवं गिलिन ने समूहों का वर्गीकरण निम्न

प्रकार से किया है:

1. रिक्त स्थानों के आधार पर बने समूह जैसे- (1) परिवार (2) जाति
2. शारीरिक विशेषताओं से सम्बन्धित समूह
  - (1) शारीरिक विशेषताओं के आधार पर बने समूह
  - (2) लिंग के आधार पर बने समूह
  - (3) प्रजाति समूह
3. क्षेत्रीय समूह- (1) राज्य (2) राष्ट्र (3) जनजातियाँ।
4. स्थाई समूह या संस्कृति अभिरूचि पर आधारित समूह

जैसे:- (1) राज्य (2) कस्बे और शहर

(3) नगर (4) खानाबदोश समूह।

5. अस्थायी समूह या परिस्थिति की समीपता पर आधारित समूह

जैसे:- (1) भीड़ (2) श्रोता समूह

1. समूह के प्रकार

1. **अन्तः समूह** - समनर ने अन्तःसमूह शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1970 में किया। बाद में यह अन्तःसमूह “हम समूह” भी कहलाये। अन्तःसमूह के सदस्य समूह को अपना समूह समझते हैं। समूह के सदस्यों के बीच सहानुभूति होती है और सदस्यों के व्यक्तिगत कल्याण आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। उनमें सहयोग, मित्रता और एक दूसरे के प्रति विश्वास भी होता है। समूह के सदस्य अपनी संस्कृति, अपने देश अपनी भाषा आदि को बहुत अच्छा अथवा श्रेष्ठ मानते हैं। अन्तः अहंवादी भी होते हैं। उनका व्यवहार दूसरे समूह के सदस्यों के साथ पक्षपातपूर्ण भी हो सकता है। उदाहरण के लिए खेल के समूह या परिवार।
2. **बाह्य समूह** - यह समूह भी समनर के ही वर्गीकरण के अन्तर्गत आता है। यह समूह “वे समूह” या “दूसरों का समूह” भी कहलाते हैं। इस प्रकार के समूहों के सदस्य आपस में एक दूसरे से संवेगात्मक

बन्धनों में बँधे हुए नहीं होते हैं। अतः इनमें मित्रता, सहानुभूति और सहयोग तथा विश्वास आदि का प्रभाव पाया जाता है। बाह्य समूहों के प्रति इनका व्यवहार घृणा और पक्षपातपूर्ण हो जाता है। उदाहरण के लिए हम आध्यात्मवादी हैं और वह भौतिकवादी हैं, हम कांग्रेसी हैं, वह जनसंघी हैं, हम हिन्दू हैं, मलेच्छ हैं, आदि।

3. **प्राथमिक समूह** - प्राथमिक समूह कूले के वर्गीकरण के अन्तर्गत आता है कूले ने प्राथमिक समूह का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि “प्राथमिक समूहों से तात्पर्य मेरा अर्थ उन समूहों से है, जिनमें आमने-सामने का घनिष्ठ सम्बन्ध और सहयोग होता है। इस तरह के समूह अनेक अर्थों में प्रभावित होते हैं परन्तु मुख्यतः इस कारण से कि वे व्यक्ति की सामाजिक प्रवृत्ति एवं आदर्शों का निर्माण करने में मौलिक है”।

कूले ने आगे लिखा है कि इस प्रकार के समूहों में घनिष्ठ सहयोगी, सहानुभूति एवं सदभावनापूर्ण सम्बन्ध पाये जाते हैं। इस प्रकार के समूहों के उदाहरण हैं- परिवार, खेल के समूह एवं मित्र-मण्डली, पडोस आदि। प्राथमिक समूहों के सदस्य अपने समूह के अन्य सदस्यों के सुख-दुख को अपना सुख - दुख समझते हैं।

प्राथमिक समूहों को विशेषताएँ मुख्यतः दो प्रकार की हैं: (1) प्राथमिक समूहों की आन्तरिक विशेषताएँ प्राथमिक समूहों की बाह्य विशेषताएँ। प्राथमिक समूहों की आन्तरिक विशेषताओं के अन्तर्गत कई विशेषताएँ हैं जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं।

1. उद्देश्यों की समानता होती है।
2. वैयक्तिक सम्बन्ध होता है।
3. स्वाभाविक सम्बन्ध होते हैं।
4. इन समूहों में चूँकि सदस्य एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं और दूसरे को नियन्त्रित कर सकते हैं। अतः इन समूहों में प्राथमिक नियन्त्रण पाया जाता है।
5. सदस्य हर समय समूह के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हृदय से तैयार रहते हैं अर्थात् सदस्यों में सर्वांगीण सम्बन्ध पाया जाता है।
6. माँ और बेटे के बीच सम्बन्ध क्रिया लाभ के लिए न होकर त्यागपूर्ण एवं सुख-शान्ति के लिए होते हैं। अर्थात् सम्बन्ध स्वयं में साध्य है।

प्राथमिक समूहों की बाह्य विशेषताओं के अन्तर्गत निम्न महत्वपूर्ण विशेषताएँ होती हैं-

- I. आमने-सामने के सम्बन्ध होते हैं।
- II. सदस्यों की संख्या कम होती है।



III. सदस्यों के बीच घनिष्ठता होती है।

IV. इस प्रकार के समूह अधिक स्थाई एवं इसके सदस्यों के सम्बन्ध में निरन्तरता होती है।

V. इस प्रकार के समूहों का विकास क्रिया विशेष व्यक्ति के स्वार्थ की पूर्ति पर आधारित नहीं होती है। प्राथमिक समूह व्यक्ति और व्यवहार को प्रभावित करने की दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। प्राथमिक समूहों का महत्व निम्न है-

- i. इन समूहों का व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चा प्राथमिक समूह परिवार से ही भाषा, रीति-रिवाज, आदर्श एवं मूल्य आदि सीखता है।
- ii. प्राथमिक समूह व्यक्ति के व्यवहार के नियन्त्रण में महत्वपूर्ण साधन है, जब परिवार में बच्चे पर माँ, पिता, बड़े भाई-बहिनों द्वारा नियन्त्रण सम्भव है।
- iii. प्रत्येक व्यक्ति इन प्राथमिक समूहों द्वारा ही आदर्श गुण एवं उच्च मूल्य सीखता है, जैसे प्रेम, त्याग, स्नेह सद्भावना, सहयोग आदि।
- iv. प्रत्येक व्यक्ति को आन्तरिक सन्तोष समूहों द्वारा प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति, हँसी, मजाक, सेवा, मेल, मुलाकात का आनन्द इन्हीं समूहों से प्राप्त करता है।
- v. प्राथमिक समूह व्यक्ति को पशुता से मानवता या सामाजिकता की ओर जाने में सहायक है या सामाजीकरण में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

4. **द्वितीयक समूह** - द्वितीयक समूह प्राथमिक समूहों को अपेक्षा विपरीत विशेषताएँ रखते हैं। कूले (1907) ने द्वितीयक समूहों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, “द्वितीयक समूह वह समूह हैं जिनमें घनिष्ठता के अभाव के अतिरिक्त सामान्यतः उन विशेषताओं का अभाव भी होता है जो प्राथमिक एवं अर्द्ध-प्राथमिक समूहों में पायी जाती हैं।”

इस प्रकार के समूहों के मुख्यतः दो प्रकार होते हैं जैसे –

- (1) सांस्कृतिक आधार पर गठित समूह:- सामाजिकता, राष्ट्रीय समूह, स्थानीय समूह, समुदाय प्रादेशिक समूह, प्रादेशिक समूह, कॉरपोरेशन, जनता एवं संस्थात्मक समूह आदि।
- (2) सांस्कृतिक आधार के अतिरिक्त समूह के उदाहरण- प्रजाति, भीड, परिषद, लिंग समूह, आयु समूह आदि। इस प्रकार के समूहों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-
  - (i) इस प्रकार के समूहों का आकार बड़ा होता है।
  - (ii) इस प्रकार के समूहों के सदस्यों में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं।

- (iii) सदस्यों के सम्बन्ध अवैक्तिक होते हैं।
- (iv) सदस्यों में घनिष्ठ सम्बन्धों का अभाव होता है।
- (v) इस प्रकार के समूहों की स्थापना जानबूझ कर की जाती है।
- (vi) समूह के सदस्यों के उद्देश्यों में समानता नहीं होती है।
- (vii) सदस्यों के सम्बन्ध केवल औपचारिक होते हैं तथा स्वार्थसिद्धि एवं प्रतिस्पर्धा पर आधारित होते हैं। इस प्रकार के समूहों को लैन्डिस ने शीतजगत कहा है। इन समूहों को शीतजगत इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन समूहों में प्रेम, स्नेह, सद्भावना, सहयोग, मित्रता एवं घनिष्ठ व्यक्तिगत सम्बन्धों का अभाव पाया जाता है।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर यह नहीं समझना चाहिए कि इस प्रकार के समूह मानव के लिए व्यर्थ होते हैं। इन समूहों का भी हमारे जीवन में महत्व है। इस प्रकार के समूह व्यक्ति के कार्यों एवं व्यवहारों का द्वितीयक नियन्त्रण करते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन समूह की सभ्यता के विकास के लिए सहायक ही नहीं होते हैं अपितु इनके कारण सामाजिक परिवर्तन भी शीघ्र होते हैं। मिल, कारखाने, कालेज, मन्दिर, शहर, राष्ट्र आदि भी व्यक्ति के विकास क्षेत्र को अधिक विस्तृत बनाते हैं तथा व्यक्तियों को संतोष प्रदान करते हैं। ये समूह भी लोगों की आवश्यकताओं एवं साधन पूर्ति में सहायक होते हैं। इन समूहों के कारण ही व्यक्ति विभिन्न कुशलताएँ सीखता है और विशेषीकरण प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए इन्हीं समूहों के कारण व्यक्ति कुशल डाक्टर, प्रोफेसर, वैज्ञानिक एवं इंजीनियर आदि बनते हैं।

प्राथमिक तथा द्वितीयक समूह में निम्नलिखित अन्तर हैं :-

प्राथमिक समूह	द्वितीयक समूह
1. इसमें आमने-सामने के सम्बन्ध होते हैं।	1. आमने-सामने के सम्बन्ध नहीं होते हैं।
2. यह आकार में छोटे होते हैं।	2. यह आकार में बड़े होते हैं।
3. यह स्थानीय होते हैं।	3. यह विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ समूह है।
4. यह ग्रामीण जीवन में अधिक पाये जाते हैं।	4. यह शहरी जीवन में अधिक पाये जाते हैं।
5. इस समूह के सदस्यों के सम्बन्ध घनिष्ठ होते हैं।	

<p>हैं।</p> <p>6. समूह के सदस्यों के प्रत्यक्ष आमने - सामने के सम्बन्ध वैयक्तिक होते हैं।</p> <p>7. इस प्रकार के समूह के व्यक्तियों के सम्बन्ध वैयक्तिक होते हैं।</p> <p>8. इनमें प्रेम, मित्रता, सहानुभूति, सहयोग आदि अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।</p> <p>9. इसमें स्वाभाविकता पायी जाती है।</p> <p>10. इन समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध स्थायी होते हैं।</p> <p>11. यह सरल समाज के प्रतीक है।</p> <p>12. इसके सदस्यों पर प्राथमिक नियंत्रण सम्भव है।</p>	<p>हैं।</p> <p>5. इन समूहों के सदस्यों में सम्बन्ध अपेक्षाकृत उतने घनिष्ठ नहीं होते हैं।</p> <p>6. इस प्रकार के समूह के सदस्यों में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं।</p> <p>7. इन समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध अवैयक्तिक होते हैं।</p> <p>8. इनमें इन विशेषताओं का अभाव होता है, इसलिए यह समूह 'शीत जगत' कहलाते हैं।</p> <p>9. इनमें अस्वाभाविकता होती है।</p> <p>10. इन समूहों के सम्बन्ध कम स्थायी होते हैं।</p> <p>11. यह जटिल समाज के प्रतीक हैं।</p> <p>12. इसके सदस्यों पर द्वितीयक नियन्त्रण सम्भव है।</p>
---	---

5. **स्थायी एवं अस्थायी समूह-** वह समूह जिनका अस्तित्व दीर्घकाल तक रहता है वह स्थायी समूह कहलाते हैं। और वह समूह जिनका अस्तित्व कम समय के लिए होता है, वह अस्थायी समूह कहलाते हैं। स्थायी समूहों में पारस्परिक सहयोग, त्याग की भावना ही अधिक मात्रा में नहीं पायी जाती हैं वरन् समूह को स्थायी रखने वाली अन्य विशेषताएँ भी पायी जाती हैं। दूसरी ओर अस्थायी समूहों में स्थायी समूहों के विपरीत विशेषताएँ पायी जाती हैं।
6. **आकस्मिक एवं प्रयोजनात्मक समूह** – आकस्मिक समूह वह समूह है जो अचानक और अनचाहे ही बन जाते हैं। दुर्घटना के कारण एकत्रित भीड़ या रेलगाड़ी के डिब्बे की भीड़ इसी प्रकार के समूह के

अन्तर्गत आते हैं। यह समूह अस्थायी होते हैं, परन्तु बहुधा समूह के सदस्यों में सहयोग की भावना पायी जाती है। बहुधा यह समूह संकटकालीन परिस्थितियों से परिस्थितियों से संघर्ष करता है। प्रयोजनात्मक समूह उपरोक्त समूहों के विपरीत समूह है। इस प्रकार के समूह के नाम से ही स्पष्ट है कि समूह का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। इन समूहों का निर्माण कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता है। परन्तु आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार के समूह आवश्यक हों।

7. **संगठित एवं असंगठित समूह** - संगठित समूह निश्चित समूहों के साथ-साथ सहयोग, विश्वास एकता एवं कुछ विशेष नियमों के आधार पर बनते हैं। सदस्यों को नियमों के अनुसार अनुशासन के घेरे में चलना पड़ता है। यह समूह कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बनाये जाते हैं। बहुधा ऐसे समूहों का निर्माण समूह के उत्थान या प्रगति के लिए किया जाता है। दूसरी ओर असंगठित समूहों में संगठित समूहों की अपेक्षा विपरीत विशेषताएँ रखते हैं। इन असंगठित समूहों के सदस्यों में पारस्परिक आकर्षक कम होता है। सिनेमा या क्रिया कार्यक्रम के सन्तुष्ट दर्शक या आन्दोलनकारी लोग इस प्रकार के समूहों के उदाहरण हैं।
8. **गतिशील एवं स्थित समूह**- अपने देश में गतिशील समूह भी पाये जाते हैं। यह गतिशील समूह है- खानाबदोश जत्थे। यह समूह अन्य समूहों की अपेक्षा अधिक सुनियोजित एवं संगठित होते हैं। इन समूहों की अपनी अलग पहचान है। इन समूहों का एक निश्चित स्थान नहीं होता है। एक स्थान पर कुछ समय रहने के बाद यह समूह किसी दूसरे स्थान पर चला जाता है। इस प्रकार के समूह बहुधा गरीबी का शिकार हुआ करते हैं। अनेक जन-जातियाँ एवं कबीले ऐसे हैं जो आज यहाँ पर हैं तो कल अपनी रोटी के लिए या समूह के पालतू जानवरों के चारे के चक्कर में कहीं से कहीं पहुँच जाते हैं। स्थिर समूहों में इन गतिशील समूहों की अपेक्षा विपरीत विशेषताएँ पायी जाती हैं।
9. **सन्दर्भ समूह** - शेरिफ एवं शेरिफ (1968) के अनुसार “सन्दर्भ समूह वह समूह है जिसमें व्यक्ति अपने आपको समूह के अंग के रूप में समझता है, या मनोवैज्ञानिक रूप से अपने को सम्बन्ध रखने की आकांक्षा रखता है। बोलचाल की भाषा में सन्दर्भ समूह वह समूह है जिसके साथ व्यक्ति अपना तादात्म्यकरण करता है या तादात्म्यकरण की आकांक्षा रखता है”।

आज के आधुनिक औद्योगिक युग में व्यक्ति एक समय में कई - कई समूहों का सदस्य रहता है क्योंकि उसके विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति केवल एक या दो समूहों से ही नहीं हो पाती है। चूँकि वह एक समय में अनेक समूहों का सदस्य होता है वह उन अनेक समूहों के सदस्यों के आदर्शों, मूल्यों नियमों एवं उद्देश्यों आदि का पालन नहीं कर पाता है और न ही इन्हें अपने व्यवहार एवं व्यक्तित्व का अंग बना पाता है। जिन सभी समूहों का सर्वाधिक पालन करता है, वह समूह ही सन्दर्भ समूह कहलाता है परन्तु आवश्यक नहीं है मनोवैज्ञानिक

सदस्य भी हो सकता है। उदाहरण के लिए एक मध्यम श्रेणी या श्रमिक वर्ग का एक सदस्य चेतन या अचेतन रूप में अपने आपको एक उच्च वर्ग से सम्बन्धित मान सकता है तथा अपने रहन-सहन और अनुभवों को इसी उच्च वर्ग से सम्बन्धित करता है। ऐसा सदस्य वास्तविक रूप से मध्यम श्रेणी का सदस्य है परन्तु मनोवैज्ञानिक स्तर पर वह उच्च वर्ग का सदस्य है। उच्च वर्ग उसका सन्दर्भ समूह है क्योंकि वह व्यक्ति उच्च वर्ग के विचारों, मूल्यों, आदर्शों एवं मान्यताओं को अपना मानता है। विलासी वर्ग का समाज में अधिक महत्व है क्योंकि धन के कारण इस वर्ग की स्थिति और प्रतिष्ठा अधिक है। साधारण वर्ग के लोग इस श्रेणी तक पहुँचने की केवल कल्पना ही कर सकते हैं। यह ऊपरी दिखावा करके अपने आपको सन्तुष्ट कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में सन्दर्भ समूह व्यक्ति को सन्तोष प्रदान करते हैं।

### भीड़ –

भीड़ व्यक्तियों का वह अस्थायी, शारीरिक रूप से धन, प्रत्यक्ष सम्बन्ध वाला, असंगठित, स्वतः बन जाने वाला समूह है। भीड़ के सदस्यों का ध्यान किया सामान्य विषय या केन्द्र की ओर होता है। इसकी सीमाएँ पारगम्य होती हैं। भीड़ की आवश्यक एवं मौलिक विशेषता यह है कि भीड़ के सदस्य सामान्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक असभ्य होते हैं। उदाहरण के लिए किसी दुर्घटना के समय एकत्रित समूह भीड़ है। भीड़ की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

- a. **अभिस्पन्द (Polarization):** भीड़ में अभिस्पन्दन पाया जाता है अर्थात् भीड़ के सदस्यों का ध्यान एक ध्यान के सामान्य केन्द्र, विषय या विचार की ओर होता है।
- b. **अस्थिरता (Instability):** भीड़ अस्थिर होती है, भीड़ तब तक ही एकत्रित रहती है जब तक कि भीड़ में अभिस्पन्दन रहता है। अभिस्पन्दन समाप्त होते ही भीड़ समाप्त हो जाती है। भीड़ इतनी क्षणिक होती है कि इसके सदस्यों का पता लगाना कठिन हो जाता है।
- c. **असंगठित (Unorganized):** भीड़ के पूर्व निश्चित उद्देश्य नहीं होते हैं। और न ही यह सुनियोजित होती है। वास्तव में भीड़ का न कोई पूर्व निश्चित नेता है और न सदस्य। यदि पूर्व निश्चित नेता या सदस्य हो जाय तो एकत्रित समूह को भीड़ नहीं कहा जायेगा।
- d. **समान संवेग (Common Emotion):** भीड़ के अधिकांश व्यक्तियों के संवेग एक समान होते हैं। वह सदस्य जो भीड़ के मध्य में होते हैं। उनके संवेग एक समान हैं। मध्य के सदस्य की अपेक्षा भीड़ की सीमा के सदस्यों के संवेगों में मात्रा का अन्तर होता है।
- e. **पारस्परिक प्रभाव (Mutual Influence):** भीड़ के व्यक्ति आपस में एक दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। भीड़ के सदस्य दूसरे अन्य सदस्यों को देखकर उत्तेजित होते हैं। एक व्यक्ति दूसरे

को जैसा कार्य और व्यवहार करता देखता है स्वयं भी वैसा ही करने लग जाता है। इस पारस्परिक प्रभाव के कारण उनमें सुझाव ग्रहणशीलता अधिक होती है।

**f. स्थानीय वितरण (Spatial Distribution):** केवल ध्यान आकर्षित करने वाले केन्द्र के चारों ओर भीड़ होती है। भीड़ में आमने-सामने का सम्बन्ध तो नहीं कहेंगे परन्तु एक दूसरे के कन्धे रगड़ने का सम्बन्ध अवश्य पाया जाता है। भीड़ के सदस्य इस प्रकार का व्यवहार केवल एक स्थान विशेष पर ही करते हैं।

**g. सामूहिक शक्ति (Mass Strength):** भीड़ के सदस्य सामूहिक पंक्ति का अनुभव करते हैं। चूँकि भीड़ के सदस्य एक दूसरे के कार्य को देखकर उत्तेजना का अनुभव करते हैं। अतः भीड़ में एकत्रित अधिक संख्या के लोगों को देखकर भीड़ का सदस्य यह आभास कर सकता है कि उसके साथ इतने सारे लोग हैं, दूसरे शब्दों में वह सामूहिक पंक्ति का अनुभव करता है।

**h. श्रोता समूह –**

श्रोता समूह वह समूह है जिससे स्वीकृत प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार ही नहीं होता है वरन् इसका प्रारम्भ और समाप्ति भी औपचारिक होती है। श्रोता समूह के सदस्यों के बीच अन्तःक्रिया निम्न स्तर की होती है। श्रोता समूहों का पूर्व निश्चित उद्देश्य के साथ-साथ समय और स्थान भी निश्चित होता है। उदाहरण के लिए धर्म गुरु के प्रवचन को सुनता हुआ समूह, अध्यापक के व्याख्यान को सुनता हुआ समूह, सिनेमा हाल में बैठे हुए दर्शक आदि किसी न किसी प्रकार के श्रोता समूह हैं। श्रोता समूह की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

- I. समूह का एक पूर्व निश्चित उद्देश्य होता है।
- II. इस समूह का स्थान और समय निश्चित होता है।
- III. श्रोता लोगों के बैठने या श्रवण के समय की एक विशेष स्थिति होती है। श्रोता वक्ता की ओर मुँह करके बैठते हैं। इस समूह में नैतिकता की भावना होती है।
- IV. भीड़ की अपेक्षा बुद्धि का सामान्य स्तर उच्च होता है।

किम्बल यंग के अनुसार श्रोता समूह मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं:

1. सूचना प्राप्त करने वाला समूह
2. अध्यापक का लैक्चर सुनने वाला समूह
3. मनोरंजन प्राप्त करने वाला श्रोता समूह
4. सिनेमा देखने वाला समूह
5. विचार परिवर्तन हेतु एकत्रित श्रोता समूह जैसे कथा सुनने को एकत्रित समूह।

### 10.6 समूह की संरचना

सामाजिक समूह के दो आवश्यक पक्ष होते हैं, जिन्हें संरचना तथा कार्य कहते हैं। अतः इन दोनों पक्षों का अलग-अलग उल्लेख आवश्यक है।

**समूह संरचना** का अर्थ यह देखना है कि किसी समूह में सदस्यों की संख्या कितनी है। उन सदस्यों की व्यक्तिगत प्रभावशीलता कितनी है। उनके बीच सम्बन्ध कैसा है तथा उनके बीच संचार की व्यवस्था कैसी है। समूह की संरचना का अध्ययन आवश्यक इसलिए है कि इसका गहरा प्रभाव समूह के भिन्न-भिन्न कार्यों पर पड़ता है। समूह-संरचना की जटिलता बढ़ने से सदस्यों के व्यवहारों या समूह के कार्यों में भी आवश्यक परिवर्तन होते हैं। समूह - संरचना के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं-

- I. **समूह का आकार-** समूह-संरचना का एक मुख्य तत्व समूह का आकार है। इसका अर्थ यह है कि समूह कितने सदस्यों से संरचित है। किसी समूह में सदस्यों की संख्या कम-से-कम दो और अधिक-से अधिक कुछ भी हो सकती है। अतः समूह के सदस्यों की न्यूनतम संख्या निर्धारित है, परन्तु अधिकतम संख्या निर्धारित या निश्चित नहीं हो। अध्ययनों से पता चलता है कि समूह के आकार के बढ़ने से समूह समग्रता, समूह प्रभावशीलता तथा समूह सम्बद्धता घटती है। अन्य बातें समान रहने पर बड़े समूह की अपेक्षा छोटे समूह के सदस्यों का मनोबल अधिक सबल होता है, जिससे समूह लक्ष्य आसानी से प्राप्त हो जाता है।
- II. **सदस्य संघटन-** इसका अर्थ यह है कि किस प्रकार के सदस्यों से समूह संरचित है। समूहों का आकार समान रहने पर भी सदस्यों के व्यक्तित्व में भिन्नता होने के कारण उनके कार्य भिन्न हो जाते हैं तथा उनका प्रभाव समूह व्यवहार पर भिन्न-भिन्न रूप से पड़ने लगता है। किसी समूह की प्रभावशीलता वास्त में उसके सदस्यों की प्रभावशीलता पर निर्भर करती है। यदि दो समूहों में अलग-अलग पाँच-पाँच सदस्य हों, परन्तु पहले समूह के सदस्य शिक्षित ऊँचे पदों पर आसीन हों तथा दूसरे समूह के सभी या अधिकांश सदस्य अशिक्षित तथा बेरोजगार या निम्न पदों पर कार्यरत हों तो पहला समूह अधिक प्रभावशाली होगा, जिसका कारण समूह का आकार नहीं, बल्कि संघटन होगा।
- III. **पद-अनुक्रम-** संरचनात्मक स्थिरता के दृष्टिकोण से समूहों में भिन्नता पाई जाती है। कुछ समूह ऐसे होते हैं जिनके सदस्यों का पदानुक्रम काफी स्थिर होता है। जैसे - उद्योग आदि औपचारिक समूहों के सदस्यों की भूमिका तथा स्थिति परिभाषित तथा निश्चित होती है। उनके अधिकार तथा कर्तव्य मौखिक या लिखित नियमों एवं अधिनियमों द्वारा निर्धारित होते हैं। इनके आलोक में ही उनके व्यवहारों का निर्धारण होता है। दूसरी ओर कुछ समूह ऐसे होते हैं जिनके सदस्यों का पद अनुक्रम स्थिर नहीं होता है।

उनकी भूमिका तथा स्थिति पूरी तरह परिभाषित तथा निर्धारित होनी होती है। जैसे- मित्र मंडली, खेल-समूह आदि अनौपचारिक समूहों के सदस्यों के व्यवहार नियमों या अधिनियमों के आलोक में सदा निर्धारित नहीं होते हैं। अतः जहाँ औपचारिक समूह के सदस्यों के व्यवहारों के निर्धारण में पदानुक्रम की प्रधानता होती है। वहाँ अनौपचारिक समूह के सदस्यों के व्यवहारों के निर्धारण में उनके व्यक्तित्व - शीलगुणों का अधिक महत्व होता है।

**IV. संचार-जाल-** संचार-जाल के दृष्टिकोण से भी समूहों की संरचना में अन्तर पाया जाता है। संचार का अर्थ वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सूचना प्राप्त की जाती है। अथवा भेजी जाती है। संचार के भिन्न-भिन्न प्रतिरूप या ढाँचे हो सकते हैं। जैसे क्षैतिज संचार, उग्र संचार, मौखिक संचार, लिखित संचार, नीचे की ओर संचार, ऊपर की ओर संचार आदि। छोटे समूह में संचार-जाल सरल होता है। जबकि बड़े समूह में जटिल होता है। छोटे समूह में प्रत्यक्ष संचार पाया जाता है जबकि बड़े समूह जटिल होते हैं। बड़े समूह में अप्रत्यक्ष संचार देखा जाता है। परिवार, मित्र-मंडली, आदि प्राथमिक समूहों में क्षैतिज संचार अधिक पाया जाता है जबकि कार्य-समूह में उग्र संचार अधिक देखा जाता है। इन सबका प्रभाव भिन्न-भिन्न रूपों में सदस्यों के व्यवहारों पर पड़ता है।

**V. बाह्य सामाजिक सन्दर्भ-** भिन्न-भिन्न समूहों की संरचना बाह्य संदर्भ के दृष्टिकोण से भी भिन्न-भिन्न होती है। क्रिया समूह की संरचना ऐसी होती है कि समाज के दूसरे समूहों से उसका सम्बन्ध अधिक विस्तृत एवं गहरा होता है। इसके विपरीत क्रिया समूह का यह सम्बन्ध सीमित तथा सतही होता है। अतः क्रिया समूह का सम्बन्ध कितना अधिक या कम विस्तृत है, इसका प्रभाव सभी सदस्यों पर पड़ता है। क्रेच आदि के अनुसार सामाजिक सन्दर्भ बढ़ने पर अनुपालन बढ़ता है। अर्थात् व्यक्ति समूह दबाव के सामने अधिक झुकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समूहों की संरचना में भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता का गहरा प्रभाव व्यक्ति के व्यवहारों तथा समूह कार्यों पर पड़ता है। जैसे - भारत में कठोर जाति व्यवस्था के कारण सामाजिक पारस्परिक क्रियाएँ दूसरे देशों की तुलना में अधिक जटिल बनती जा रही हैं।

### 10.7 समूह के कार्य

समूहों के कार्यों को बतलाने के पहले यह कह देना आवश्यक है कि क्रिया समूह के कार्य की सफलता या जटिलता उसकी संरचना की सरलता या जटिलता पर निर्भर करती है। यह भी उल्लेखनीय है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के समूहों के स्वरूप में अन्तर होने के कारण उनके कार्यों के स्वरूप में मात्रात्मक अन्तर हो सकता है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए समूह के सामान्य कार्यों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है:-



- I. **आवश्यकताओं की संतुष्टि-** समूह का प्रधान कार्य अपने-अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की संतुष्टि करना है। आवश्यकताएँ दो तरह की होती हैं (क) प्राथमिक आवश्यकताएँ तथा (ख) द्वितीयक आवश्यकताएँ। भोजन, पानी, वस्त्र, मकान, सुरक्षा, आदि की आवश्यकताओं को प्राथमिक आवश्यकता कहते हैं। इसी प्रकार यौन - आवश्यकता को भी प्राथमिक आवश्यकता कहा जाता है। इन आवश्यकताओं का तात्पर्य सम्बन्धन समूह (जैसे परिवार) के द्वारा होती है। द्वितीयक आवश्यकताओं का तात्पर्य सम्बन्धन आवश्यकता, स्वीकृति-आवश्यकता, प्रतिष्ठा आवश्यकता, सम्मान आवश्यकता आदि से है। इन आवश्यकताओं की संतुष्टि प्राथमिक तथा द्वितीयक दानों प्रकार के समूहों द्वारा होती है। भिन्न-भिन्न सदस्यों की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। अतः समूह सदस्यों की अलग-अलग आवश्यकताओं पर भी ध्यान देता है। सत्तावादी समूह की अपेक्षा प्रजातांत्रिक समूह अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति पर अधिक ध्यान देता है। लेकिन इन दोनों प्रकार के समूहों में अधिक प्रभावशाली सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक होती है।
- II. **आधिपत्य-आवश्यकता की संतुष्टि-** समूह के द्वारा व्यक्ति की आधिपत्य आवश्यकता की पूर्ति होती है। सभी व्यक्तियों में दूसरे पर आधिपत्य प्राप्त करने तथा श्रेष्ठ बनने की इच्छा होती है, परन्तु मात्रा का अन्तर होता है। समूह के कुछ सदस्यों में यह आवश्यकता या इच्छा अधिक तीव्र होती है और कुछ में कम तीव्र। जिस सदस्य में यह आवश्यकता अधिक तीव्र होती है वह नेता बनने का प्रयास करता है और अपने प्रयास में सफल बन जाता है तो उसकी यह आवश्यकता पूरी हो जाती है। यदि समूह का निर्माण न हो तो व्यक्ति की इस आवश्यकता की संतुष्टि नेता के रूप में नहीं हो सकेगी। यदि जनता पार्टी का निर्माण नहीं हुआ होता तो श्री मोरारजी देसाई या चौधरी चरण सिंह को भारत के प्रधानमंत्री के रूप में आधिपत्य आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होती। समूह चाहे छोटा हो या बड़ा प्राथमिक हो या द्वितीयक, सत्तावादी हो या प्रजातांत्रिक, सबों के द्वारा कुछ सदस्यों की आधिपत्य आवश्यकता की पूर्ति नेतृत्व की औपचारिक मान्यता का अभाव में भी होती है।
- III. **सम्बन्धन-आवश्यकता की संतुष्टि-** समूह अपने सदस्यों की सम्बन्धन या सम्बद्धता- आवश्यकता की संतुष्टि करता है सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य समाज या समूह में रहना है। यह एक सार्वजनिक प्रेरक है जो प्रत्येक व्यक्ति में रहता है चाहे इसकी मात्रा अधिक हो या कम। लेकिन व्यक्ति समूह में क्यों रहना चाहता है, यह एक जटिल प्रश्न है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति अपनी प्राथमिक तथा/अथवा द्वितीयक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्रिया समूह में रहने के लिए इच्छा करता है लेकिन, शैष्टर के अनुसार इसका कारण चिन्ता है। उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि कम चिन्तित व्यक्ति की तुलना में अधिक चिन्तित व्यक्ति में सम्बद्धता- आवश्यकता अधिक पाई जाती है।

लैम्बर्ट आदि के अनुसार व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा एवं अपने सम्मान की आवश्यकता की संतुष्टि के लिए क्रिया समूह से सम्बद्ध रहना चाहता है।

**IV. नई आवश्यकताओं का निर्माण** - मनुष्य की आवश्यकताएँ स्थिर नहीं होती हैं बल्कि व्यक्ति या वातावरण में परिवर्तन के साथ बदलती तथा विकसित होती रहती हैं समूह - सदस्यता प्राप्त हो जाने के बाद व्यक्ति को नये अनुभव प्राप्त होते हैं जिनके कारण उनमें नई आवश्यकताएँ विकसित होती हैं। समूह सदस्यता प्राप्त हो जाने के बाद जिन नई आवश्यकताओं का विकास होता है उनमें समूह के अस्तित्व को कायम रखने की प्रवृत्ति प्रभावशाली सदस्यों में अधिक प्रबल दीख पड़ती है। कभी-कभी इस प्रयास का परिणाम उल्टा होता है। अधिकांश सदस्यों की इन आवश्यकताओं की समूह द्वारा संतुष्टि नहीं होने पर समूह में विघटन शुरू हो जाता है।

**V. समूह लक्ष्य प्राप्ति-** समूह लक्ष्य को प्राप्ति करना, प्रत्येक समूह का एक महत्वपूर्ण कार्य है। समूह लक्ष्य का अर्थ वह लक्ष्य है जिसमें सभी सदस्यों की रूचि होती है। उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं में भिन्नता होते हुए भी वे इस लक्ष्य के पूरा करने का प्रयास सामूहिक रूप से करते हैं। परिवार एक प्राथमिक समूह है जिसका सामान्य लक्ष्य परिवार कल्याण या परिवार उन्नति है। इसी तरह द्वितीयक समूह का निर्माण एक सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। राजनीतिक समूह, धार्मिक समूह, सामाजिक संगठन, शैक्षिक संस्थान सबके निर्माण के पीछे कोई न कोई सामान्य लक्ष्य होता है जिसको प्राप्त करने का काम समूह करता है इस सम्बन्ध में स्मरण रखना चाहिए कि व्यक्तिगत आवश्यकता तथा समूह लक्ष्य के बीच गहरा सम्बन्ध है। अतः सदस्यों के लक्ष्यों एवं उनकी आवश्यकताओं में परिवर्तन होने से समूह-लक्ष्य में भी परिवर्तन लाना पड़ता है। यदि ऐसा न हो तो समूह का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा।

**VI. समूह विचारधारा का सम्पोषण-** प्रत्येक समूह के अपने मानदण्ड मूल्य विश्वास तथा रीति-रिवाज होते हैं। जिन्हें सिद्धान्त या विचारधारा कहते हैं। इसका प्रभाव समूह के सदस्यों पर समान रूप से पड़ता है। इसलिए उनकी मनोवृत्ति, विचार, व्यवहार आदि में बहुत समानता पाई जाती है। प्रत्येक समूह अपने सिद्धान्त की सुरक्षा तथा इसके सम्पोषण का प्रयास एक सांस्कृतिक सम्पत्ति के रूप में करता है। समूह के इसी कार्य से कारण क्रिया समूह का केन्द्रीय स्वरूप कायम रह पाता है। जैसे - अनेक बाहरी आक्रमणों के होते हुए भी भारतीय हिन्दू समूह का केन्द्रीय स्वरूप आज भी कायम है।

**VII. अनेक समूहों की सदस्यता-** समूह अप्रत्यक्ष रूप से अपने सदस्यों को दूसरे समूह या समूहों के सदस्य बनने के लिए मजबूर करता है। इसके तीन कारण हैं:-

- i. समूह अपने सदस्यों की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता है।

- ii. समूह का कार्यक्षेत्र धीरे-धीरे विशिष्ट होता जाता है और सदस्यों की आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं।
- iii. सदस्यों की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुकूल समूह अपने आप में परिवर्तन नहीं ला पाता है।

इन तीनों कारणों का फल यह होता है कि समूह के सदस्य मजबूरन दूसरे ऐसे समूहों के सदस्य बन जाते हैं जिनसे उनकी शेष आवश्यकताओं की पूर्ति होती है या होने की आशा रहती है। क्रेच आदि के अनुसार समूह का यह कार्य प्रभावशाली सदस्य या नेता की तुलना में साधारण सदस्यों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है।

**VIII. सामाजीकरण का साधन-** व्यक्ति के समाजीकरण में समूह एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य करता है। सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह के प्रतिमान मूल्य रीति- रिवाज आदि के अनुसार व्यवहार करना सीखता है। इसमें प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों समूहों का हाथ होता है लेकिन प्राथमिक समूह का हाथ अधिक होता है। परिवार एक प्राथमिक समूह है जिसका प्रभाव बच्चों के समाजीकरण पर सबसे अधिक पड़ता है। इसके अलावा धार्मिक संगठन, सामाजिक संस्थान, राजनैतिक दल, आदि द्वितीयक समूहों का भी प्रभाव समाजीकरण पर पड़ता है।

इस प्रकार हमने देखा कि समूह के उपर्युक्त कई कार्य हैं। प्रत्येक कार्य अपने आप में महत्वपूर्ण है। फिर भी परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण उनके महत्व में कमी हो सकती है। एक परिस्थिति में जो कार्य अधिक महत्वपूर्ण होता है वही दूसरी परिस्थिति में कम महत्वपूर्ण हो सकता है। इसी प्रकार जो कार्य एक परिस्थिति में कम महत्वपूर्ण है, वह दूसरी परिस्थिति में अधिक महत्वपूर्ण हो जा सकता है।

### 10.8 सारांश

- समूह गतिकी का तात्पर्य समूहों के अन्दर होने वाले परिवर्तनों से तथा इसका सम्बन्ध सामाजिक परिस्थितियों से समूह सदस्यों के बीच पारस्परिक प्रतिक्रिया तथा शक्तियों से है।
- दो या दो से अधिक व्यक्तियों के ऐसे संघात को समूह के नाम से जाना जाता है। जब संघात के व्यक्ति परस्पर अन्तक्रिया के लिए एक दूसरे से जुड़ जाते हैं, आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं तो परस्पर लगाव का अनुभव करते हैं तथा रुझान आस्थाओं एवं अभिवृत्तियों के साथ किसी लक्ष्य या लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।
- मनोवैज्ञानिकों ने समूहों के विभिन्न प्रकार बताये हैं। अन्तःसमूह, बाह्य समूह, प्राथमिक समूह, द्वितीयक समूह, स्थाई एवं अस्थायी समूह, आकस्मिक एवं प्रयोजनात्मक समूह, संगठित एवं असंगठित समूह गतिशील एवं विस्तृत समूह, संदर्भ समूह तथा भीड़ इत्यादि।

- सामाजिक समूह के दो आवश्यक पक्ष होते हैं जिन्हें संरचना तथा कार्य कहते हैं। समूह संरचना के सम्बन्ध में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं। समूह का आकार, सदस्य समूह संघात, पदअदानुक्रम, संचार जाल एवं बाह्य सामाजिक संदर्भ।
- समूह के सामान्य कार्य निम्न हैं- आवश्यकताओं की संतुष्टि, आधिपत्य आवश्यकताओं की संतुष्टि, सम्बन्धन आवश्यकता की संतुष्टि, नई आवश्यकताओं का निर्माण, समूह लक्ष्य प्राप्ति, समूह विचार धारा का समपोषण। अनेक समूहों की सदस्यता तथा सामाजीकरण का प्रत्येक कार्य अपने आप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

### 10.9 तकनीकी पद

1)	संघात	Aggregate
2)	संग्रह	Collection
3)	कार्यात्मक सम्बन्ध	Functional Relationship
4)	स्थायीकरण	Stability
5)	सामूहिक लक्ष्य	Common Goal
6)	भाईचारा	Togetherness
7)	एकात्मा	Solidarity
8)	समूह संगठन	Organization
9)	संचालन	Conduction
10)	अन्तः व्यक्तिगत प्रत्यक्षीकरण	Interpersonal Perception
11)	अन्योन्याश्रित सम्बन्ध	Interdependent Relationship
12)	सदस्य संघटन	Member Composition

10.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. समूह गतिकी का अर्थ है?
  - (क) समूह समग्रता
  - (ख) समूह प्रभाव शीलता
  - (ग) समूह के सदस्यों में होने वाले परिवर्तनों से उत्पन्न ऐसी शक्ति जो समूह के सार्थक रूप प्रभावित करे।
  - (घ) उपरोक्त सभी
2. किसी समूह का सार तत्व है।
  - (क) सदस्यों के बीच विभिन्नता      (ख) सदस्यों के बीच समानता
  - (ग) सदस्यों के बीच अन्तः निर्भरता      (घ) सदस्यों के बीच रागात्मक सम्बन्ध
3. सामाजिक समूह को किस व्यक्ति ने सर्वप्रथम प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह में विभाजित किया।
  - (क) मीड      (ख) कूले      (ग) लेविन      (घ) इन में से कोई नहीं
4. निम्न लिखित कथनों में कौन सा गलत है?
  - (क) समूह के लिए कम से कम दो सदस्यों का होना आवश्यक है।
  - (ख) समूह के लिए एक निश्चित सामान्य लक्ष्य का होना जरूरी है।
  - (ग) समूह के लिए इसके सदस्यों में कार्यात्मक एकता अनिवार्य है।
  - (घ) समूह के लिए सदस्यों में अनुकूल मनोवृत्तियों का होना आवश्यक है।
5. निम्नलिखित कथनों में कौन सा सही है।
  - (क) प्राथमिक समूह सदा अचल समूह होता है।

(ख) संदर्भ समूह सदा द्वितीयक समूह होता है।

(ग) चल समूह के सदस्यों में अचल समूह की सदस्यों की अपेक्षा एकता का भाव अधिक होता है।

(घ) उपरोक्त सभी

6. समूह संरचना का तात्पर्य है?

(क) समूह आकार (ख) समूह प्रभावशीलता (ग) समूह समग्रता (घ) समूह लक्ष्य

7. समूह के अधिकांश सदस्यों द्वारा स्वीकृत लक्ष्य कहलाता है।

(क) समूह आदर्श (ख) समूह सर्वसम्मति (ग) समूह विचार (घ) समूह लक्ष्य

उत्तर : 1. (ग) 2. (ग) 3. (ख) 4. (घ) 5. (ग) 6. (क) 7. (घ)

### 10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डा० अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव: आधुनिक समाज मनोविज्ञान - हर प्रसाद भार्गव आगरा।
- प्रो० लाल बचन त्रिपाठी: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - हर प्रसाद भार्गव आगरा।
- डॉ० मुहम्मद सुलैमान: उच्चतर समाज मनोविज्ञान - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ० आर० एन० सिंह: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
- डॉ० एस०एस० माथुर: समाज मनोविज्ञान - विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

### 10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समूह गतिकी से आप क्या समझते हैं? समूह गतिकीय के अध्ययनों के आशयों पर प्रकाश डालिये।
2. समूह किसे कहते हैं? इसके मुख्य प्रकारों का वर्णन करें?

3. समूह की परिभाषा दें तथा प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह के बीच अन्तर्ों में स्पष्ट करें।
4. समूह की संरचना तथा इसके कार्यों के वर्णन करें ।
5. सामाजिक समूह की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें?
6. संगठित एवं असंगठित समूह के बीच तुलना करें?

## इकाई-11 समूह प्रभावकता व समूह समग्रता:- आशय एवं निर्धारक तत्व (Group Effectiveness and Group Cohesiveness:- Meaning and Determinates)

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 समूह प्रभावशीलता
- 11.4 समूह प्रभावशीलता के निर्धारक
- 11.5 समूह समग्रता का अर्थ
- 11.6 समूह समग्रता के प्रभाव
- 11.7 समूह समग्रता को प्रभावित करने वाले तत्व
- 11.8 सारांश
- 11.9 तकनीकी पद
- 11.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

### 11.1 प्रस्तावना

समाज के निर्माण में समूहों की मुख्य भूमिका होती है। व्यक्ति अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के समूहों की सदस्यता ग्रहण करता है। समूहों के अपने आदर्श मूल्य मानक एवं विचार धाराएं होती हैं। इनका व्यक्ति के व्यवहार पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ता है। महात्मा गाँधी के प्रभाव में अनेक लोगों ने रेशमी और मंहगे वस्त्रों को त्याग दिया तथा वैभव विलास की जीवन शैली का परित्याग कर खादी के कपड़ों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता अभियान में सेनानी बन गये जब कि हिटलर के प्रभाव में आणित यहूदी मौत के घाट उतार दिये गये। इस प्रकार समाज समूह के सदस्यों के व्यवहारों को नियन्त्रित करता है इनमें समूहप्रभावशीलता तथा समूहसमग्रता विचार धारा प्रमुख हैं। इस इकाई में समूहप्रभावशीलता समूहसमग्रता के प्रभाव के सीमित अर्थ के परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया गया है।

### 11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- समूहप्रभावशीलता क्या है।
- समूहप्रभावशीलता के किन कारकों द्वारा प्रभावित होती हैं।
- समूहसमग्रता क्या है?



- समूह- समग्रता का प्रभाव सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर कैसे पड़ता है।
- समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक हैं जिससे समूहसमग्रता बढ़ सके।

### 11.3 समूहप्रभावशीलता

समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने समूह- प्रभावशीलता को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह एक ऐसा जटिल पद है जिससे भिन्न - भिन्न मापदण्डों के रूप में समझा जा सकता है जैसे - कुछ लोगों ने समूहप्रभावशीलता का अर्थ समूह उत्पादकता से लिया है। दूसरे शब्दों में, जिस समूह में सदस्यों द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन ( जैसे प्रतिदिन कितना जूता बनाया जाता है या प्रतिदिन कितनी रोटी तैयार की जाती है।) किया जाता है उसे उतना ही प्रभावशील समूह समझा जाता है कुछ लोगों ने समूहप्रभावशीलता का अर्थ सदस्यों में उत्पन्न संतुष्टि से लिया है जिस समूह के सदस्यों में जितनी अधिक संतुष्टि होती है, उसे उतना अधिक ही प्रभावशील समूह समझा जाता है। कुछ ऐसे भी समाज मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने समूहप्रभावशीलता का अर्थ समूह के सृजनात्मक परिणामों से लिया है। जिस समूह का सृजनात्मक परिणाम जितना ही अधिक होता है उसे उतना ही प्रभावशाली समूह समझा जाता है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि समूह प्रभावशीलता एक बहुविध चर है। एक ही समूह की प्रभावशीलता के बहुत से मापदण्ड होते हैं। एक ही समूह कुछ सदस्यों के लिए प्रभावशील हो सकता है परन्तु दूसरे सदस्यों के लिए प्रभावशील नहीं भी हो सकता है जैसे- किया समूह के जिन सदस्यों का मूल उद्देश्य समूह की उत्पादकता देखना होता है वे उस समूहको प्रभावशील कहेंगे जिसमें उत्पादकता अधिक है परन्तु जिन सदस्यों का मूल उद्देश्य उत्पादकता की ओर ध्यान न देकर कुछ विशेष आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की ओर ध्यान देना होता है। उनके लिए यह समूहप्रभावशील नहीं होगा।

यद्यपि समूहप्रभावशीलता के भिन्न-भिन्न मापदण्डों की व्याख्या समाज मनोवैज्ञानिकों ने की है, फिर भी उन लोगों ने प्रायः समूहप्रभावशीलता को मूलतः दो तरह के मापदण्डों के रूप में ही परिभाषित किया है। वे दो मापदण्ड हैं- समूह उत्पादकता तथा सदस्यों की सन्तुष्टि। अतः निष्कर्ष यह हुआ कि वैसे समूहको प्रभावशील समूहकहा जायेगा जिसकी उत्पादकता सन्तोषजनक होती है तथा जिसके सदस्यों में सन्तुष्टि अधिक होती है। जहाँ तक समूह की उत्पादकता संतोषजनक होगी तथा सदस्यों में सन्तुष्टि अधिक होगी, समूह की प्रभावशीलता भी उतनी अधिक होगी।

### 11.4 समूह प्रभावशीलता के निर्धारक

समूह प्रभावशीलता भिन्न-भिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होती है। कुछ समूह अधिक प्रभावशाली होते हैं। तो कुछ समूह अधिक प्रभावशाली होते हैं तो कुछ कम। इसका कारण यह है कि अधिक प्रभावशाली समूह में कुछ

ऐसे कारक या निर्धारक होते हैं जो कम प्रभावशाली समूह में नहीं होते हैं। कुछ ऐसे ही कारक या निर्धारक जिनसे समूहप्रभावशीलता में मात्रात्मक अन्तर होता है। निम्नांकित है-

- (क) समूहसंरचना से सम्बन्धित कारक
  - (ख) समूह अन्तक्रिया से सम्बन्धित कारक
- इन दोनों तरह के कारकों की व्याख्या निम्नांकित है-

**(क) समूहसंरचना के सम्बन्धित कारक -**

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि समूहप्रभावशीलता पर समूह की संरचना से सम्बन्धित कारकों का प्रभाव काफी पड़ता है। इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा निम्नांकित चार ऐसे कारकों को महत्वपूर्ण बतलाया गया है-

1. **समूह का आकार:-** समूह का आकार से तात्पर्य समूह में सदस्यों की संख्या से होता है। सदस्यों की संख्या कम होने से समूह का आकार छोटा तथा सदस्यों की संख्या अधिक होने से समूह का आकार बड़ा होता है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्टतः पता चलता है कि छोटा समूह बड़ा समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है क्योंकि छोटे समूह में सदस्यों के बीच सन्तुष्टि, समूहसमग्रता तथा समूह उत्पादकता बड़े समूह की अपेक्षा अधिक होती है जैसे - सीशोर (1954) ने अपने अध्ययन में पाया है कि छोटे समूह में बड़े समूह की अपेक्षा समूहसमग्रता अधिक होती है जिससे सदस्यों में सन्तुष्टि भी अधिक होती है। मान तथा बामगाटैल (1952) ने अपने अध्ययन में पाया है कि समूहसमग्रता कम होने से समूह में ऐच्छिक अनुपस्थिति बढ़ती है जो असन्तुष्टि का द्योतक है। स्लेटर (1958) ने भी अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि 5 सदस्यों वाले समूह में 5 से अधिक सदस्यों वाले समूह की अपेक्षा अधिक सन्तुष्टि थी। बड़े समूह के सदस्य अधिक आक्रमणकारी संवेदनशील तथा प्रतियोगी होते देखे गये हैं जिससे ऐसे समूह अधिक प्रभावशाली नहीं हो पाते हैं। इतना ही नहीं कुछ लोगों ने जैसे मेरीऔट ने (1949) ने अपने अध्ययन में यह भी पाया है कि समूह के आकार द्वारा समूह की उत्पादकता भी प्रभावित होती है। इन्होंने इस अध्ययन में पाया कि 10 से कम सदस्यों वाले समूह की उत्पादकता 30 से अधिक सदस्यों वाले समूह की उत्पादकता से 7 प्रतिशत अधिक थी। इसका मतलब यह हुआ कि समूह का आकार तथा समूह उत्पादकता में नकारात्मक सहै- सम्बन्ध है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे कार्टर एवं उनके सहयोगियों ने 1951 अपने अध्ययन में यह पाया है कि बड़े समूह में कुछ ही सदस्य जो सबल होते हैं, भाग ले पाते हैं, परन्तु छोटे समूह में सभी सदस्य खुलकर समूहविचार- विमर्श में भाग ले पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि छोटे समूह के सदस्यों में सन्तुष्टि बड़े समूह के सदस्यों की अपेक्षा अधिक होती है। इन विभिन्न अध्ययनों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि छोटा समूह बड़ा समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होता है।

2. **समूह संघटन:-** समूहप्रभावशीलता पर सिर्फ समूह के आकार का ही नहीं बल्कि समूह के संघटन का भी प्रभाव पड़ता है। समूह के संघटन से तात्पर्य सदस्यों की वैयक्तिक शीलगुणों तथा उनके सदस्यता प्रतिरूप से होता है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सदस्यों में जब कुछ खास-खास शीलगुण होते हैं तो वे प्रभावकारी सदस्य कहलाते हैं तथा साथ ही साथ समूह में प्रभावशीलता भी अधिक होती है। उसी तरह से इन लोगों के अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हो गया है कि एक विशेषतरह की सदस्यता प्रतिरूप रहने पर समूह की प्रभावशीलता अधिक होती है।

हेथौर्न 1963 ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि कुछ व्यवहारपरक शीलगुण जैसे सहैकारिता कार्यकुशलता तथा सूझ आदि के होने पर समूह की उत्पादकता बढ़ती है, अर्थात् समूहप्रभावशाली होता है परन्तु जब सदस्यों में कुछ दूसरे शीलगुण जैसे अभिरूचि तथा सत्ताधारी प्रवृत्ति अधिक होती है तो इससे समूहसमग्रता तथा दोस्ताना संबंधों में कमी आती है और समूह उत्पादकता कम हो जाती है।

सदस्यता प्रतिरूप की दो विमाएँ हैं जिनका प्रभाव समूहप्रभावशीलता पर अधिक पड़ता है-एकरूपता तथा संगतता। समाज मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जब सदस्यों के मूल्यों अभिरूचियों एवं मनोवृत्तियों में एकरूपता या समानता होती है तो उनके द्वारा बनने वाला समूहस्थिर तथा समग्र होता है और सदस्यों में सन्तुष्टि एवं समूह उत्पादकता अधिक होती है। हॉलिंगशेड ने 1949 में अपने अध्ययन में पाया कि हाई स्कूल के लड़कों एवं लड़कियों के जैसे समूह में सन्तुष्टि अधिक थी जिनकी अभिरूचियों एवं मनोवृत्तियों में समानता थी। टरमैन तथा उनके सहयोगियों तथा पेटजेल एवं उनके सहयोगियों ने अपने-अपने अध्ययनों में पाया है कि जब पति-पत्नी की अभिरूचियों एवं मनोवृत्तियों में समानता होती है तो इससे उनका वैवाहिक जीवन अधिक सुखमय होता है। कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि विशमांग समूह में उत्पादकता एकरूप समूह की अपेक्षा अधिक होती है। जैसे हाफमैन ने 1959 में अपने अध्ययन में पाया कि आविश्कारशील समस्याओं के समाधान में विशमांग समूहएकरूप समूह की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ था। परन्तु हॉफमैन ने निष्कर्ष को एक सामान्य निष्कर्ष नहीं माना जा सकता है क्योंकि कैटेल एवं उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन के आधार पर यह साबित कर दिया है कि कुछ खास-खास शीलगुणों में विशमांगता रहने से समूहनिर्णायकता की यथार्थता अधिक होती है तथा कुछ खास-खास शीलगुणों में विशमांगता कम रहने पर समूह निर्णायकता की यथार्थता कम होती है।

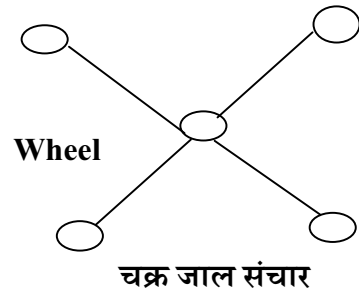
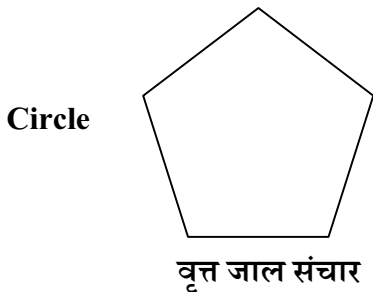
सदस्यता प्रतिरूप की दूसरी विमा संगतता है। समूहसंगत हो सकता है या असंगत। संगत समूह में एक ही केन्द्रीय या महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है तथा इनके सदस्यों की अन्तर वैयक्तिक क्रियाओं में काफी समानता होती है। असंगत समूह में दो या दो से अधिक केन्द्रीय या महत्वपूर्ण व्यक्ति होते हैं जिनकी अभिरूचियाँ एवं मनोवृत्ति भिन्न होती हैं जिसके फलस्वरूप इसके सदस्यों का कुछ उपसमूह भी बन जाता है। शुज ने 1958 में अपने अध्ययन में पाया है कि जब किया सरलतम समस्या का समाधान करना होता है तब तो इन दोनों तरह के समूहों

की उत्पादकता में कोई विशेषअन्तर नहीं आता है। परन्तु जैसे - जैसे समस्या की जटिलता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे संगत समूह की उत्पादकता असंगत समूह की उत्पादकता की अपेक्षा तीव्र होती जाती है।

निष्कर्ष हुआ कि समूहप्रभावशीलता सदस्यों के खास-खास शीलगुणों एवं सदस्यता प्रतिरूप द्वारा भी प्रभावित होती है।

3. **पद श्रृंखला:-** समूहप्रभावशीलता पर पद श्रृंखला का भी प्रभाव पड़ता है। समूह में सदस्यों की एक पद श्रृंखला होती है कुछ सदस्य इस श्रृंखला में ऊँचे पद पर होते हैं। तथ कुछ सदस्य नीचे पद पर होते हैं। नीचे पद के सदस्य ऊँचे पद के सदस्यों के प्रति संचार अधिक करते हैं। थिबौट 1950 तथा केली के द्वारा सन 1951 द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि समूह में पद श्रृंखला द्वारा सदस्यों के बीच संचार प्रभावित होता है जिससे सदस्यों की कार्यकुशलता प्रभावित होती है। हिनकी तथा बेल्स 1953ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि वैसे समूह जिनमें सदस्यों की पद श्रृंखला स्थिर होती है। उन समूहों की अपेक्षा अधिक प्रभावशील होते हैं जिनके सदस्यों की पद श्रृंखला अस्थिर होती है। जब पद श्रृंखला स्थिर होती है। तो सदस्यों में समस्या के सही समाधान से संबंधित वाद-विवाद या मतभेद नहीं होता है और सभी लोग ऊँचे पद के सदस्यों द्वारा व्यक्त किये गये मतों को या उनके द्वारा रखे गये सये समाधान को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। इस तरह से पद श्रृंखला में स्थिरता होने से समूह की प्रभावशीलता में वृद्धि हो जाती है।

4. **संचार प्रणाली:-** समूह की प्रभावशीलता पर समूह की संचार- प्रणाली का भी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः संचार प्रणालियाँ दो प्रकार की होती है जिनका प्रभाव समूह की प्रभावशीलता पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। सामान्यतः संचार प्रणालियाँ दो प्रकार की होती है जिनका प्रभाव समूह की प्रभावशीलता पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। वृत्त जाल संचार तथा चक्र जाल संचार किया समूह में वृत्त जाल संचार के होने पर प्रत्येक सदस्य अपने बायें या दायें बैठे सदस्य के साथ संचार कर सकता है। परन्तु चक्र जाल समूह में किया खास सदस्य के माध्यम से ही अन्य सदस्य आपस में संचार कर सकते हैं। जैसे चित्र 10.1 (ब) में बीच का सदस्य अन्य सदस्यों के साथ सीधे संचार कर सकते हैं परन्तु अन्य सदस्य बीच के सदस्य की सहायता के बिना आपस में बातचीत नहीं कर सकते हैं।



लिभिट ने एक अध्ययन किया जिसमें पॉच-पॉच सदस्यों के कई समूह बनाये गये। कुछ समूह में वृत्त जाल प्रणाली द्वारा संचार किया जा रहा था तथा कुछ समूह में चक्र जाल प्रणाली द्वारा संचार किया जा रहा था। परिणाम में देखा गया कि दी गयी समस्या के समाधान में वृत्त जाल संचार वाले समूहने चक्र जाल वाले समूह की अपेक्षा अधिक तेजी से समस्या का किया। इतना ही नहीं इस तरह के समूहद्वारा समस्या के समाधान में कम से कम त्रुटि भी की गई बाद में 1954 ने अपने अध्ययनों के आधार पर लिभिट के प्रयोगात्मक तथ्य की पुष्टि की है। इन्होंने अपने प्रयोग में पाया कि साधारण समस्याओं के समाधान में चक्र - जाल संचार वाला समूह वृत्त जाल संचार वाले समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशील होता है क्योंकि ऐसी समस्याओं के समाधान में उनके द्वारा कम से कम समय लिया जाता था। परन्तु जटिल समस्याओं के समाधान में वृत्त जाल संचार वाला समूहचक्र जाल संचार वाले समूह की अपेक्षा अधिक आगे रहता था। बाद में कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों जैसे क्रिस्टी 1952, एवं उनके सहयोगियों गिलक्राइस्ट 1955 तथा उनके सहयोगियों ने अपने - अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि जिस संचार प्रणाली में सम्बद्धता जितनी ही अधिक होती है। उस समूह की प्रभावशीलता उतनी ही ज्यादा होती है। यही कारण है कि इन लोगों ने अखिल प्रणाली संचार जाल को जिसमें सम्बद्धता अधिकतम होती है समूहप्रभावशीलता के लिए सबसे उत्तम संचार प्रणाली बतलाया है। इसे कम कौन संचार जाल भी कहा जाता है। अन्य दो तरह के संचार जाल तथा वाई संचार जाल में भी तुलनात्मक रूप से सम्बद्धता कम होती है। इसलिए इन दोनों तरह के संचार जाल में भी समूहप्रभावशीलता कम होती है।

#### (ख) अन्तः क्रिया समूह से सम्बन्धित कारक

समूह की प्रभावशीलता कुछ वैसे मध्यवर्ती चरों द्वारा भी प्रभावित होती है जिसका सम्बन्ध सदस्यों द्वारा की गई अन्तः क्रियाओं से होता है। ऐसे मध्यवर्ती चर तीन हैं - नेतृत्व प्रकार, समूह कार्य प्रेरणा तथा मैत्री सम्बन्ध इन तीनों का वर्णन निम्नांकित है-

1. **नेतृत्व प्रकार-** समूह प्रभावशीलता पर नेतृत्व प्रकार का भी असर पड़ता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि यदि नेता प्रभावशाली होंगे तो स्वभावतः समूहभी प्रभावशाली होगा। मायर तथा सोलेम 1952 ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया कि जिस नेतृत्व में समूह के अन्य सभी सदस्यों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया और साथ-साथ ही जिसमें प्रश्न पूछ कर सामूहिक क्रियाओं को उत्तेजित किया गया ऐसे समूहअन्य दूसरी तरह के नेतृत्व वाले समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशील हो गये। पेल्लज 1956 ने भी अपने अध्ययन में पाया है कि सहभागी नेतृत्व या प्रजातांत्रिक नेतृत्व में समूहप्रभावशीलता निदेशात्मक नेतृत्व में समूहप्रभावशीलता की अपेक्षा अधिक होती है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह भी पता चला है कि नेतृत्व व्यवहार के तीन पहलू ऐसे हैं जिनका समूहप्रभावशीलता पर सीधा असर पड़ता है। वे तीन पहलू हैं- नेता की भूमिका निरीक्षण की संकीर्णता तथा कर्मचारी-

अभिमुखीकरण कहै तथा काज के अनुसार नेतृत्व के ये तीनों पहलू कुछ ऐसे है जिनसे समूह की उत्पादकता सीधे प्रभावित होती है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों की समीक्षा करने के बाद कहै तथा काज इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जिन पर्यवेक्षकों (जो अपने समूह के नेता थे) ने सक्रिय होकर नेतृत्व की बागडोर को संभाला, उनके समूह की उत्पादकता अन्य समूहों की अपेक्षा काफी बढ़ गयी। उसी तरह से जिन पर्यवेक्षकों ने अपने समूह के कार्यों का निरीक्षण काफी कड़ी नजर रख कर किया उनके समूह की उत्पादकता कम हो गयी। कारण कड़ी नजर रख कर निरीक्षण करने पर कर्मचारियों को काम करने की स्वतन्त्रता में बाधा पहुँचती थी। उसी तरह जो पर्यवेक्षक कर्मचारी उन्मुखी थे अर्थात् जो कर्मचारी के कल्याण की बात अधिक सोचते थे उनके समूह की उत्पादकता अन्य पर्यवेक्षकों की अपेक्षा जो मात्र उत्पादन - उन्मुखी थे, अधिक थी। निष्कर्ष यह है कि नेतृत्व के प्रकार द्वारा समूह की उत्पादकता अर्थात् समूह की प्रभावशीलता प्रभावित होती है।

2. **समूह कार्य प्रेरणा-** प्रत्येक समूह का एक लक्ष्य होता है। बहुत हद तक समूह की प्रभावशीलता समूह के सदस्यों में कार्य करके उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेने की प्रेरणा पर निर्भर करती है। वैसी प्रेरणा जितनी ही अधिक होती है समूह की प्रभावशीलता भी सामान्यतः अधिक होती है। डियुटश 1949 ने अपने अध्ययन में पाया कि जब समूह में सहैकारिता की प्रेरणा थी तो उसकी उत्पादकता तथा सदस्यों में सन्तुष्टि काफी अधिक थी। परन्तु जिन समूह के सदस्यों में प्रतियोगिता की प्रेरणा थी, उसके सदस्यों में असन्तोष तथा संघर्ष की भावना अधिक थी। फल.स्वरूप इनकी उत्पादकता भी काफी कम देखी गयी। फोरिजोश 1950 तथा उनके सहयोगियों ने अपने प्रयोग के परिणाम में पाया कि जब समूह के सदस्यों में आत्म-उन्मुखी आवश्यकता अधिक हो जाती है, तो सदस्यों में सन्तोष की मात्रा कम हो जाती है तथा साथ- ही-साथ संघर्ष की भावना तीव्र हो जाती है। इस तरह की आवश्यकता अधिक सबल होने पर सदस्यों का ध्यान समूह के लक्ष्य की ओर कम परन्तु अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की ओर अधिक रहता है। कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने समूह की प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए सदस्यों के समूहलक्ष्य के प्रति अधिक प्रेरित करने की सिफारिश की है। थॉमस 1957 ने अपने अध्ययन में यह देखा कि जब सदस्यों को समूहलक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने में एक दूसरे पर निर्भर बना दिया जाता है और वे लक्ष्य की प्राप्ति की ओर कार्य करने की ओर अग्रसर होते हैं। कोच तथा फ्रेंच 1948 ने अपने अध्ययन में यह पाया कि जब सदस्यों द्वारा स्वयं ही समूह के लक्ष्य का निर्धारण किया जाता है। तो वैसी परिस्थिति में वे उस लक्ष्य को सहर्ष स्वीकार कर उसकी प्राप्ति के लिए प्रेरित हो उठते है। परन्तु यदि समूह का लक्ष्य उनपर नेता या अन्य किसी व्यक्ति द्वारा थोप दिया जाता है तो वे उसकी प्राप्ति की ओर न के बराबर कार्य करने को प्रेरित रहते हैं। स्पष्ट है कि समूहलक्ष्य को निर्धारित करने में सदस्यों की सहभागिता से समूह अधिक प्रभावशाली बनता है।

3. मैत्री सम्बन्ध- समूह के सदस्यों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बढ़ने से सदस्यों में सन्तुष्टि तथा खुशी अधिक हो जाती है परन्तु इससे समूहप्रभावशीलता का बढ़ना आवश्यक नहीं है। समूह की उत्पादकता जो समूहप्रभावशीलता का एक प्रमुख सूचक है पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का प्रभाव सामान्यतः दो तरह का होता है। पहला, मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहने से सदस्यों के बीच संचार में वृद्धि हो जाती है, तथा सहभागिता में किया प्रकार का संकोच नहीं होता है इसका परिणाम यह होता है कि समूह की प्रभावशीलता अधिक बढ़ जाती है दूसरा, अधिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होने से सदस्य समूहलक्ष्य की प्राप्ति की ओर ध्यान कम देकर मात्र सामाजिक क्रियाओं से ही संतुष्टि प्राप्त करना प्रारंभ कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समूह की उत्पादकता कम होती है। दूसरे शब्दों में, यह समूह की प्रभावशीलता में कुछ कमी आ जाती है। इन दोनों तरह के प्रभावों के पक्ष में प्रयोगात्मक सबूत है। वान जेल्स 1952 ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में पाया कि जिस समूह में मैत्रीपूर्ण संबंध अधिक था, उसमें कार्य संतोष अधिक था तथा साथ-ही-साथ समूह की उत्पादकता अधिक थी। हार्सफाल तथा अरेन्सबर्ग 1949 ने अपने अध्ययन में पाया है कि जिस समूह में उत्पादकता तथा कार्यकुशलता अधिक थी उनमें सामाजिक क्रियाएँ कम होती थी। ऊपर के प्रयोगात्मक अध्ययनों से स्पष्ट है कि मैत्रीपूर्ण संबंध द्वारा समूह की उत्पादकता अर्थात् प्रभावशीलता तभी बढ़ती है जब उनके सदस्यों द्वारा समूह के कार्य लक्ष्य को स्वीकार कर दिया जाता है। जब वे इसे स्वीकार नहीं कर पाते हैं तो मैत्रीपूर्ण द्वारा समूह की उत्पादकता अर्थात् प्रभावशीलता तभी बढ़ती है जब उनके सदस्यों द्वारा समूह के कार्य लक्ष्य को स्वीकार कर लिया जाता है। जब वे इसे स्वीकार नहीं कर पाते हैं तो मैत्रीपूर्ण संबंध से समूहप्रभावशीलता नहीं बढ़कर मात्र सामाजिक क्रियाएँ बढ़ती है जब उनके सदस्यों द्वारा समूह के कार्य लक्ष्य को स्वीकार कर लिया जाता है। जब वे इसे स्वीकार नहीं कर पाते हैं तो मैत्रीपूर्ण संबंध से समूहप्रभावशीलता नहीं बढ़कर मात्र सामाजिक क्रियाएँ बढ़ती है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि समूह की प्रभावशीलता अंशतः समूह की संरचना से संबन्धित कारकों द्वारा तथा अंशतः समूह के सदस्यों के बीच होने वाले अन्तःक्रियात्मक कारकों द्वारा निर्धारित होती है।

### 11.5 समूह समग्रता का अर्थ

समग्रता समूह की संरचना का एक प्रमुख विमा मानी गयी है। ऐसे तो समूहसमग्रता को भिन्न - भिन्न अर्थों में लोगों ने प्रयोग किया है परन्तु समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसका प्रयोग एक खास अर्थ में किया है। समूहसमग्रता से तात्पर्य इस बात से होता है कि समूह के सभी सदस्य किस सीमा तक समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं जिस सीमा तक समूह के सदस्य समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं। समूह की समग्रता उतनी ही अधिक समझी जाती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समूहसमग्रता यह बतलाती है कि सदस्यों के लिए समूह कितना आकर्षक है जिस कारण से भी सदस्यों के लिए समूह जितना ही आकर्षक होगा, सदस्य उतना ही समूह



में बने रहना चाहेंगे और तब समूह की समग्रता उतनी ही अधिक होगी फेल्डमैन 1985 के अनुसार “समूहसमग्रता से तात्पर्य उस सीमा से होता है जिस सीमा तक समूह के सदस्यों में सदस्य बने रहने की इच्छा होती है” फेस्टिगर 1950 के अनुसार “समूहसमग्रता उन सभी बलों के परिणामी होता है जो सदस्यों को समूह में रहने के लिए बाध्य करता है”। ऐसी ही अनेक परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें समूहसमग्रता के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त समूहसमग्रता के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं-

- (1) समूह के सदस्यों द्वारा समूह जितना ही अधिक आकर्षक दीख पड़ता है। समूह में समग्रता उतनी ही अधिक होती है।
- (2) समूह में समग्रता अधिक होने से सदस्यों में सन्तोष की भावना अधिक होती है।
- (3) समूह में समग्रता होने पर सदस्यों को समूहलक्ष्य की ओर प्रेरित करने के लिए अधिक प्रयास तथा प्रोत्साहन की जरूरत नहीं पड़ती है।
- (4) समग्र समूह अधिक स्थिर होता है तथा साथ ही साथ इसमें सदस्यों का मनोबल ऊँचा भी होता है।

### 11.6 समूह समग्रता के प्रभाव

समूह- समग्रता का प्रभाव सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर पड़ता है इस संदर्भ में समूहसमग्रता के निम्नलिखित प्रभाव महत्वपूर्ण है।

1. **समूह मनोबल:-** समूहसमग्रता का गहरा प्रभाव समूहमनोबल पर पड़ता है। समूह जिस हद तक आकर्षक होता है, समूह का मनोबल उतना ही अधिक उच्च होता है। समूह के आकर्षक नहीं होने की स्थिति में समूह के लक्ष्य या इसके सदस्य अथवा दोनों अस्वीकृत हो जाते हैं। समूह के प्रति निष्ठता का भाव तथा उत्तरदायित्व का भाव होना घट जाते हैं।
2. **समूह- प्रभावशीलता:-** कोलिंग 1962 ने अपने अध्ययन में पाया कि समग्रता तथा समूहप्रभावशीलता के बीच गहरा सम्बन्ध होता है। क्रेज कचफिल्ड तथा बैलेची 1962 के अनुसार समूहप्रभावशीलता के दो मापदण्ड है (क) समूह- उत्पादकता तथा (ख) सदस्य संतुष्टि।  
जिस समूह की उत्पादकता अधिक होती है तथा इसके साथ-साथ समूह के सदस्यगण संतुष्ट रहते हैं। उस समूहको प्रभावशाली समूहमाना जाता है। समग्र समूह में ये दोनों विशेषताएँ पायी जाती है। ओलमैन 1960 के अध्ययन से भी पता चलता है। कि समूहसमग्रता का सार्थक प्रभाव समूहप्रभावशीलता पर पड़ता है।
3. **अहम् आवेष्टन:-** समूहसमग्रता का प्रभाव अहम् आवेष्टन के रूप में देखा जा सकता है। अहम् आवेष्टन का अर्थ है समूह के साथ आत्मकीकरण का भाव होना, समूह की सफलता की अपनी सफलता तथा समूह की विफलता को अपनी विफलता समझना। लिण्डग्रेन 1979 ने कहा है कि समूह में समग्रता की उच्च मात्रा से



- समूह के सदस्यगण अपने समूह के साथ आत्मीकरण इस हद तक स्थापित कर लेते हैं कि समूह की सफलता या विफलता उनकी अपनी बन जाती है।
4. **अन्यव्यक्ति आकर्षण:-** कई अध्ययनों से पता चलता है कि समूह की उच्च समग्रता की स्थिति में समूह के सदस्यों के बीच आकर्षण बढ़ जाता है बैक 1951, डीयूश 1949, लेवी 1953 आदि ने इस संदर्भ में समूहसमग्रता के कई मानदण्डों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार उच्च समग्रता की स्थिति में -
- (i) समूह के सदस्य एक - दूसरे के प्रति अधिक शिष्ट बन जाते हैं।
  - (ii) वे एक - दूसरे को अच्छी तरह समझने के योग्य बन जाते हैं।
  - (iii) एक - दूसरे से बड़े पैमाने पर प्रभावित होते हैं।
  - (iv) अधिक मित्रभाव विकसित हो जाता है। तथा
  - (v) अपने समूह के मानकों का आन्तरीकरण अधिक संभव होता है।
5. **आंतरिक एवं बाह्य दबाव:-** समूहसमग्रता का प्रभाव आंतरिक दबाव या बाहरी दबाव के रूप में देखा जा सकता है। वह समूह जिस में उच्च समग्रता होती है। उसके सदस्य साथ-साथ रहने में आत्मसंतुष्टि महसूस करते हैं। वे अपने समूह तथा सदस्यों के साथ रहने के लिए आत्मप्रेरित होते हैं दूसरी ओर जिस समूह में निम्न समग्रता होती है, उसके सदस्यों को साथ-साथ रखने के लिए बाहरी दबाव की आवश्यकता होती है। जैसे - समूह से गैरहाजिर रहने या समूह कार्यों में सहभागिता नहीं देने पर सदस्यों को दण्डित किया जाता है। अतः यहाँ सदस्यगण दण्ड के भय के कारण साथ रहते हैं तथा सहभागिता दिखलाते हैं।
- इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समग्रता के प्रभावों को उपर्युक्त रूपों में देखा जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि समूह- समग्रता का आकलन उपर्युक्त कसौटियों के आधार पर किया जा सकता है।

### 11.7 समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले कारक या निर्धारक

समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले कारक या निर्धारक हैं, जिन्हें निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है:-

- 1) **समूह का आकार:-** समूहसमग्रता का एक निर्धारक समूह का आकार है। अध्ययनों से पता चलता है कि बड़े समूह की अपेक्षा छोटे समूह में समग्रता अधिक होती है। एकाकी परिवारों तथा संयुक्त परिवारों पर किये गये अध्ययनों से ज्ञातव्य है कि एकाकी परिवार में समग्रता की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है एकाकी परिवार में माता- पिता तथा बच्चे एक साथ हिल - मिलकर रहते हैं। और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक - दूसरे पर निर्भर करते हैं। परिवार के प्रति निष्ठा का भाव रखते हैं। लेकिन संयुक्त परिवार में ऐसी विशेषताओं का प्रायः अभाव ही रहता है।

- 2) **समूहसंघटक:-** अध्ययनों से पता चलता है कि जो समूह ऐसे सदस्यों से संरचित होता है, जो किया अन्य समूह से सम्बद्ध नहीं होते हैं। तो ऐसे समूह में उच्च समग्रता पायी जाती है। कारण सदस्यों की रूचि केवल उसी समूह तक सीमित होती है दूसरी ओर जो समूह ऐसे सदस्यों से संरचित होता है जो अन्य समूहया समूहों के भी सदस्य होते हैं तो उस समूह में निम्न समग्रता देखी जाती है। कारण ऐसे सदस्यों की रूचियाँ विभाजित होती है और प्रायः प्रतिस्पर्धी भी। कर्टलेविन 1948 ने अपने अध्ययन के आलोक में इस विचार को विधिवत रूप से प्रमाणित किया।
- 3) **समूहनेतृत्व प्रणाली:-** समूहसमग्रता पर समूह के नेतृत्व प्रणाली का गहरा प्रभाव पड़ता है लिपिट तथा हार्डट 1943 ने समूहसमग्रता पर तीन प्रकार की नेतृत्व - प्रणालियों अर्थात् सत्तावादी प्रजातांत्रिक तथा मनमौजी के प्रभावों को समूहसमग्रता पर देखने के लिए एक क्लब के लड़कों पर प्रयोग किया। उनहोने निष्कर्ष के रूप में देखा कि प्रजातांत्रिक नेतृत्व प्रणाली वाला समूहसबसे अधिक समग्र था। कौकेट 1958 ने अपने अध्ययन में पाया की छोटे समूह में सत्तावादी नेतृत्व तथा बड़े समूह में प्रजातांत्रिक नेतृत्व की स्थिति में समग्रता अधिक पायी जाती है।
- 4) **समूहसंचार:-** समूहसमग्रता का एक निर्धारक समूहसंचार है। जिस समूह में प्रभावी संचार की व्यवस्था है, उसमें उच्च समग्रता पायी जाती है। लेकिन जिस समूह में संचार - बाधाएँ अधिक होती है। उसमें निम्न समग्रता पायी जाती है। उदग्र संचार की तुलना में क्षैतिज संचार में समूहसमग्रता अधिक होती है इसी तरह मौखिक संचार की अपेक्षा लिखित संचार की स्थिति में समूहसमग्रता अधिक होती है। गुजको 1964 तथा मैकगैरथ एवं आल्टमैन 1966 ने अध्ययन से प्रमाणित होता है कि समूह के सदस्यों में संचार जितना अधिक प्रभावी होता है। समूहसमग्रता उसी अनुपात में अधिक होती है।
- 5) **समूहलक्ष्य:-** समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले कारकों में समूहलक्ष्य या समूह कार्य भी एक महत्वपूर्ण कारक है जब समूहलक्ष्य या समूह कार्य ऐसा होता है जिसमें समूह के सभी सदस्यों की रूचि लगभग समान होती है। तो समग्रता अधिक पायी जाती है। लेकिन समूहलक्ष्य में सदस्यों की घटती हुई रूचि के साथ समूहसमग्रता घटती जाती है। इसी तरह जिस समूह में वैयक्तिक लक्ष्यों की प्रधानता होती है उसमें निम्न समग्रता पायी जाती है। एरिकसन 1947 के अनुसार वैयक्तिक लक्ष्यों की स्थिति में अहम् तादात्म्य तथा समूहतादात्म्य घट जाता है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव समूहसमग्रता पर पड़ता है।
- 6) **पदानुक्रम:-** समूहसमग्रता पर समूह के सदस्यों के बीच पदानुक्रम का प्रभाव भी आवश्यक रूप से पड़ता है। जिस समूह में पदानुक्रम योग्यता, योगदान, उपलब्धि आदि के अनुकूल होता है, उस समूह में उच्च समग्रता संभावित होती है। इसके विपरीत पदानुक्रम में जब सदस्यों की योग्यता उनकी सेवा या उपलब्धि को नजर अन्दाज कर दिया जाता है। तो सदस्यों में असंतोश एवं विद्रोह का भाव उत्पन्न होता है जिससे

- समूहमनोबल गिर जाता है और समग्रता निम्न बन जाती है। थिबौट 1950 का अध्ययन इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है।
- 7) **समूहमानक संसक्ति:-** बैक 1951 के अनुसार जब सदस्यों में अपने समूह- मानकों के प्रति संसक्ति होती है तो समूहसमग्रता बढ़ जाती है यह संसक्ति जिस हद तक कम होती है, समूहसमग्रता भी उसी अनुपात में घट जाती है। शैष्टर 1951 ने भी कहा है कि समूहमानक के प्रति सदस्यों की संसक्ति से उनमें एकता का भाव बढ़ता है। समूह के प्रति निष्ठा का भाव बढ़ता है तथा सदस्य बने रहने की प्रेरणा सबल बन जाती है। लेकिन इस संसक्ति के अभाव से एकता खंडित होती है, निष्ठा का भाव घटता है तथा सदस्य बने रहने की प्रेरणा कमजोर हो जाती है।
- 8) **सदस्यों के बीच प्रत्यक्षीकृत समानता:-** फीशर 1967 के अध्ययन से पता चलता है कि समूहसमग्रता पर सदस्यों के बीच प्रत्यक्षीकृत समानता का प्रभाव पड़ता है। इस समानता की स्थिति में सदस्यगण अधिक आसानी से एक-दूसरे के निकट महसूस करने लगते हैं तथा एक- दूसरे के प्रति आकर्षित बन जाते हैं। सदस्यों के बीच सामाजिक दूरी घट जाती है और आकर्षण बढ़ जाता है। थिबौट तथा केली के अनुसार आकर्षण का एक मुख्य निर्धारक समानता कारक है। यह समानता जाति सम्प्रदाय, क्षेत्र, भाषा, मूल्य, विश्वास आदि के संदर्भ में देखी जा सकती है।
- 9) **साझेदारी की आवश्यकता लिण्डग्रेन 1979:-** के अनुसार साझेदारी की प्रबल इच्छा की स्थिति में समूहसमग्रता बढ़ जाती है और इसके आभाव में यह घट जाती है। लिण्डग्रेन 1997 ने कहा है कि बाह्य अधिकारी द्वारा आयोजित समूह की समग्रता अपेक्षाकृत कम होती है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण पर ध्यान दे। संघर्ष टीम के सदस्यों का चयन सार्जेन्ट द्वारा अलग-अलग किये जाने के बावजूद उनमें मिल जुलकर अपनी मंजिल हासिल करने की परस्पर इच्छा के कारण टीम की समग्रता उच्च बन जाती है।
- 10) **समूह-सदस्यों की संगतता:-** समूहसमग्रता पर सदस्यों की संगतता अर्थात् दूसरों के साथ मिल -जुलकर रहने की योग्यता का प्रभाव पड़ता है। समूहसदस्यों में यह योग्यता जितनी अधिक होती है समूह उतना ही अधिक समग्र बन जाता है। मूस तथा स्पीजमैन 1962 ने निम्न संगत सदस्यों की अपेक्षा उच्च संगत समूहसदस्यों वाले समूह में अधिक समग्रता पायी लेकिन मैक ग्रेथ 1962 के अनुसार सभी परिस्थितियों में संगतता का प्रभाव समूहसमग्रता पर अनुकूल नहीं पड़ता है।
- इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समूहसमग्रता एक जटिल संप्रत्यय है, जिस पर उपर्युक्त कई कारकों का प्रभाव पड़ता है इसका व्यावहारिक पक्ष यह कि उपर्युक्त विवेचनों के आलोक में विभिन्न कारकों या निर्धारकों को अनुकूल बना कर समूहसमग्रता को बढ़ाया जा सकता है।

### 11.8 सारांश

- समूहप्रभावशीलता एक बहुविमीय चर है फिर भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने इस बात की सहमति दी है कि समूहप्रभावशीलता को मूलतः दो तरह की कसौटियों के आधार पर ही समझना अधिक वैज्ञानिक होगा यह दो मापदण्ड समूह की उत्पादकता तथा सदस्यों की संतुष्टि यदि किया समूह में सदस्यों के बीच काफी संतोश होता है। तथा उस समूह की उत्पादकता अधिक है तो हम निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं वे समूह अधिक प्रभावशाली है।
- समूह की प्रभावशीलता दो तरह के कारकों द्वारा प्रभावित होती है- समूह की संरचना से सम्बन्धित कारक तथा समूह के सदस्यों के बीच हई अन्तः क्रिया से सम्बन्धित कारक समूह की संरचना से सम्बन्धित कारक चार है समूह का आकार, समूह का संघटन पद श्रृंखला तथा संचार प्रणाली।
- समूह की प्रभावशीलता अन्तक्रियात्मक कारकों द्वारा भी प्रभावित होती है। इस में तीन कारक प्रमुख है नेतृत्व प्रकार समूह कार्य प्रेरणा तथा मैत्री सम्बन्ध।
- समूहसमग्रता समूह की संरचना की एक प्रमुख विमा है समूहसमग्रता से तात्पर्य इस बात से होता है कि समूह के सभी सदस्य इस सीमा तक समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं जिस सीमा तक समूह के सदस्यों में बने रहने के लिए वे प्रेरित रहते हैं। समूह की समूहग्रता उतनी अधिक समझी जाती है।
- समूहसमग्रता का कुछ स्पष्ट प्रभाव भी देखने को मिलता है यही कारण है कि एक अधिक समग्र समूह के सदस्यों का व्यवहार एक कम समग्र समूह के सदस्यों के व्यवहारों से भिन्न होता है।
- समाज मनोवैज्ञानिकों ने समूहसमग्रता के अनेक कारक बताये हैं इन कारकों द्वारा समग्रता सीधे प्रभावित होती है। इन कारकों में से प्रमुख कारक है। समूह का आकार, समूहसंघटक समूहनेतृत्व प्राणाली, समूहसंचार, समूहलक्ष्य, पदानुक्रम समूहमानक संसक्ति, सदस्यों के बीच प्रत्यक्षीकृत समानता साझेदारी की आवश्यकता एवं समूह सदस्यों की संगतता।

### 11.9 तकनीकी पद

1) विमा	Dimension
2) अहम आवेष्टन	Ego Involvement
3) समूहसंघटक	Composition of the group
4) पदानुक्रम	Status hierarchy
5) समूहमानक संसक्ति	Adherence to group norm
6) साझेदारी	Association
7) विसमांग समूह	Heterogeneous

8) एक रूप समूह	Homogeneous
9) संगतता	Compatibility
10) आत्मउन्नमुखी आवश्यकता	Self oriented
11) उदग्र संचार	Vertical Communication

### 11.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. समूह का सृजानत्मक परिणाम जितना ही अधिक होता है तो वह समूहप्रभावशाली समूहमाना जाता है।  
(सत्य/असत्य)
  2. समूहप्रभावशीलता एक बहुविध चर नहीं है। (सत्य/असत्य)
  3. समूहप्रभावशीलता पर समूह की संरचना से सम्बन्धित कारकों का प्रभाव पड़ता है। (सत्य/असत्य)
  4. क्या कमकौन संचार जाल समूहप्रभावशीलता की उत्तम संचार प्रणाली है। (सत्य/असत्य)
  5. क्या समग्रता समूह की संरचना का एक प्रमुख विमा नहीं मानी गयी है। (सत्य/असत्य)
  6. क्या समग्र समूह अधिक स्थिर होता है। (सत्य/असत्य) 7.
  - समूहसमग्रता हमेशा एक समान रहती है। (सत्य/असत्य) 8.
  - सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर समूहसमग्रता का प्रभाव पड़ता है। (सत्य/असत्य) 9. समूहसमग्रता समूह के नेता के व्यवहार द्वारा प्रभावित नहीं होती है। (सत्य/असत्य)
  10. समूह की समग्रता का प्रभाव समूह की उत्पादकता पर पड़ता है। (सत्य/असत्य)
- उत्तर : (1) सत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) सत्य (5) असत्य  
(6) सत्य (7) असत्य (8) सत्य (9) असत्य (10) सत्य

### 11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डा० अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव: आधुनिक समाज मनोविज्ञान - हैर प्रसाद भार्गव आगरा।
- प्रो० लाल बचन त्रिपाठी: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - हैर प्रसाद भार्गव आगरा।
- डॉ० मुहम्मद सुलैमान: उच्चतर समाज मनोविज्ञान - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ० आर० एन० सिंह: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
- डॉ० एस०एस० माथुर: समाज मनोविज्ञान - विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समूहप्रभावशीलता की परिभाषा दें ? उन संरचनात्मक कारकों का वर्णन करें जिनसे समूह की प्रभावशीलता प्रभावित होती है ?
2. उन अन्तःक्रियात्मक कारकों का वर्णन करें जिनसे समूह की प्रभावशीलता प्रभावित होती है?
3. समूहसमग्रता क्या है ? समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का वर्णन करें ?
4. समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले अन्तःक्रियात्मक कारकों का वर्णन करें ?
5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये ?
  - (i) समूहप्रभावशीलता
  - (ii) समूहसमग्रता
  - (iii) समूहअन्तःक्रिया से सम्बन्धित कारक
  - (iv) समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले तत्व

---

**इकाई-12 सामाजिक सरलीकरण, जनसंकुलन, सामाजिक श्रमावनयन तथा निवैयक्तता  
(Social Facilitation, Crowding, Social Loafing, Deindividuation)**


---

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 सामाजिक सरलीकरण क्या है
- 12.4 सामाजिक सरलीकरण के सिद्धान्त
  - 12.4.1 प्रणोदन सिद्धान्त
  - 12.4.2 मूल्यांकन आशंका सिद्धान्त
  - 12.4.3 चित्तविच्छेद द्धन्द सिद्धान्त
- 12.5 सामाजिक श्रमावनयन
- 12.6 सामाजिक श्रमावनयन की विशेषताएँ
- 12.7 सामाजिक श्रमावनयन के कारण
- 12.8 सामाजिक श्रमावनयन को कम करने की प्रविधियाँ या उपाय
- 12.9 जनसंकुलन
- 12.10 निवैयक्तता
- 12.11 सारांश
- 12.12 तकनीकी पद
- 12.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

---

**12.1 प्रस्तावना**


---

व्यक्ति के व्यवहार पर समूह का गहरा प्रभाव पड़ता है व्यक्ति जिस समूह का सदस्य होता है। उस समूह के प्रति उसके कुछ कर्तव्य तथा कुछ अधिकार होते हैं व्यक्ति का यह अधिकार है कि वे अपने समूह से अपनी सुरक्षा अपने निर्वाह आदि आवश्यकताओं की पूर्ति की माँग करें इसके साथ - साथ उस का यह कर्तव्य है कि वे वह अपने समूह के मूल्यों व प्रतिमानों विश्वासों तथा मानदण्डों के अनुकूल व्यवहार करें तथा समूह निर्णय को स्वीकार करें। व्यक्ति समूह निर्णय को कभी अपनी इच्छा से स्वीकार करता है तो कभी अपनी इच्छा के विरुद्ध। व्यक्ति अपनी जिन्दगी का अधिक समय साथियों, परिवार के सदस्यों, सहकर्मियों तथा छात्रों आदि के बीच

बिताता है। ऐसे समूह का उनके व्यक्तिगत व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है? प्रस्तुत इकाई में ऐसे प्रभावों का अध्ययन हम चार प्रमुख भागों में विभाजित करेंगे। सामाजिक सरलीकरण, सामाजिक श्रमावनयन, जनसंकुलन, एवं निवैयक्तता।

## 12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- सामाजिक सरलीकरण अर्थात् दूसरों की उपस्थिति मात्र से किया व्यक्ति का व्यवहार किस तरह से प्रभावित होता है।
- सामाजिक श्रमावनयन अर्थात् दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति का कार्य करने का स्तर किस तरह से नीचा हो जाता है।
- सामाजिक श्रमावनयन कि विशेषताएँ तथा इसको कम करने की क्या प्रविधियाँ हैं।
- जनसंकुलन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव जिसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाले समूह प्रभावों का अध्ययन कर सकें।
- निवैयक्तता क्या है जिसमें व्यक्ति अपने आप को समूह में पूर्णतः समावेशित कर लेते हैं।

## 12.3 सामाजिक सरलीकरण

सामाजिक सरलीकरण का अर्थ:- सामाजिक सरलीकरण का अर्थ है दूसरों की उपस्थिति से किया व्यवहार या कार्य को करने में प्रोत्साहन मिलना इसी अर्थ में सामाजिक सरलीकरण को परिभाषित करते हुए बेरोन तथा बिर्ने 2005 ने कहा है “सामाजिक सरलीकरण का तात्पर्य दूसरों की उपस्थिति के परिणामस्वरूप के निष्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव से है”

उदाहरण - प्रायः देखा जाता है कि जब व्यक्ति अकेले में काम करता है जो धीमी गति से कार्य करता है और जब वही व्यक्ति दूसरों के साथ कार्य करता है तो प्रायः तेज गति से काम करता है। कारण, दूसरों की उपस्थिति से व्यक्ति में प्रतियोगिता का भाव उत्पन्न होता है, जिसे वह अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय बन जाता है। इसी प्रकार अकेले में व्यक्ति परोपकारिता अथवा सहायतापरक व्यवहार करने के लिए उतना प्रेरित नहीं होता है। जितना कि दूसरे लोगों की उपस्थिति में प्रेरित होता है। दैनिक जीवन की इन सभी घटनाओं से सामाजिक सरलीकरण का प्रमाण मिलता है।

आनुभविक अध्ययन:- कई आनुभविक अध्ययनों से भी सामाजिक सरलीकरण का समर्थन होता है। ट्रिप्लेट 1897 ने अपने अध्ययन में देखा कि साइकिल चलाने वाला व्यक्ति जब अकेले होता है तो वह धीमी गति से साइकिल चलाता है। इस अध्ययन से सामाजिक सरलीकरण की अभिधारणा का बल मिलता है।



एक दूसरे अध्ययन में देखा गया कि सरल भूल-भुलैया की स्थिति में श्रोतागण की उपस्थिति से निष्पादन में वृद्धि हुई जबकि जटिल भूल-भुलैया की स्थिति में श्रोतागण की उपस्थिति से निष्पादन में हास घटित हुआ।

पेसीन तथा हैसबेण्ड 1933 - ने अपने अध्ययन में पाया कि दूसरे लोगों की उपस्थिति की हालत में गुणा करने के कार्य में प्रयोज्यों ने एकान्त परिस्थिति की अपेक्षा अधिक कठिनाई का अनुभव किया, समय अधिक लगा तथा भूलें अधिक हुई।

निष्कर्ष के रूप में उन्होंने कहा कि सरल कार्य की स्थिति में सामाजिक सरलीकरण घटित होता है जबकि जटिल कार्य की स्थिति में सामाजिक सरलीकरण के विपरीत घटना घटती है।

#### 12.4 सामाजिक सरलीकरण के सिद्धान्त

सामाजिक सरलीकरण एक जटिल सामाजिक घटना है जिसकी व्याख्या के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त विकसित हुए हैं। मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:-

1. प्रणोदन सिद्धान्त
2. मूल्यांकन आशंका सिद्धान्त
3. चित्तविच्छेद द्वन्द्व सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों का संक्षिप्त मूल्यांकन निम्नवत है-

##### 12.4.1 प्रणोदन सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जाजोक (1965) ने किया। उन्होंने इस सिद्धान्त में सामाजिक सरलीकरण की व्याख्या करते हुए बतलाया कि दूसरे लोगों की उपस्थिति का प्रभाव व्यक्ति के निष्पादन पर सदा एक तरह का नहीं होता है। जब व्यक्ति किया विषय पर दूसरे लोगों की उपस्थिति का प्रभाव नकारात्मक रूप से पड़ता है। अतः पहली स्थिति में सामाजिक सरलीकरण तथा दूसरी परिस्थिति में सामाजिक श्रमावनयन की घटना घटित होती है।

हैण्ट तथा हिलेरी 1973 ने अपने अध्ययन में पाया कि दूसरे लोगों की उपस्थिति में छात्रों ने साधारण भूल - भुलैया से संबंधित समस्या का समाधान अपेक्षाकृत कम ही समय में कर लिया जब कि जटिल भूल-भुलैया से सम्बन्धित समस्या का समाधान अपेक्षाकृत अधिक किया।

बेरोन तथा बिर्ने 2005 ने इस सिद्धान्त की समीक्षा करते हुए कहा कि प्रणोदन तथा सामाजिक सरलीकरण के बीच सीधा सम्बन्ध नहीं है। सामाजिक सरलीकरण वास्तव में दूसरे लोगों की उपस्थिति के साथ - साथ कार्य के स्वरूप तथा उसके अर्जन के स्वरूप पर निर्भर करता है। अतः यह सिद्धान्त सामाजिक सरलीकरण की घटना की समुचित व्याख्या करने में केवल आंशिक रूप से सफल है।

**12.4.2 मूल्यांकन आशंका सिद्धान्त -**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कोटरेल 1972 के अध्ययनों पर आधारित है। यह सिद्धान्त सरलीकरण की व्याख्या में दूसरे लोगों की उपस्थिति को गौण मानता है और कार्य या व्यवहार करने वाले व्यक्ति के संज्ञान प्रधान मानता है कि उपस्थित लोग उसके कार्य का मूल्यांकन कर रहे हैं। अतः सामाजिक सरलीकरण पर दूसरे लोगों की उपस्थिति के चेतना से ही अधिक उनके कार्य को अधिक उत्प्रेरित होकर करने लगता है। जिससे सामाजिक सरलीकरण घटित होता है उसके विपरीत जब उस व्यक्ति को दूसरे लोगों की उपस्थिति से मूल्यांकन किए जाने का एहसास नहीं होता है तो सामाजिक सरलीकरण घटित नहीं होता है।

लेकिन यह सिद्धान्त भी सामाजिक सरलीकरण की समुचित व्याख्या करने में पूरी तरह सफल नहीं है। कारण, दूसरों की उपस्थिति से उत्पन्न मूल्यांकन - भाव सामाजिक सरलीकरण का होना आवश्यक अतः यह सिद्धान्त भी सामाजिक सरलीकरण की व्याख्या केवल आंशिक रूप से ही कर पाता है।

**12.4.3 चित्तविच्छेद द्वन्द्व सिद्धान्त -**

इस सिद्धान्त की मुख्य प्रतिपादक बैरोन को माना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक सरलीकरण का आधार दूसरे लोगों की उपस्थिति में किए जाने वाले कार्य के स्वरूप पर निर्भर करता है। जब कार्य सरल होता है तो दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति का कार्य स्तर बढ़ जाता है जबकि जब कार्य जटिल तथा कठिन होता है तो दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति का कार्य-स्तर गिर जाता है इसका कारण यह है कि सहज तथा सरल कार्य की स्थिति में व्यक्ति को प्रणोदन स्तर ऊँचा हो जाता है। क्योंकि वह किया तरह के चित्त विच्छेद द्वन्द्व का अनुभव नहीं करता है दूसरी जटिल तथा कठिन कार्य की स्थिति में दूसरे लोगों की उपस्थिति से चित्तविच्छेद - द्वन्द्व का अनुभव व्यक्ति को अधिक होता है, जिस कारण प्रणोदन-स्तर निम्न बन जाती है और निष्पादन में मात्रात्मक तथा गुणात्मक गिरावट होने लगती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार दूसरे लोगों की उपस्थिति से चित्तविच्छेद - द्वन्द्व के उत्पन्न नहीं समझा जाता है इसके विपरीत जब दूसरे लोगों की उपस्थिति से चित्तविच्छेद - द्वन्द्व के उत्पन्न नहीं होने पर व्यक्ति का कार्य-स्तर ऊँचा हो जाता है जिसको सामाजिक सरलीकरण का प्रभाव समझा जाता है। इसके विपरीत जब दूसरे लोगों की उपस्थितिसे चित्तविच्छेद - द्वन्द्व के उत्पन्न होने पर प्रणोदन स्तर गिर जाता है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक सरलीकरण घटित नहीं होता है।

इस सिद्धान्त का एक मुख्य गुण यह है कि:-

- 1) इसमें कार्य के स्वरूप तथा व्यक्ति के प्रति बल स्तर या चिन्ता स्तर दोनों को सामाजिक सरलीकरण का निर्धारक माना गया है।

- 2) दूसरा गुण यह है कि इसमें चित्तविच्छेद-द्वन्द्व के महत्त्व को भी उजागर किया गया है। प्रबल स्वर या चिन्ता स्तर बढ़ने के बाद भी यदि व्यक्ति द्वन्द्व का षिकार हो जाता है तो सामाजिक सरलीकरण के विपरीत घटित होता है।
- 3) इस सिद्धान्त का तीसरा गुण यह है कि यह सामाजिक सरलीकरण तथा दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों की उपस्थिति के बीच सीधा सम्बन्ध स्वीकार नहीं करता है। कारण, यह सिद्धान्त सामाजिक सरलीकरण की उत्पत्ति में दूसरे लोगों की उपस्थिति के साथ-साथ संबंधित व्यक्ति की अहम पंक्ति के महत्त्व पर भी बल देता है।
- 4) यह सिद्धान्त प्रणोदन के महत्त्व की अपेक्षा करता है।
- 5) इस सिद्धान्त में मूल्यांकन आशंका के महत्त्व की अपेक्षा की गयी है। अतः यह सिद्धान्त भी सभी परिस्थितियों में घटित सामाजिक सरलीकरण की व्याख्या संतोषजनक ढंग से नहीं कर पाता है।

### 12.5 सामाजिक श्रमावनयन

समूह का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर सामाजिक सरलीकरण के साथ-साथ सामाजिक श्रमावनयन के रूप में भी देखी जाता है। जब समूह के सदस्यों की उपस्थिति में व्यक्ति के कार्य करने का स्तर ऊँचा हो जाता है तो इसे सामाजिक सरलीकरण कहा जाता है। इसके विपरीत जब दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति को कार्य करने का स्तर नीचा हो जाता है तो इसे सामाजिक श्रमावनयन कहा जाता है।

बेरोन विर्ने ने सामाजिक श्रमावनयन को परिभाषित करते हुए कहा है सामाजिक श्रमावनयन का तात्पर्य व्यक्ति के कार्य करने के प्रेरणा तथा प्रयास के उस हास से है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत रूप से अकेले या स्वतंत्र सहकर्ताओं के रूप में कार्य करने की अपेक्षा समूह में सामूहिक रूप से कार्य करने पर घटित होता है। इस परिभाषा के आलोक में सामाजिक श्रमावनयन के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का पता चलता है-

1. सामाजिक श्रमावनयन की घटना तब घटती है जबकि व्यक्ति समूह में सामूहिक रूप से कार्य करता होता है।
2. सामाजिक श्रमावनयन की घटना अकेले में काम करते समय अथवा स्वतंत्रता सहकर्ताओं के साथ कार्य करते समय घटित नहीं होती है।
3. जब व्यक्ति समूह में कार्य करता होता है तो उसके कार्य करने की प्रेरणा एवं प्रयास में अकेले कार्य करने या स्वतंत्र सहकर्ताओं के साथ करने की अपेक्षा हास घटित होता है।

### 12.6 सामाजिक श्रमावनयन की विशेषताएँ

(1) सम्मिलित सामूहिक क्रिया- सामाजिक श्रमावनयन की एक विशेषता यह है कि इसका संबंध सम्मिलित सामूहिक क्रिया से होता है। दूसरे शब्दों में सामाजिक श्रमावनयनके घटित होने के लिए सम्मिलित सामूहिक

क्रिया का होना अनिवार्य है। सम्मिलित सामूहिक क्रिया का अर्थ है वह क्रिया या का होना अनिवार्य है। सम्मिलित सामूहिक क्रिया का अर्थ है वह क्रिया या कार्य जिसमें समूह के सभी सदस्य अपने आप को सम्मिलित समझते हों।

(2) **वैयक्तिक प्रयास हास**– सामाजिक श्रमावनयन की एक मुख्य विशेषता वैयक्तिक प्रयास का हास है। समूहपरिस्थिति में प्रत्येक सदस्य का प्रेरणा स्तर गिर जाता है, जिस कारण उसका व्यक्तिगत कार्य-स्तर निम्न बन जाता है क्योंकि अन्य लोगों की उपस्थिति में सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने का सामाजिक दबाव कमजोर हो जाता है।

(3) **निवैयक्तिता**– सामाजिक श्रमावनयन की एक विशेषता है कि इसमें व्यक्ति अपनी वैयक्तिक खो देता है। अकेले में कार्य करते समय उसे अपनी वैयक्तिक पहचान की जागरूकता रहती है, परन्तु समूहपरिस्थिति में यह जागरूकता ढीला पड़ जाता है।

(4) **वैयक्तिक उत्तरदायित्व की कमी**– सामाजिक श्रमावनयन की एक विशेषता यह है कि समूह का प्रत्येक सदस्य अपने दायित्व के प्रति ढीला पड़ जाता है। अकेलापन में वह अपने आप को किया कार्य की सफलता या विफलता का उत्तरदायी मानता है जब कि समूहपरिस्थिति में यह उत्तरदायित्व ढीला पड़ जाता है।

(5) **वचनबद्धता हास**– सामाजिक श्रमावनयन की एक विशेषता सदस्य की वचन बद्धता में हास है। इसी हास के कारण समूहपरिस्थिति में प्रत्येक सदस्य समूहलक्ष्य के प्रति ढीला पड़ता है। जिससे प्रत्येक क वैयक्तिक निष्पादन में हास होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक श्रमावनयन की कई विशेषताएँ हैं।

### 12.7 सामाजिक श्रमावनयन के कारण

प्रश्न है कि सामाजिक श्रमावनयन की घटना क्यों घटती है ? व्यक्ति का निष्पादन समूह परिस्थिति में क्यों घट जाता है। इस संदर्भ में किए गए अध्ययनों से निम्नलिखित कारणों का संकेत मिलता है।

(1) **विभाजित उत्तरदायित्व का भाव**– सामाजिक श्रमावनयन का एक मुख्य कारण सदस्यों में समूहलक्ष्य के प्रति विभाजित उत्तर दायित्व का भाव है। प्रत्येक सदस्य अपने समूह के लक्ष्य के प्रति अपने आप को पूर्णतः उत्तरदायी नहीं समझता है जबकि अकेले कार्य करते समय वह अपने आप को पूर्णतः उत्तरदायी समझता है जब कि अकेले कार्य करते समय वह अपने आप को पूर्णतः उत्तरदायी समझता है समूह परिस्थिति में इसी विभाजित उत्तरदायित्व के कारण प्रत्येक सदस्य का प्रेरणा स्तर तथा निष्पादन स्तर गिर जाता है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक श्रमावनयन घटित होता है।

- (2) **निम्न प्रेरणात्मक स्तर**– सामाजिक श्रमावनयन का यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है कि जब व्यक्ति अकेला काम करता होता है तो उसका प्रेरणात्मक स्तर ऊँचा होता है, क्योंकि अच्छे निष्पादन का पूरा श्रेय उसे ही मिलता है। दूसरी ओर समूह परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरणात्मक स्तर निम्न बन जाता है, क्योंकि उसे इस बात का एहसास रहता है कि अच्छे निष्पादन या परिणाम का श्रेय व्यक्तिगत रूप से उसे नहीं मिलेगा। फलतः उसका व्यक्तिगत कार्य स्तर गिर जाता है।
- (3) **व्यक्तिगत हानि रहित**– सामाजिक रमावनयन का एक कारण यह भी है कि समूह परिस्थिति में होने पर व्यक्ति को इस बात का भय नहीं रहता है कि समूह निष्पादन के असंतोषजनक होने की स्थिति में उसे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माना जायगा या इसके लिए उसे दण्डित किया जायेगा इसलिए वह अधिक प्रयास नहीं करता है। फलतः कार्य स्तर निम्न बन जाता है। दूसरी ओर अकेले कार्य करते होने पर उसे इस बात का बोध रहता है कि निष्पादन के कम होने पर उसे हानि हो सकती है। इसलिए वह अपने कार्य के प्रति सदा प्रेरित एवं सक्रिय रहता है।
- (4) **दूसरों का प्रत्यक्षण**– जब समूह का कोई सदस्य उस समूह के दूसरे सदस्य या सदस्यों का प्रत्यक्षण करता है और यह पाता है कि दूसरे लोग कम योग्य हैं अथवा योग्य होने पर भी पूरे लगन के साथ काम नहीं करते हैं तो इसका प्रतिकूल प्रभाव उस सदस्य पर पड़ता है और भी अपने दायित्व के प्रति ढीला पड़ जाता है जिससे उसका व्यक्तिगत निष्पादन घट जाता है।
- (5) **वैयक्तिक उत्तरदायित्व का अभाव**– सामाजिक श्रमावनयन का एक मूल कारण व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का अभाव है। समूह का प्रत्येक सदस्य यह महसूस करता है कि समूह के अच्छी या बुरी उपलब्धि का उत्तरदायी उसे नहीं माना जा सकता है। इसलिए अपने परिणाम के इस ज्ञान से सदस्य का व्यक्तिगत प्रेरणा स्तर गिर जाता है। और समूहपरिस्थिति में होने वाला निष्पादन - स्तर अकेले में होने वाले निष्पादन की तुलना में गिर जाता है।

## 12.8 सामाजिक रमावनयन को कम करने की प्रविधियाँ या उपाय

सामाजिक श्रमावनयन को कम करने के लिनमनलिखित उपाय या विधियाँ हैं-

- 1) **समूहलक्ष्य के प्रति प्रत्येक सदस्य के प्रयास की पहचान** - सामाजिक रमावनयन को कम करने का एक उपाय यह है कि समूहलक्ष्य के प्रति प्रत्येक सदस्य द्वारा किए प्रयास की पहचान की जा सके। ऐसा होने पर समूहपरिस्थिति में थी प्रत्येक सदस्य अपने दायित्व को निभाने के लिए पूरी तरह सक्रिय एवं प्रेरित रहेगा, जिस तरह वह अकेले में कार्य करते समय रहता है ऐसी हालत में सामाजिक रमावनयन बहुत हद तक कम को जाता है। इस दिशा में किए गए प्रयोगों से भी इसका प्रमाण मिलता है।

- 2) समूह कार्य को चुनौतीपूर्ण बनाना - सामाजिक श्रमावनयन को कम करने का एक उपाय यह है कि समूह कार्य को यथासंभव चुनौतीपूर्ण बना दिया जाए। ऐसी स्थिति में समूह का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने तौर पर अधिक सक्रिय होकर कार्य करने के लिए उत्प्रेरित होता रहेगा। इसका परिणाम यह होगा कि सामाजिक रमावनयन बहुत अंशों तक कम हो जायेगा। इस संदर्भ में जैकसन तथा हारकिंस का अध्ययन इस बात का साक्षी है कि समूह कार्य को चुनौतीपूर्ण बना देते पर सामाजिक श्रमावनयन में भारी कमी आ जाती है।
- 3) वैयक्तिक उत्तरदायित्व के प्रति बोध - सामाजिक श्रमावनयन को कम करने की एक कारगर विधि यह है कि समूह के सदस्यों को उपयुक्त माध्यम से अपने वैयक्तिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक बनाया जाए। अध्ययनों से पता चलता है कि जब समूह के सदस्य अपने वैयक्तिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक रहते हैं तो सामाजिक श्रमावनयन में स्वतः भारी कमी आ जाती है।
- 4) सामान्य लक्ष्य के प्रति वचनबद्धता - सामाजिक श्रमावनयन को कम करने का एक उपाय यह है कि समूह के प्रत्येक सदस्य का सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रति वचनबद्ध बनाने का प्रयास किया जाए। जानकारों के अध्ययन से प्रमाणित होता है कि समूह के सदस्य जिस हद तक अपने लक्ष्य के प्रति वचनबद्ध रहते हैं, उनमें सामाजिक श्रमावनयन उसी हद तक कम होता है।

कारो एवं विलियम्स ने अपने अध्ययनों के आलेक में निष्कर्ष के रूप में कहा है कि सामाजिक रमावनयन निम्नलिखित परिस्थिति में बिलकुल दुर्बल बन जाता है :-

- i. जब लोग बड़े समूह की अपेक्षा छोटे समूह में काम करते हैं।
- ii. जब वे ऐसे कार्यों को करते हैं जो तात्त्विक रूप से रोजक या उनके लिए महत्वपूर्ण होते हैं।
- iii. जब वे मित्रों, टीम - साथियों तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ काम करते हैं।
- iv. जब वे महसूस करते हैं कि उनका योगदान अपूर्व या महत्वपूर्ण है।
- v. जब वे सहसूस करते हैं कि उनके साथ काम करने वाले बहुत खराब काम कर रहे हैं।
- vi. जब वे देखते हैं कि समूह उत्पाद के लिए उनका योगदान अपूर्व तथा महत्वपूर्ण है।
- vii. जब वे ऐसी संस्कृति से सम्बद्ध होते हैं जिसमें समूह कार्य की अपेक्षा वैयक्तिक कार्य को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

## 12.9 जनसंकुलन

जनसंकुलन का अर्थ:- जनसंकुलन एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है जिसके माध्यम से समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाले समूह प्रभावों का अध्ययन किया गया है। सामान्यतः जनसंकुलन से तात्पर्य कम जगह में अधिक लोगों के एकत्रित हो जाने से उत्पन्न स्थिति से होता है स्पष्टतः जगह तथा व्यक्तियों की संख्या के साथ जनसंकुलन को यहाँ जोड़ा गया है। परंतु वास्तविकता यह है कि जनसंकुलन की वैज्ञानिक परिभाषा में

जगह तथा व्यक्तियों की संख्या को महत्त्व नहीं दिया जाता है। व्यक्ति एक बस में होने पर जनसंकुलन से की वैज्ञानिक परिभाषा में जगह तथा व्यक्तियों की संख्या को महत्त्व नहीं दिया जाता है। व्यक्ति एक बस में होने पर जनसंकुलन का अनुभव कर सकता है परंतु बस के जगह के बराबर वाले क्रिया कमे मर्ते सुवयवस्थित की गयी पार्टी में ऐसा अनुभव नहीं कर सकता है। उसी तरह से व्यक्ति क्रिया सटेडियम में बैठे 50,000 हजार व्यक्तियों के बीच होने पर भी जनसंकुलन का अनुभव नहीं कर सकता है अगर उस स्टेडियम में दो लाख लोगों की बैठने की क्षमता है इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है जनसंकुलन सा सही परिभाषा में जगह तथा लोगों की संख्या का महत्त्व नहीं होता है। सटोकोल्स का मत है कि जनसंकुलन को सही अर्थ में समझने के लिए यह आवश्यक है कि उपलब्ध जगह तथा व्यक्तियों की संख्या दोनों की प्रति व्यक्ति की मानव

वैज्ञानिक अनुभूति को जानना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में तब जनसंकुलन तथा उसे संबंधित पद घनत्व के अंतर को समझना अति आवश्यक है घनत्व से तात्पर्य परिस्थिति के भौतिक एवं स्थानिक पहलुओं से होता है अर्थात् प्रति स्थानिक इकाई में व्यक्तियों की संख्या से होती है। प्रति स्थानिक इकाई व्यक्तियों की संख्या जितनी ही अधिक होगी, घनत्व उतना ही अधिक होगा। जनसंकुलन से तात्पर्य व्यक्ति की संख्या के बारे में सोचना है। दूसरे शब्दों में जनसंकुलन प्रति व्यक्ति उपलब्ध स्थान को छोटा या कम समझने से होता है। यह व्यक्ति का एक ऐसी मेनोवैज्ञानिक अवस्था है जो घनत्व से सीधे साहचर्यित हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है अजसंकुलन की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषा इस प्रकार दी गयी है।

स्टोकोल्स:- के अनुसार स्थानिक सामाजिक एवं व्यक्तिगत कारकों की अन्तः क्रियाओं से उत्पन्न अभिप्रेरणात्मक अवस्था को जनसंकुलन कहा जाता है।

वर्केल तथा कूपर के अनुसार “ जनसंकुलन व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक या आत्मगत कारकों से होता है- किसी विशेषस्थान में व्यक्तियों की दी गयी संख्याओं को व्यक्ति किस तरह प्रत्यक्षण करता है।”

फैल्डमैन के अनुसार:- जनसंकुलन से तात्पर्य एक परिस्थिति में उत्पन्न मनोवैज्ञानिक या आत्मगत कारकों से होता है। क्रिया विशेषस्थान में व्यक्तियों की दी गयी संख्याओं को व्यक्ति किस तरह प्रत्यक्षण करता है।

इन परिभाषाओं के विश्लेषण से हमें जनसंकुलन के स्वरूप के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं-

- 1) जनसंकुलन का संबंध व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक अनुभूति से होता है न कि परिस्थिति के भौतिक एवं स्थानिक हालातों से व्यक्ति क्रिया संगीत प्रोग्राम को देख रह एक लाख जनसमूह के बीच होकर भी जनसंकुलन का अनुभव नहीं कर सकता है परंतु पुस्तकालय में अगल-बगल में बैठे तीन- चार आदमियों की उपस्थिति से ही जनसंकुलन का अनुभव कर सकता है। जनसंकुलन एक नकारात्मक मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया है क्योंकि ऐसी अनुभूति तनाव उत्पन्न करने वाली होती है।
- 2) जनसंकुलन घनत्व से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है।

- 3) जनसंकुलन में व्यक्ति उपलब्ध स्थान में उपस्थित व्यक्तियों की संख्या का विशेषदंग से प्रत्यक्षण करता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने वैसी परिस्थितियों का विशेषरूप से अध्ययन किया है जिसमें मानव घनत्व अधिक था। इन लोगों का सामान्य निष्कर्ष यह रहा है कि ऐसी परिस्थिति व्यक्ति में उत्तेजना उत्पन्न करती है। मनोवैज्ञानिकों ने यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है ऐसी परिस्थिति में उत्तेजित होने का परिणाम क्या होता है ? इन प्रश्न के दो उत्तर यह है कि घनत्व व्यक्ति में मौजूद प्रवृत्ति चाहे उच्छी हो या बुरी, उसे तीव्र कर देता है तथा दूसरा उत्तर यह है कि घनत्व का प्रभाव अधिकतर नकारात्मक ही होता है। इन दोनों उत्तरों को हम अलग-अलग अनुच्छेद में वर्णन करेंगे।
- (i) **घनत्व - तीव्रता:-** घनत्व - तीव्रता नियम के अनुसार जनसंख्या या सामाजिक घनत्व में वृद्धि होने से उस परिस्थिति के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया में वृद्धि होती है इस नियम के मुख्य समर्थक फ्रीडमैन है इनका मत है कि अगर व्यक्ति की प्रतिक्रिया जनसंख्या या सामाजिक घनत्व के प्रति पहले से धनात्मक होती है, ऐसी घनत्व से उसमें सकारात्मक अनुक्रिया की संख्या में वृद्धि हो जाएगी या ऐसी अनुक्रियाएँ और तीव्र हो जाएगी। दूसरे तरफ यदि व्यक्ति की प्रतिक्रिया जनसंख्या या सामाजिक घनत्व के प्रति पहले से नकारात्मक है, तो ऐसी घनत्व में वृद्धि होने से व्यक्ति के नकारात्मक अनुक्रियाएँ और तीव्र हो जाएगी। यही कारण है कि जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छा नहीं रहने पर भी अपने बच्चों के साथ सर्कस देखने जाता है तो वहाँ एकत्रित लोगों की संख्या में वृद्धि होने से घनत्व पहले से धनात्मक होती है। परन्तु वहाँ वढती भीड़ से उस व्यक्ति में नकारात्मक अनुक्रियाएँ पहले से और भी तीव्र हो जाएँगी क्योंकि उसकी अपनी इच्छा सर्कस देखने का नहीं था। कई प्रयोगों से भी घनत्व - तीव्रता नियम की संपुष्टि हो पायी है स्किफेनवाऊर तथा स्क्रियाभो तथा स्ट्रौम्स एवं थामस ने अपने - अपने अध्ययनों में पाया कि ऐसे लोग जिनमें आप में दोस्ताना संबंध था, जब एक - दूसरे के प्रति पहले से अधिक अप्रसन्नता व्यक्त करते पाये गए। फ्रीडमैन तथा उनके सहयोगियों ने भी अपने प्रयोग में उक्त तथ्य का समर्थन किया है इस तरह से घनत्व - तीव्रता अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरे लोगों की उपस्थिति से व्यक्ति की वर्तमान अनुक्रियाएँ तीव्र हो जाती है इभान्स ने भी इस तथ्य को अपने प्रयोग से समर्थन प्रदान किया है।
- (ii) **घनत्व प्रभाव:-** घनत्व प्रभाव अधिकतर नकारात्मक होते हैं। जनसंख्या घनत्व या सामाजिक घनत्व के बारे में समाज मनोविज्ञानिकों के बीच दूसरी विचारधारा यह है कि सामाजिक घनत्व सिर्फ उत्तेजन ही उत्पन्न नहीं करता है। बल्कि यह तनाव भी उत्पन्न करता है अर्थात् इसका प्रभाव नकारात्मक भी होता है इपस्टीन तथा उनके सहयोगियों द्वारा किय गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि सामाजिक घनत्व में वृद्धि होने से व्यक्ति व्यक्तिगत स्थान पर अतिक्रमण प्रतिबंधित व्यवहार तथा उददीपन अतिभार आदि जैसे नकारात्मक अनुभूतियाँ होती है जिनका सपष्टतः नकारात्मक परिणाम होता है। इन परिणाम



व्यक्तिगत नियंत्रण में कमी होना है जिससे व्यक्ति में कुंठा तनाव तथा अन्य घातक अनुभूतियाँ होती हैं। स्पष्ट हुआ कि घनत्व में वृद्धि का प्रभाव अधिकतर नकारात्मक ही होते हैं। इस तथ्य के समर्थन में मनुष्यों तथा पशुओं दोनों पर प्रयोग किये गए हैं तथा उनसे प्राप्त साक्ष्य के आधार पर घटना की संपुष्टि की गयी है। कालहोन 1962 तथा क्रिष्चियन 1960 तथा उनके सहयोगियों ने चूहों तथा हैरिणों पर अध्ययन किये जिसमें यह पाया गया कि जब इन पशुओं को एक सीमित वातावरण में एक साथ रहने के लिए बाध्य किया गया तो उनमें तनावपूर्ण व्यवहार अधिक होते देखे गए। इन लोगों ने अपने इस अध्ययन में देखा कि ऐसी परिस्थिति में पशुओं में असामान्य लैंगिक व्यवहार, उग्र तथा मृत्यु दर में वृद्धि आदि स्पष्ट रूप से पाये गये। कुछ इसी तरह के सबूत मनुष्यों के अध्ययन में भी देखा गया। जैसे - क्रिमेयर ने अपने अध्ययन में पाया कि ऐसे शहरी क्षेत्र जिसमें जनसंख्या का घनत्व अधिक था, उसके वासियों में अपराध की प्रवृत्ति तथा सांवेगिक व्यथा अधिक थी। रोडिन 1978 ने अपने अध्ययन में पाया कि ऐसे बच्चे जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होती है, उनमें व्यक्तिगत नियंत्रण को दृढ़तापूर्वक व्यक्त नहीं कर पाते हैं। मिलग्राम तथा न्यमैन 1977 तथा मैककारुले 1977 ने ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की तुलना (कम जनसंख्या घनत्व) शहरी क्षेत्रों के लोगों (अधिक जनसंख्या घनत्व) से किया और पाया कि शहरी क्षेत्र के लोगों में क्रिया अपरिचित से हाथ मिलाने की प्रवृत्ति अगल-बगल से गुजरने वाले व्यक्तियों से सीधा नेत्र सम्पर्क स्थापित कर बातचीत करने की प्रवृत्ति, तथा जरूरत पड़ने पर दूसरे लोगों को मदद करने की भी प्रवृत्ति कम होती है। पालुस, मैककेन तथा कौक्स 1985 ने कद जैसे वातावरण के सामाजिक घनत्व का व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है। इन लोगों ने कद रिकार्ड का विश्लेषण किया तो पाया कि जैसे - जैसे कद में व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होती गयी, कैदियों में उच्च रक्तचाप, तरह-तरह की बिमारियाँ, आत्महत्या की प्रवृत्ति, उच्च मृत्यु दर तथा अनुशासन से संबंधित समस्याओं में वृद्धि होती गयी। कुछ अध्ययन कालेज छात्रों को रहने के लिए बाध्य किया जाता है तो प्रत्येक छात्र कमरे की क्रियाओं पर व्यक्तिगत नियंत्रण में कमी का अनुभव करते हैं इतना ही नहीं कार्लिन 1979 तथा ग्लासमैन 1978 ने तो अपने-अपने अध्ययन से तथ्य की भी संपुष्टि किया है कि जब एक ही कमरे में तीन छात्र एक साथ रहते हैं तो प्रत्येक को परीक्षा में निम्न उपलब्धि हासिल होती है।

उक्त अध्ययनों के आलोक में हम इस अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सामाजिक घनत्व में वृद्धि का प्रभाव नकारात्मक ही होता है क्योंकि यह न केवल मनुष्यों में बल्कि पशुओं में भी नकारात्मक अनुभूतियाँ उत्पन्न करता है।

### 12.10 निवैयक्तता

वैयक्तिक व्यवहार पर समूह का एक ऐसा भी प्रभाव पड़ता है जिसमें व्यक्ति अपनी वैयक्तिकता खो देता है क्योंकि आत्म-अवगतता लगभग समाप्त हो जाती है और वह अपने आप को समूह में पूर्णतः समावेशित कर लेता है। इस स्थिति को फेस्टिगर, पेपीटोन तथा नयूकाम्ब 1952 ने निर्व्यंशिकरण की संज्ञा दिया है। उसकी एक उत्तम परिभाषा फिशर 1982 “ने इस प्रकार दी है निवैयक्तता एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें समूह में होने पर भी व्यक्ति को व्यक्ति विशेषके रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि वे (समूह में ही) आप्लावित हो जाते हैं और अपनी वैयक्तिक पहचान खो जाने का अनुभव करते हैं”।

फेल्डमैन 1985 ने निवैयक्तता को इस प्रकार परिभाषित किया है निवैयक्तता एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें आत्म अवगतता की कमी हो जाती है, अन्य लोगों द्वारा नकारात्मक मूल्यांकन का डर में कमी हो जाती है, और परिणामतः व्यक्ति आवेगशील, समाज विरोधी तथा अनादर्श रूप से प्रचलित व्यवहारों को करता पाया जाता है”।

इन परिभाषाओं के विश्लेषण से हमें निवैयक्तता के स्वरूप के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं:-

1. निवैयक्तता एक मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है जो विशेषप्रकार की समूहपरिस्थिति खासकर वैसी परिस्थिति जो व्यक्ति में गुमनामी उत्पन्न करता है तथा व्यक्ति के ध्यान को अपने आप से विकर्षित करता है।
2. इसमें व्यक्ति समूह में होते हुए भी अपनी वैयक्तिकता से अवगत नहीं होता है अर्थात् उसमें आत्म- अवगतता की कमी पायी जाती है।
3. इसमें व्यक्ति को नकारात्मक मूल्यांकन का डर नहीं रहता है क्योंकि वह जानता है कि उसकी पहचान संभव नहीं हो जायेगी।
4. निवैयक्तता के कारण व्यक्ति प्रायः आवेगशील, आक्रमक एवं समाजविरोधी व्यवहार करता पाया जाता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने निवैयक्तता को आक्रमकता का एक प्रमुख कारक माना है।

स्पष्ट हुआ कि निवैयक्तता एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें समूह में होते हुए भी व्यक्ति की अपनी पहचान खत्म हो जाती है और इस गुमनामी की आड़ में तरह- तरह के समाज - विरोधी व्यवहार को अंजाम देने में वह तनिक भी मुकरता नहीं है।

निवैयक्तता को प्रयोगशाला में अध्ययन करने का सबसे पहला सफल प्रयास जिम्बार्डो 1969द्वारा किया गया। इन्होंने कू क्ल्यूक्स क्लान रैली के माँडल के आधार पर प्रयोग किया। इस रैली की विशेषता यह है कि इसके सभी सदस्य सिर से पैर तक लम्बा उजला चोंगा पहनकर प्रदर्शन करते हैं इनमें किया व्यक्ति विशेषकी पहचान संभव नहीं हो पाती है क्योंकि इनका चेहरा पर उजला जामा लगा होता है। इस प्रयोग में चार कॉलेज छात्राओं को दो अवस्थाओं में रखकर एक महिला को बिजली का शॉक लगाना था। पहली अवस्था में इन चार

महिलाओं को एक विशेष प्रयोगशाला कोट पहना दिया गया तथा चेहरा भी इस तरह से ढँक दिया गया था कि उनकी पहचान न हो सके। अतः यह अवस्था पूर्णतः गुमनामी की अवस्था थी। दूसरी अवस्था में न तो उन्हें किसी प्रकार का कोट पहनाया गया और न ही उनका चेहरा ही ढँका गया। परिणामतः इस अवस्था में उनकी पहचान बिलकुल ही स्पष्ट थी। परिणाम में देखा गया कि गुमनामी की अवस्था में प्रयोज्यों ने अधिक लम्बे समय तक शॉक लगाया। जबकि स्पष्ट पहचान हो जाने की अवस्था में उन्होंने तुलनात्मक रूप से कम समय तक शॉक लगाया। इस परिणाम के आधार पर जिम्बार्डो ने यह स्पष्ट किया कि निवैयक्तता कुछ विशेषसामाजिक अवस्थाओं जैसे गुमनामी का भाव तथा उत्तर दायित्व का विसरण से उत्पन्न होती है। ये दोनों कारक प्रयोग की पहली अवस्था में थी। प्रयोज्यों में गुमनामी का भाव तो था ही साथ ही साथ कोन कितना मात्रा में बिजली शॉक लगा रहा है, इसकी भी कोई स्पष्ट जानकारी नहीं होती थी। जिम्बार्डो का मत है कि निवैयक्तता की अवस्था विकसित होने पर व्यक्ति में आंतरिक परिवर्तन जैसे आत्म बोध में कमी तथा दूसरों की प्रतिक्रियाओं पर कम से कम सोचना आदि होता है। इन सब का समग्र प्रभाव यह होता है कि ऐसे व्यक्ति विभिन्न तरह के आवेगशील व्यवहार करने की प्रतिबंधता में कमी आ जाती है।

जिम्बार्डो के प्रयोग के परिणाम यद्यपि निवैयक्तता के सिद्धान्त का समर्थन करता है, परंतु फिर भी अन्य प्रयोगकर्ताओं जैसे- डाइनर, 1980 प्रेंटिस-डन तथा रोजर्स 1983 तथा प्रेंटिस डन तथा स्पाईवी 1986 के प्रयोगों से थोड़ा भिन्न तस्वीर सामने आयी है। इन लोगों के प्रयोगों से यह स्पष्ट हुआ है कि निवैयक्तता को समझने के लिए आत्म- बोध में होने वाले परिवर्तन पर ध्यान देना होगा। वास्तव में आत्म- बोध के दो भिन्न प्रकार हैं और निवैयक्तता में इन दोनों भूमिका अलग-अलग है। ये दो तरह के आत्म- बोध हैं। गुप्त आत्म बोध तथा सार्वजनिक आत्म बोध। गुप्त आत्म बोध से तात्पर्य अपने भीतर झाँकने की प्रवृत्ति से अर्थात् अपनी अनुभूतियों भावों एवं मनोवृत्तियों को समझने से होता है। सार्वजनिक आत्म-बोध से तात्पर्य इस ख्याल या अनुभूति से होता है कि हम दूसरों के नजर में कैसा दिखते हैं। प्रेंटिस-डन तथा रोजर्स 1982-1983 द्वारा किये गए षोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि जब व्यक्ति के निजी आत्म बोध में कमी आती है तो निवैयक्तता की अवस्था उत्पन्न होती है। इस ढंग की कमी या परिवर्तन प्रायः समूह में होने के कारण व्यक्ति के उत्तेजन स्तर में वृद्धि से तथा समूहसमग्रता की भाव आदि से उत्पन्न होता है। इन कारणों से व्यक्ति में निवैयक्तिक अवस्था की उत्पत्ति होती है और तब व्यक्ति तरह- तरह के आवेगशील व्यवहार तथा अवांछित व्यवहार करने लगता है। दूसरे तरफ जब व्यक्ति के सार्वजनिक आत्म- बोध में कमी होती है जो प्रायः गुमनामी तथा अन्य संबंधित कारकों से उत्पन्न होती है, तो इसका प्रभाव कुछ उस ढंग का नहीं होता है। इनसे भी आवेगशील एवं अनियंत्रित व्यवहार व्यक्ति में अवश्य होता है। परंतु ऐसा व्यक्ति के इस विश्वास के कारण करता है कि उन्हें अपने इस कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं माना जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में निवैयक्तता की कोई भूमिका नहीं होती है।

निष्कर्ष- यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति में निवैयक्तता की उत्पत्ति एक प्रमुख समूह प्रभावों में से है और इसकी उत्पत्ति का संबंध निजी आत्मा - बोध में कमी से है। दूसरे शब्दों में वे सारे कारक जो व्यक्ति को अपनी मानोवृत्ति, भावों एवं मूल्यों पर ठीक ढंग से ध्यान देने में बाँधा पहुँचाते हैं, उन्हें कुछ इस ढंग से समूह में व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं कि उनका व्यवहार एकांत परिस्थिति में किये गए व्यवहार से निश्चित रूप से भिन्न हो जाते हैं। स्पष्टतः तब यह एक प्रमुख तरीका है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार पर समूह का प्रभाव पड़ता दिखता है।

### 12.11 सारांश

- सामाजिक सरलीकरण को व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाली एक प्रमुख प्रभाव बतलाया गया है मनुष्यों तथा पशुओं पर किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि अन्य लोगों की उपस्थिति चाहैए निष्क्रिय या सक्रिय, निष्पादन में उत्कृष्टता आती है इसे ही सामाजिक सरलीकरण कहा जाता है। इसकी व्याख्या सिद्धान्त द्वारा की गयी है।
- सामाजिक श्रमानवयन से तात्पर्य व्यक्तियों की उस प्रवृत्ति से होता है जिसमें वे किया सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति की ओर कार्य करने पर उसी कार्य के लिए अकेले उत्तरदायी होने की अपेक्षा का कम प्रयास करते हैं। इस का भी व्यक्ति व्यवहार पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।
- जनसंकुलन एक प्रमुख समूहप्रभाव है जिसमें व्यक्ति में एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न होती है जो जनसंख्या की घनत्व से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता इस में व्यक्ति कुछ व्यक्तियों के बीच में भी रह कर जनसंकुलन का अनुभव कर सकता है या फिर 50,000 हजार के व्यक्तियों के बीच में भी रहकर जनसंकुलन का अनुभव नहीं कर सकता।
- निवैयक्तता एक ऐसा समूहप्रभाव है जिसमें समूह में होने के बावजूद भी व्यक्ति को व्यक्ति विशेषके रूप में नहीं देखा जाता है अपितु व्यक्ति अपने आप को समूह में ही आप्लवित पाता है और अपनी व्यक्तिगत पहचान पूर्णतः खो देता है।

### 12.12 तकनीकी पद

1. कर्तव्य	Obligation
2. अधिकार	Expectation
3. निर्वाह	Maintenance
4. प्रतिमान	Norm
5. मानदण्डों	Standards

6. गुप्त आत्मबोध	Private selfawareness
7. सार्वजनिक आत्म बोध	Public Selfawareness
8. आप्लवित	Submerged
9. विसरण	Diffusion
10. गुमनामी	Anonymity
11. उत्तेजन स्तर	Arousal level

### 12.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही और कौन सा कथन गलत है -

- (1) क्या सामाजिक सरलीकरण में दूसरों की उपस्थिति से व्यक्ति में प्रतियोगिता का भाव उत्पन्न होता है।  
(सत्य/ असत्य)
- (2) सामाजिक सरलीकरण एक कठिन सामाजिक घटना नहीं है। (सत्य / असत्य)
- (3) क्या सामाजिक श्रमावनयन में दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति का कार्य करने का स्तर नीचा हो जाता है।  
(सत्य / असत्य)
- (4) सामाजिक श्रमावनयन का मूल कारण व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का होता है। (सत्य / असत्य)
- (5) जनसंकुलन व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था होती है जो घनत्व में प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित दो समस्या है या नहीं भी हो सकता है। (सत्य/असत्य)
- (6) क्या सामाजिक घनत्व में वृद्धि का प्रभाव सकारात्मक ही होता है। (सत्य/ असत्य)
- (7) क्या निवेयकता एक ऐसी मनो वैज्ञानिक स्थिति है जिससे समूह में होते हुए भी व्यक्ति की अपनी पहचान खत्म हो जाती है। (सत्य / असत्य)

उत्तर: (1) सत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) असत्य (5)सत्य (6) असत्य (7) सत्य

### 12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डा० अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव: आधुनिक समाज मनोविज्ञान - हैर प्रसाद भार्गव आगरा।
- प्रो० लाल बचन त्रिपाठी: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - हैर प्रसाद भार्गव आगरा।
- डॉ० मुहैम्मद सुलैमान: उच्चतर समाज मनोविज्ञान - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ० आर० एन० सिंह: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
- डॉ० एस०एस० माथुर: समाज मनोविज्ञान - विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

---

12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. सामाजिक सरलीकरण को परिभाषित किजिए ? सामाजिक सरलीकरण की व्याख्या करने के लिए विकसित किये गये विभिन्न सैद्धान्तिक विचारधाराओं का वर्णन करो।
2. सामाजिक श्रमावनयन से आप क्या समझते हैं? सामाजिक श्रमावनयन के कारणों का वर्णन करो। उसे किस तरह से कम किया जा सकता है।
3. जनसंकुलन क्या है ? जनसंकुलन पर घनत्व तीव्रता प्रभाव का वर्णन करें?
4. निवैयक्तता से आप क्या समझते हैं ? प्रयोगात्मक अध्ययनों से निवैयक्तता की प्रक्रिया पर किस तरह का प्रकाश पड़ता है?
5. लघु उत्तरीय प्रश्न –
  - i. सरलीकरण के सिद्धान्त
  - ii. सामाजिक श्रमावनयन की विशेषताएँ
  - iii. निवैयक्तता

---

## इकाई -13 संस्कृति का अर्थ, विशेषतायें एवम प्रकार (Meaning, Characteristics and Types of Culture)

---

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 संस्कृति का आशय
- 13.4 संस्कृति की विशेषताएँ
- 13.5 संस्कृति के प्रकार
  - 13.5.1 व्यक्त संस्कृति
  - 13.5.2 अव्यक्त संस्कृति
  - 13.5.3 भौतिक संस्कृति
  - 13.5.4 अभौतिक संस्कृति
- 13.6 सारांश
- 13.7 शब्दावली
- 13.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

### 13.1 प्रस्तावना

मनुष्य को सभी प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता है श्रेष्ठ इसलिए माना जाता है क्योंकि उसके पास अपनी एक संस्कृति है संस्कृति के अभाव में मानव एवं पशुओं में तुलना करना मुश्किल होगा संस्कृति मानव जीवन की एक धरोहर है जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे से हस्तान्तरित होती रहती है। इसलिए प्रत्येक समाज समूह एवं देश की अपनी संस्कृति होती है शिशु जिस समाज में पैदा होता है उस समाज की भाषा बोली रहन सहन हाव-भाव एवं व्यवहार से संस्कृति को सीखने लगता है अर्थात् बच्चा वहीं करता है जो वह अपने आस-पास के वातावरण में देख रहा होता है विकास के साथ-साथ बच्चा भाषा बोली रहन-सहन मूल्य विश्वास आदि सभी कुछ सीखने लगता है जो उसके व्यक्तित्व के विकास का महत्वपूर्ण स्तम्भ होते हैं।

प्रत्येक समाज समूह एवं देश की एक अलग संस्कृति होती है उसका अपना ताना बाना होता है प्रत्येक समाज अपने लोगों को अपने मूल्य परम्परायें विश्वास, रूढियों कानून आदर्श सभी कुछ यानि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष

रूप से अपने व्यवहार के द्वारा शिशु को अपनी संस्कृति हस्तान्तरित करता है जैसे बच्चा बड़ा होता है परिवार व अन्य लोगों से अन्तर्क्रिया करने लगता है व भाषा मूल्य आदर्श परम्परायें विश्वास रूढ़िया कानून नैतिकता आदि सभी कुछ सीखने लगता है वह बौद्धिक रूप से अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट है। उस संस्कृति का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर दिखाई देता है अगर हम यों कहें कि व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार उसकी संस्कृति की देन है तो यह कहना गलत नहीं होगा व्यक्ति के व्यक्तित्व की संरचना व्यक्ति की अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं द्वारा निर्धारित की जाती है अर्थात् व्यक्तित्व एवं संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है शायद इसलिए व्यक्तित्व को संस्कृति का आधार और व्यक्तित्व को संस्कृति का परिणाम कहा जाता है अतः किसी व्यक्ति के सामाजीकरण को समझने से पूर्व और व्यक्तित्व के सन्दर्भ में बताने से पूर्व उसके सांस्कृतिक परिवेश को समझना आवश्यक होगा।

### 13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में संस्कृति का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं का वर्णन किया गया है तांकि विद्यार्थी संस्कृति के स्वरूप को जान सके।

- इकाई प्रथम में संस्कृति के अर्थ को बताया गया है तांकि विद्यार्थी संस्कृति क्या है ये जान सकें।
- संस्कृति की विभिन्न विशेषताएँ होती है इन विशेषताओं के द्वारा ही चारित्रिक निर्माण होता है अतः इन विशेषताओं की जानकारी दी गई है।
- विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने संस्कृति के प्रकार बताये उन प्रकारों का वर्णन करते हुए भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति के अन्तर बताये गये हैं तांकि विद्यार्थियों का संस्कृति के संदर्भ में सम्प्रतम स्पष्ट हो सके।
- इकाई प्रथम में संस्कृति के सन्दर्भ में जानकारी दे रहे हैं कि संस्कृति क्या है, इसकी विशेषताएँ क्या हैं और इसको कितने प्रकार में बांटा जा सकता है। मुख्यतः इस इकाई का उद्देश्य है कि हम बालक एवं बालिकाओं को संस्कृति से अवगत करायें तांकि वो विभिन्न सांस्कृतिक विभिन्नताओं के बारे में जान सकें।
- इस इकाई में यह बताने की कोशिश की गई है कि सामाजीकरण के दौरान जब शिशु विकास के क्रम में होता है वह अपने वातावरण से ही भाषा बोली विश्वास परम्परायें आदि सब कुछ सीखता जाता है यह क्रिया प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में होती है।
- जब व्यक्ति अपनी संस्कृतिक विरासतों को सीख जाता है तो वह व्यक्त व अव्यक्त तरीके से उसे अपनी अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है इसी कारण से एक समाज सदियों तक अपनी संस्कृति को बचाये रखता है।



### 13.3 संस्कृति का आशय

संस्कृति एक व्यापक एवं जटिल अवधारणा है जिसके अर्थ को विभिन्न प्रकार से स्पष्ट किया जाता रहा है शाब्दिक रूप से संस्कृति शब्द की उत्पत्ति “संस्कृत” शब्द से हुई है संस्कृत का अर्थ होता है “परिष्कृत” इस प्रकार संस्कृति का सम्बन्ध उन सभी तत्वों की समग्रता से है जो समूह में व्यक्ति का परिष्कार कर सके। मानवविज्ञानी लोगों के किसी समूह की सामाजिक राय को बताने के लिए संस्कृति शब्द करते हैं यह आदतों, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों के न्यूनाधिक संगठित एवं दृढ़ ताने बताते हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलती है- इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मानव शिशु पर संस्कृति का प्रभाव ही नहीं पड़ता वरन् वह उसको आत्मसात भी करता है और बदले में दूसरों को देता है सामान्यतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप में भी किया जाता है परन्तु यह गलत है क्योंकि समाज संस्कृति से पूर्व अवस्था है उदाहरणार्थ- संस्कृति को सामाजिक विरासत के रूप में देखा जाता है इसमें सन्देह नहीं कि सांस्कृतिक प्रतिमान सामाजिक अन्तर्क्रियाओं को सामाजिक अन्तर्क्रियायें नहीं कह सकते हैं किम्बल यंग ने कहा है कि “समाज संस्कृति से पहले होता है” पशुओं में घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्ध होता है और उसमें द्वन्द एवं सहयोग तथा कुछ हद तक आयु भेद एवं लिंग भेद भी मापा जाता है।

संस्कृति के अन्तर्गत भौतिक वस्तुएँ तथा अभौतिक मान्यतायें विचार विश्वास मूल्य आदर्श तथा जीवन शैली आती है इसी कारण किसी संस्कृति विशेष के सदस्यों के सामाजिक व्यवहार में सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद भी काफी हद तक समानता रहती है।

#### संस्कृति की परिभाषाएँ

- टायलर (E.B.Tylor) संस्कृति एक जटिल समग्रता है जिसके अन्तर्गत ज्ञाप विश्वास कला आचार कानून प्रथा तथा इसी प्रकार की उन सभी क्षमताओं एवं आदतों का समावेश होता है। जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।

”Culture is that complex which includes knowledge, belief, art morals, law, custom and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society.”-

E.B.Tylor

- क्रचफील्ड एवं बैलकी (1962) के अनुसार “ भौतिक तथा अभौतिक सभी व्यवस्थाओं का ऐसा प्रतिमान, जिसका सदस्यों की समस्याओं के पारस्परिक रूप में समाधान हेतु उपयोग होता रहता है संस्कृति कहा जाता है। इसमें व्यवहार (आचरण) निर्देशित करने सम्बन्धित सभी तरीकों तथा अव्यक्त, विश्वास, प्रतिमान मूल्य तथा आधार वाक्य ; चतमउपेमेद्ध आदि सन्निहित होते हैं।

- लिण्डग्रेन (1971) के अनुसार संस्कृति का आशय मूल्यों विश्वासों मानकों, कौशलों तथा प्रतीकों की उन सभी व्यवस्थाओं में है जिनका विकास समाज द्वारा किया जाता है और जिन्हें सभी सदस्य अंगीकार भी करते हैं।

Culture consists of the systems of values, beliefs, norms, artifacts and symbols that have been developed by a society and are shared by its members.”--Lindgrain

- हर्सकोविट्स (Herskohits) के शब्दों में संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है  
Culture is the man made part of environment” ---M.J. Herskohits
- केम्पर (Koseret. Al) (1983) के अनुसार संस्कृति को सरलतम ढंग से उभयनिष्ठ विचारों या प्रथाओं, विश्वासों तथा जीवन पद्धति को विशिष्टता प्रदान करने वाले ज्ञान के सम्मूचय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

Culture can be most simply defined as a set of shared ideas or the customs, beliefs and the knowledge that characterizes a way of life.” (Koseret. Al)

- लिंटन-संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखते हैं -“ संस्कृति धारणायें, प्राकृतिक व्यवहार के प्रतिमानों का कुल योग है जिसके सभी भागीदार होते हैं तथा जो हस्तान्तरित की जाती है।

Culture may be defined as the sum total of knowledge attitudes and natural behaviour patterns shared transmitted by members of a particular society.”

- ब्रिंकरहाफ एवं हवाईट (1985) किसी समाज के सदस्यों द्वारा अपनाई जाने वाली सम्पूर्ण जीवन शैली को संस्कृति कहते हैं इसमें भौतिक वस्तुएं (उत्पादन) तथा साथ ही साथ चिन्तन भाव एवं कार्य करते के प्रतिमानित पुनर्वत्यात्मक तरीके भी सम्मिलित हैं।

“ Culture is the total of life shared by member of society. It includes material products as well as patterned repetitive ways of thinking, feeling and acting. Brinckerhaff and white.”

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है “संस्कृति में किसी समाज या समाज के किसी भाग के लोगों का पारस्परिक व्यवहार, विश्वास आदतें रूढ़ियाँ, परम्परायें अभिवृत्तियाँ मूल्य एवं भौतिक वस्तुएँ होती हैं।”

संस्कृति में व्यवहार सम्बन्धित सभी मापदण्ड होते हैं इसी कारण संस्कृति को सामाजिक विरासत (Social Heritage) कहते हैं, अन्य कारणों की तरह संस्कृति भी यह संकेत देती है कि किसी परिस्थिति विशेष में कोई व्यक्ति क्या और कैसे व्यवहार करेगा। यह संस्कृति का ही प्रभाव है कि संस्कृति विशेष के लोगों में

खानपान वेशभूषा भाषा आदि में समानता पाई जाती है जबकि दो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोगों में काफी विभिन्नता देखने को मिलती है (Robertson 1981)

### 13.4 संस्कृति की विशेषताएँ

संस्कृति को समझने व जानने के लिए प्रस्तुत इकाई में विभिन्न परिभाषाओं का प्रयोग किया जा चुका है, संस्कृति को ओर अधिक स्पष्टतः समझने के लिए हम उसकी विशेषताओं का वर्णन करने जा रहे हैं:

#### 1. संस्कृति मानव निर्मित है –

संस्कृति मात्र मानव समाज में पाई जाती है सभी प्राणियों में मानव श्रेष्ठ माना जाता है-क्योंकि उसके पास एक विकसित मस्तिष्क, केन्द्रित की जा सकने वाली आँखें, हाथ, अंगूठे की स्थिति, गर्दन की रचना आदि उसे अन्य प्राणियों से भिन्न बनाती है।

मनुष्य के पास भाषा जैसा एक सशक्त माध्यम है वह भाषा, प्रतीकों एवं लोकज्ञान से अपने ज्ञान एवं संस्कृति को सम्प्रेषित करता है। चूँकि एक विकसित मस्तिष्क का स्वामी है सो विभिन्न प्रकार के आविष्कारों से निरन्तर या सतत् आगे बढ़ता है और पीछे की खोजों, विचारों विश्वासों परम्पराओं को संजोता जाता है इसलिए संस्कृति को मानव निर्मित माना गया है और मनुष्य की इन्हीं खूबियों के कारण ही उसे अन्य प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

#### 2. संस्कृति सीखी जाती है -

संस्कृति शिशु को अपने माता-पिता द्वारा वंशानुक्रम में प्राप्त नहीं होती, हमें वंशानुक्रम में मात्र शरीर प्राप्त होता है, संस्कृति एक सीखा हुआ व्यवहार प्रतिमान का योग है मानव अपनी संस्कृति के साथ पैदा नहीं होता वरन जिस समाज में रहता है उसकी संस्कृति धीरे-धीरे सामाजीकरण के द्वारा सीखता है।

हाबेल कहते हैं- “संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है”

उदाहरण- अगर किसी भारतीय बच्चे को जन्म के समय ही अमेरीकावासियों को गोद दे दिया जाय तो देखेंगे कि वह अमेरिका की संस्कृति को सीखेगा क्योंकि उसका समाजीकरण उसी संस्कृति में होगा। इसलिए हम कह सकते हैं कि यह एक सीखा हुआ व्यवहार है।

सीखने की क्षमता मानव में ही नहीं पशुओं में भी होती है किन्तु उनके द्वारा सीखा व्यवहार संस्कृति नहीं बन जाता, पशु द्वारा सीखा व्यवहार मानव की तरह सामूहिक व्यवहार नहीं हैं अपितु केवल पशु का व्यक्तिगत व्यवहार है। सामूहिक व्यवहार विश्वास, मूल्य, रूढ़ियों, परम्पराओं, जनरीतियों आदि को जन्म देते हैं जो मात्र मानव समाज में होता है। उदाहरणार्थ- पशु में अगर हम चिम्पाजी या बन्दरों का निरीक्षण करें तो पाते हैं कि उनकी वही स्थिति आज भी है जो सौ वर्ष पूर्व थी, जबकि मानव आज वह नहीं है जो दस वर्ष पूर्व था। नित्य नये ढंग से प्रकृति का विकास मानव ही कर सकता है और कर रहा है।

### 3. संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती है -

संस्कृति मात्र सीखी नहीं जाती वरन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाती है। ऐसा नहीं है कि पशुओं में सीखने की क्षमता नहीं है परन्तु उनके सीखे हुए व्यवहारों एवं अनुभवों का दूसरे पशु लाभ नहीं उठा सकते क्योंकि अपने विचारों एवं अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाने की क्षमता उनमें नहीं होती। मानव के पास भाषा जैसा सशक्त माध्यम है इसलिए वह अपने विचारों एवं अनुभवों को बड़ी सरलता से दूसरों तक पहुँचा देता है। उसके पास अपने पूर्वजों के ज्ञान का अर्जित भण्डार है जिसमें वह स्वयं के अनुभव जोड़ते हुए आगे बढ़ता जाता है। उदाहरण- यदि एक पीढ़ी ने फोन का आविष्कार किया है तो दूसरी पीढ़ी को उसका पुनः आविष्कार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। नई पीढ़ी उससे अपने ज्ञान से और सुगम और सरल बनाती जाती है। वर्तमान में हम देख रहे हैं कि फोन के प्राचीन रूप से निकलकर हम आधुनिक मोबाइल सैट तक पहुँच गये हैं इस प्रकार यह एक पीढ़ी का ज्ञान दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता जाता है।

### 4. संस्कृति समाज की देन है -

कोई भी समाज, समूह या राष्ट्र अपने नागरिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ नियम मूल्य या व्यवहार निर्धारित करता है। धीरे-धीरे यही मूल्य व नियम समाज के व्यवहार में दिखाई देने लगते हैं। शिशु के जन्म के समय से ही सामाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है वहीं से वह अपने समूह या समाज की संस्कृति को आत्मसात करने लगता है इसलिए कहा जाता है कि संस्कृति समाज की देन है।

किम्बल यंग ने कहा है कि “समाज संस्कृति से पहले होता है।” चूँकि संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की देन नहीं होती वरन समाज की देन होती है उसका जन्म व विकास समाज के कारण ही है समाज के अभाव में संस्कृति की कल्पना करना भी व्यर्थ है संस्कृति सामूहिक आदतों व्यवहारों की उपज होती है वह किसी व्यक्ति विशेष की विशेषता को प्रकट नहीं करती वरन सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व करती है।

### 5. संस्कृति में विशिष्टता का गुण होता है -

प्रत्येक समाज की भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ दूसरे समाज से भिन्न होती हैं। व्यक्ति अपने सामाजिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने के लिए आविष्कार करता है इसलिए कहा गया है कि संस्कृति पूर्णतया सामाजिक आविष्कार का परिणाम होता है। आविष्कार व्यक्ति की आवश्यकता के कारण होते हैं। चूँकि सामाजिक आवश्यकताएँ प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न होती है इस कारण संस्कृति का रूप व स्वरूप भी हर समाज में अलग-अलग होता है। इन सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण ही एक समाज के सदस्यों के व्यवहारों की विशेषताएँ दूसरे समाज के सदस्यों से अलग होती है इसलिए कहा जाता है संस्कृति में विशिष्टता का गुण पाया जाता है। उदाहरणार्थ पर्वतीय क्षेत्र में रहने वाले लोगों का खान-पान, रहन-सहन व गीत-संगीत वहाँ की सामाजिक व भौगोलिक परिस्थिति के अनुकूल होता है जबकि मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का

खान-पान, रहन-सहन वहाँ की जलवायु व सामाजिकता पर निर्भर करती है। ये दोनों परिस्थितियाँ दोनों प्रकार के समाजों की संस्कृति में विशिष्टता का गुण पैदा कर देती है। जैसे -पर्वतीय क्षेत्र में धान रोपाई के समय महिलाओं द्वारा सामूहिक कार्य करने के लिए श्रमगीत (हुड़कीबौल) के द्वारा कार्य किया जाता है जो उनकी कार्यक्षमता को बढ़ाता है उनके तनावों को कम करता है और सामूहिक एकता का भाव दे जाता है और यह उनकी संस्कृति में विशिष्टता का गुण ले आती है जो अन्य समाजों से भिन्नता प्रकट करती है।



चित्र 1- वैशाखी पर भांगड़ा करते हुए लोग, जो पंजाबी संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।



चित्र 2 - आदिवासी संस्कृति- दोनों चित्र दो संस्कृतियों की विशिष्टता प्रदर्शित कर रहे हैं

#### 6. समूह के लिए संस्कृति आदर्श होती है -

व्यक्ति जिस समूह में पैदा होता है उसमें उस संस्कृति का प्रभाव होता है और वह उसी के सांचे में ढल जाता है यह एक ऐसा ढांचा है जिसमें व्यक्ति बढ़ता और विकसित होता है। प्रत्येक समूह के सदस्यों की दृष्टि में उनकी संस्कृति सामाजिक व्यवहार का एक आदर्श मान है इस कारण वह अपने व्यवहार को उसी के अनुरूप ढालता है। जब अपनी संस्कृति की तुलना अन्य संस्कृति से करने की आवश्यकता होती है तो अपनी संस्कृति को आदर्श रूप में प्रस्तुत करने का मनोभाव उस समाज के अधिकतर लोगों में पाया जाता है और अधिकांशतः समूह के लोगों की यह कोशिश रहती है कि वह अपनी संस्कृति के आदर्शता होने की बात करें। उदाहरणार्थ-यदि दो देशों की संस्कृति की बात करें तो प्रत्येक देश अपने देश के संस्कृति की सकारात्मक पहलुओं का गुणगान अधिक करने लगता है जैसे-भारतवासी को प्रायः भारतीय संस्कृति का गुणगान करते हुए देखा जा सकता है और पश्चिमी देश अपने संस्कृति का गुणगान करते हैं। यह मनोभाव प्रत्येक समाज के व्यक्ति में पाया जाता है क्योंकि जन्म के बाद वह उसी संस्कृति के सांचे में ढला होता है।

#### 7. संस्कृति मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करती है -

किसी संस्कृति की निरन्तरता इसी बात पर निर्भर होती है कि उसमें शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता है या नहीं ? बाह्य रूप में एक संस्कृति की एक प्रथा विशेष हमारे लिए अर्थहीन और अनोखी प्रतीत हो सकती है परन्तु यदि सम्पूर्ण सांस्कृतिक ढाँचे के सन्दर्भ में उस प्रथा के कार्यों की हम सावधानी से विवेचना करें तो उसी प्रथा का वैज्ञानिक अर्थ स्पष्ट हो जायेगा। फिर वह एक अनोखी या बेतुकी प्रथा न रहकर सामाजिक तौर पर एक महत्वपूर्ण कार्य करने वाली प्रतीत होगी। इस प्रकार संस्कृति के अन्तर्गत प्रत्येक इकाई का एक विशिष्ट महत्व तथा कार्य होता है जो सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था की स्थिरता तथा

निरन्तरता को बनाए रखने में सहायक होता है। प्रत्येक के बिना सम्पूर्ण का अस्तित्व असम्भव है और सम्पूर्ण के बिना प्रत्येक अर्थहीन भी है। जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग का सम्पूर्ण शरीर को जीवित रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, उसी प्रकार प्रथा या प्रत्येक संस्था का सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था की जीवनविधि को कायम रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

#### 8. संस्कृति में अनुकूलनने का गुण होता है -

संस्कृति की इस विशेषता या गुण के दो स्पष्ट पहलू हैं- पहला, संस्कृति जड़ और स्थिर नहीं होती, गतिशीलता उसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है और दूसरा इस गतिशीलता या समय-समय पर संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप इसका अनुकूलन बाहरी शक्तियों से होता रहता है। इस प्रकार के अनुकूलन में संस्कृति का भौगोलिक पर्यावरण से अनुकूलन विशेष रूप से उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण है। एक जंगल में रहने वाला समुदाय अपनी सांस्कृतिक व्यवस्था का अनुकूलन जंगल की परिस्थितियों से करता है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि भौगोलिक पर्यावरण संस्कृति को निश्चित करता है, इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि भौगोलिक पर्यावरण सांस्कृतिक विकास की सीमाओं को निश्चित करता है, जिसके आगे एक निश्चित सांस्कृतिक स्तर के लोग नहीं जा सकते। संस्कृति का उद्देश्य मानसिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। अतः इन आवश्यकताओं के अनुसार संस्कृति का स्वरूप भी प्रभावित होता है और इनमें होने वाले प्रत्येक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के साथ-साथ संस्कृति के ढाँचे तथा स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक युग की माँग अलग होती है, समय परिवर्तन के साथ-साथ अनेक पुरानी आवश्यकताएँ समाप्त हो जाती हैं इन दोनों अवस्थाओं के साथ ही अपना अनुकूलन कर सकने का गुण संस्कृति में होता है। अनेक मानवीय आवश्यकताओं तथा पर्यावरण सम्बन्धी व ऐतिहासिक परिस्थितियों या घटनाओं के कारण संस्कृति के ढाँचे में परिवर्तन होता रहता है और इन परिवर्तनों के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि दूसरे अंग या इकाइयाँ भी अपना अनुकूलन परिवर्तित भागों या इकाइयों के अनुरूप करती रहें। चूँकि अपनी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मनुष्य संस्कृति या इसकी विभिन्न इकाइयों को काम में लाता है, इसीलिए मनुष्य को भी निरन्तर परिवर्तनशील इकाइयों के साथ अपना अनुकूलन करना पड़ता है। अतः स्पष्ट है कि संस्कृति के अपने स्वयं के ढाँचे के परिवर्तन कर सकते के गुण ने समस्त प्राणियों में मनुष्य को सर्वाधिक अनुकूलशील प्राणी बना दिया है।

#### 9. संस्कृति मानव व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक -

जन्म के समय शिशु मात्र जैविक प्राणी होता है बाहरी समाज में पदार्पण करते ही उसका अपने समाज से परिचय होने लगता है वहीं से वह अपनी संस्कृति को आत्मसात करने लगता है। बच्चा जिस वातावरण में पलता है उसके व्यक्तित्व का निर्माण उसी प्रकार होता है संस्कृति में प्रचलित धर्म, दर्शन, कला विज्ञान प्रथाएँ रीतिरिवाज



आदि सभी का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर स्पष्ट छाप होती है इसलिए एक संस्कृति में पले व्यक्ति का व्यक्तित्व दूसरी संस्कृति में पले व्यक्ति से भिन्न होता है।

उदाहरण-भारत में पले व्यक्ति का व्यक्तित्व चीन में पले व्यक्ति से भिन्न होता है क्योंकि दोनों का पर्यावरण व संस्कृति भिन्न होती है।

### 10. संस्कृति में संगठन एवं सन्तुलन होता है –

संस्कृति के अन्तर्गत अनेक खण्ड एवं इकाईयाँ होती है जैसे-प्रथा, परंपरा, नियम भौतिक मानक आदि संस्कृति के इन खण्डों या इकाईयाँ में एक पारस्परिक सम्बन्ध तथा अन्तःनिर्भरता होती है सांस्कृतिक इकाईयाँ जिन्हें हम सांस्कृतिक तत्व कहते हैं इन इकाईयों के कारण संस्कृति में एक प्रकार का सन्तुलन एवं संगठन पाया जाता है। संस्कृति की प्रत्येक इकाई सांस्कृतिक ढंग से एक दूसरे से सम्बन्धित होती है हर इकाई की एक निश्चित अवधि तथा कार्य होता है इस सब के परिणामस्वरूप संस्कृति की विभिन्न इकाईयों में सन्तुलन एवं संगठन होता है इस प्रकार अगर संस्कृति के किसी इकाई में थोड़ा परिवर्तन होता है। उसका प्रभाव दूसरे भाग में कुछ न कुछ दिखाई देता है।

### 11. संस्कृति में परिवर्तन का गुण होता है –

प्रत्येक समाज की संस्कृति हमेशा एक सी नहीं रहती है उसमें समयानुसार कुछ-कुछ परिवर्तन भी दिखाई देते हैं अगर व्यक्ति दूसरे संस्कृति के व्यक्ति से मिलता है तो उसका उसमें कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है।

वर्तमान समय वैश्वीकरण का युग है हम तकनीक में इतना अधिक बढ़ गये हैं कि पूरी दुनिया की खबरें व संस्कृति घर बैठे ही कम्प्यूटर एवं दूरदर्शन में देख सकते हैं और वहाँ की संस्कृति पर कुछ न कुछ प्रभाव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य पड़ता है। उदाहरण- भारत के शहरों में पाश्चात्य देशों का पहनावा तेजी से फैल रहा है जो हमारे गांवों तक को प्रभावित कर रहा है इस लिए हम कह सकते हैं कि संस्कृति में परिवर्तन का गुण भी होता है।

## 13.5 संस्कृति के प्रकार

क्रेच क्रेचफील्ड एवं बैलकी (1962) संस्कृति को दो भागों में विभक्त किया है।

### 13.5.1 व्यक्त संस्कृति –

किसी भी संस्कृति के वो भाग जिनका प्रत्यक्ष अवलोकन किया जाता है या जिन्हें व्यक्ति की विभिन्न प्रकार की अन्तःक्रियायें भूमिका निर्वाह तथा विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों में किये गये व्यवहार सम्मिलित होते हैं व्यक्त संस्कृति कहलाती है।

### 13.5.2 अव्यक्त संस्कृति -

किसी भी संस्कृति के वो अवयव जिनका प्रत्यक्ष अवलोकन सम्भव नहीं है उन्हें अव्यक्त संस्कृति कहा जाता है यथा -विचार, ज्ञान, जनश्रुति, अंधविश्वास मूल्य आदि इनका कोई भौतिक स्वरूप नहीं होता है पर इनका व्यक्ति के



व्यवहार पर गहन प्रभाव पड़ता है इन्हीं व्यवहारों के कारण एक संस्कृति के व्यक्तियों में समानता दिखाई देती है वहीं समानता के कारण एक संस्कृति में विशिष्टता का गुण उत्पन्न होता है।

पिडिंगटन तथा आर्गबन ने संस्कृति को दो भागों में विभक्त किया है -

### 13.5.3 भौतिक संस्कृति -

भौतिक संस्कृति में यंत्र उपकरण पुस्तकें भवन मशीनें आदि होते हैं जो संस्कृति के अंग होते हैं इस संस्कृति में मानव द्वारा निर्मित सभी मूर्त वस्तुओं को रखा गया है “जिन्हें हम देख सकते हैं और छू सकते हैं तथा इन्द्रियों द्वारा जिनका आभास कर सकते हैं” भौतिकसंस्कृति कहलाती है भौतिक संस्कृति को गिनना सरल नहीं है, प्राचीन व आदिम समाजों की अपेक्षा जटिल व आधुनिक समाजों में भौतिक संस्कृति

की संख्या अधिक है अर्थात् पुरानी पीढ़ी की अपेक्षा नई पीढ़ी में भौतिक संस्कृति की संख्या अधिक है।

#### भौतिक संस्कृति की विशेषतायें-

- भौतिक संस्कृति मूर्त होती है अर्थात् उनको देखा जा सकता है जैसे मकान, फर्नीचर कम्प्यूटर आदि।
- भौतिक संस्कृति को मापा जा सकता है चूकि मूर्त होती है इसलिए इसे मापना आसान व सरल होता है। उपयोगिता एवं लाभ का मूल्यांकन करना सरल होता है।
- भौतिक संस्कृति की उपयोगिता एवं लाभ का मूल्यांकन करना सरल होता है।
- भौतिक संस्कृति में परिवर्तन शीघ्र होते हैं जैसे कम्प्यूटर में दिन प्रतिदिन कुछ न कुछ परिवर्तन होते जा रहे हैं। व्यक्ति की कोशिश रहती है कि वह ज्यादा से ज्यादा सुविधजनक हो।
- भौतिक संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यतः हमारे बाह्य जीवन से होता है जैसे मकान फोन फर्नीचर, कपड़े आदि, भौतिक वस्तुएं हमारे बाहरी जीवन को प्रभावित करती हैं।
- भौतिक संस्कृति बिना परिवर्तन के ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर ग्रहण कर ली जाती है जैसे, अमेरिका के पैन, फर्नीचर, वेशभूषा हम बिना परिवर्तन के ग्रहण कर लेते हैं।

### 13.5.4 अभौतिक संस्कृति -

अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उन सभी सामाजिक तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है जो अमूर्त हैं जिनका कोई माप तौल रंग आकर नहीं होता है। इन्द्रियों द्वारा जिनका स्पर्श नहीं होता है वरन जिन्हें हम केवल महसूस कर सकते हैं।“

अभौतिक संस्कृति में हम सामाजिक विरासत से प्राप्त विचार, विश्वास, मानदण्ड, व्यवहार, प्रथा, रीतिरिवाज, मनोवृत्तियाँ, साहित्य, ज्ञान, कला, भाषा, नैतिकता आदि को सम्मिलित करते हैं। अभौतिक संस्कृति सामाजिकरण व सीखने की प्रक्रिया द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती है।

#### अभौतिक संस्कृति की विशेषतायें-

- अभौतिक संस्कृति अमूर्त होती है अर्थात विचार, विश्वास, धर्म, भाषा, नैतिकता अभिवृत्तियों का कोई मूर्त रूप नहीं होता है ये मात्र महसूस की जाती हैं।
- अमूर्त होने के कारण अभौतिक संस्कृति को मापा नहीं जा सकता हम किसी के विचारों एवं मनोवृत्तियों को माप नहीं सकते हैं।
- अभौतिक संस्कृति की उपयोगिता एवं लाभ का मूल्यांकन भौतिक संस्कृति की तरह नहीं किया जा सकता ऐसा नहीं है कि अभौतिक संस्कृति का लाभ नहीं होता किसी के विचार से प्रभावित होकर समाज बड़े-बड़े कार्य कर देता है पर उसका मूल्यांकन किसी वस्तु की तरह प्रकट करना असम्भव है।
- अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन बहुत कम एवं धीमी गति से होते हैं व्यक्ति जिस संस्कृति में पला-बढ़ा होता है उस संस्कृति से सम्बन्धित विचार, विश्वास, अभिवृत्तियाँ धर्म आदि में परिवर्तन करना मुश्किल कार्य है यह परिवर्तन अगर होते भी हैं तो बहुत धीमी गति से और अत्यन्त कम होते हैं।
- सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार के दौरान अभौतिक संस्कृति के तत्व को उसी रूप में ग्रहण नहीं किया जाता है जिस रूप में उसका प्रसार होता है बल्कि उसमें थोड़ा परिवर्तन आ जाता है।
- अभौतिक संस्कृति का सम्बन्ध मानव के आन्तरिक जीवन से होता है।

भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति की विशेषताओं को स्पष्टतः समझने के लिए भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति के अन्तर को समझना आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में हम इन अन्तरों का एक संक्षिप्त व्यौरा प्रस्तुत कर रहे हैं।

❖ भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति में अन्तर :

भौतिक संस्कृति	अभौतिक संस्कृति
1. भौतिक संस्कृति मूर्त होती है।	1. अभौतिक संस्कृति अमूर्त होती है।
2. भौतिक संस्कृति की माप करना आसान व सरल है।	2. अभौतिक संस्कृति की माप नहीं जा सकता है।
3. भौतिक संस्कृति की उपयोगिता एवं लाभ का मूल्यांकन सरल होता है।	3. अभौतिक संस्कृति की उपयोगिता एवं लाभ का मूल्यांकन करना कठिन होता है।
4. भौतिक संस्कृति में परिवर्तन अत्यधिक तीव्र गति से होते हैं। जैसे पिछले कुछ वर्षों में या दो दशकों में भौतिक अविष्कार तेजी से हुए हैं बहुत सी नई मशीन एवं तकनीक आ गई है।	4. अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन बहुत ही कम एवं धीमी गति से होते हैं। जैसे व्यक्ति के विचारों अभिवृत्तियों प्रभावों जनरीतियों में बहुत कम या धीमे-धीमे परिवर्तन होता है।
5. भौतिक संस्कृति सरल होती है।	5. अभौतिक संस्कृति कठिन होती है।
	6. अभौतिक संस्कृति का सम्बन्ध उसके

<p>6. भौतिक संस्कृति का सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्य जीवन से होता है जैसे घर, फर्नीचर गाड़ी उसके बाह्य जीवन को प्रभावित करता है।</p> <p>7. दूसरे समाज या संस्कृति को भौतिक वस्तुओं को व्यक्ति शीघ्र ग्रहण कर लेता है और जैसे-उसे रूप में करता है जिस रूप में वह आती है जैसे अमेरिका का पेन जापान की तकनीक आदि।</p>	<p>आन्तरिक जीवन से होता है। जैसे व्यक्ति के विचार चिन्तन, मनोवृत्तियाँ आदि, उसे आन्तरिक रूप से प्रभावित करती है।</p> <p>7. भिन्न समाज या संस्कृति के विचारों अभिवृत्तियों, धर्म भाषा को अपना अर्थात् दूसरी संस्कृति के अभौतिक वस्तुओं को ग्रहण नहीं करती है अगर किसी कारणवश ग्रहण भी करती है तो उसमें बहुत हद तक परिवर्तन कर देती है।</p>
--	---

### 13.6 सारांश

उपर्युक्त इकाई से यह स्पष्ट है कि संस्कृति सामाजिक विरासत के रूप में जानी जाती है संस्कृति व्यक्ति के ज्ञान, विश्वास, अभिवृत्तियाँ व्यवहार भाषा खान-पान रीतियों धर्म आदि सभी भौतिक व अभौतिक स्थितियों में पाई जाती है व्यक्ति अपने संस्कृति को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है। चूंकि मानव एक विकसित मस्तिष्क वाला प्राणी है जो अपने पूर्व पीढ़ी से मिले ज्ञान में नये ज्ञान का मिश्रण कर वह निरन्तर आगे बढ़ते जाता है। व्यक्ति जिस समूह में पैदा होता है उस समूह की संस्कृति के साँचे में आ जाता है संस्कृति के इसी ढाँचे में व्यक्ति बढ़ता व विकसित होता है इसलिए हम कह सकते हैं कि “संस्कृति में किसी समाज/समूह एवं राष्ट्र के लोगों का पारस्परिक व्यवहार उनके विश्वास, नियम, अभिवृत्तियाँ, कानून, धर्म भाषा आदि भौतिक व अभौतिक वस्तुएं होती है।”

### 13.7 शब्दावली

- **संस्कृति:** संस्कृति में किसी समाज या समाज के किसी भाग के लोगों का पारस्परिक व्यवहार, विश्वास आदतें रूढ़ियाँ, परम्परायें अभिवृत्तियाँ मूल्य एवं भौतिक वस्तुएं होती है।

### 13.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. संस्कृति जीवन का निर्वाहन करती है। (सत्य/ असत्य)
2. घर फर्नीचर गाड़ी आदि उदाहरण है-  
(अ) भौतिक संस्कृति का (ब) अभौतिक संस्कृति का

3. संस्कृति में विशिष्टता का गुण पाया जाता है (सत्य/ असत्य)
4. संस्कृति समाज की देन है। (सत्य/ असत्य)
5. अमूर्त संस्कृति को कहते हैं  
(अ) भौतिक संस्कृति (ब) अभौतिक संस्कृति
6. भूमिका निर्वाह एक उदाहरण है  
अ) व्यक्त संस्कृति का (ब) अव्यक्त संस्कृति का

उत्तर: 1- सत्य 2- (अ) 3- सत्य 4- सत्य 5-(ब) 6- (अ)

### 13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह डा० आर० एन- आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, रीडर मनोविज्ञान विभाग, डी० डी० कालेज, जौनपुर, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- अग्रवाल डा० जी० के०/पाण्डेय डा० एस० एस०- सामाजिक मनोविज्ञान साहित्य भवन, पब्लिकेशन एवं डिस्ट्रीब्यूटर।
- मुखर्जी डा; रवीन्द्र नाथ अग्रवाल डा० भरत--यूनीफाईट समाजशास्त्र, विवके प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली।
- गुप्ता एम० एल/शर्मा डी० डी०- समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन।
- कुप्पुस्वामी बी- समाज मनोविज्ञान एक परिचय, हरियाणा, साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़।
- डा० सिंह ए० के- समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसी दास बंगलो रोड दिल्ली द्वारा प्रकाशित।
- डा० श्रीवास्तव डी० एन०- सामाजिक मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा।

### 13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कृति से आप क्या समझते हैं ? संस्कृति की विशेषता स्पष्ट कीजिये।
2. एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से भिन्न होती है स्पष्ट कीजिए।
3. संस्कृति क्या है ? उसके कितने प्रकार हैं उनमें अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. टिप्पणी लिखिये-  
(अ) संस्कृति का जीवन पर प्रभाव  
(ब) भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति में अन्तर

**इकाई-14 संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध, व्यक्तित्व विकास पर संस्कृति का प्रभाव  
(Relationship between Culture and Personality, Effects of  
culture on Personality Development)**

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 व्यक्तित्व का आशय
- 14.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएँ
- 14.5 व्यक्तित्व के प्रकार
- 14.6 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक
- 14.7 संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध
- 14.8 व्यक्तित्व विकास पर संस्कृति का प्रभाव
- 14.9 सारांश
- 14.10 शब्दावली
- 14.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 14.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 14.13 निबंधात्मक प्रश्न

**14.1 प्रस्तावना**

संस्कृति एवं व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक हैं दोनों का एक दूसरे के बिना अस्तित्व नहीं हो सकता, शिशु के जन्म के साथ ही वह एक सामाजिक प्राणी बनने लगता है, परिवार व समाज के नियम आचार-व्यवहार सभी कुछ वह सीखने लगता है यहीं से संस्कृति उसे प्रभावित करने लगती है बच्चा जिस समूह या समाज में पलता या विकसित होता है उसी समाज या समूह की संस्कृति को आत्मसात् करने लगता है।

जन्म के समय शिशु मात्र एक जैविक प्राणी होता है उसके पास एक शारीरिक ढाँचा होता है धीरे-धीरे समाजीकरण के साथ वह अपनी संस्कृति में भाषा, ज्ञान, विश्वास, मनोवृत्तियाँ व्यवहार, नियम कानून प्रथायें, परम्परायें, रूढ़ियाँ आदि सभी कुछ सीखने लगता है, ये तमाम कारक उसके व्यक्तित्व को हर पल प्रभावित करते हैं इसलिए एक संस्कृति एवं समाज विशेष के लोगों के व्यक्तित्व में काफी हद तक समानतायें होती हैं और हम पहचान जाते हैं कि ये किस संस्कृति के लोग हैं। अगर भारतीय लोग पूरी दुनिया के किसी कोने में भी चले जायेंगे तो अपनी बोली, भाषा, खान-पान प्रथाओं आदि से भारत की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हुए पाये जायेंगे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृति व्यक्तित्व का निर्धारण करती है इसलिए यह मानना ही पड़ेगा कि संस्कृति एवं व्यक्तित्व एक दूसरे के बिना अधूरे हैं चूंकि संस्कृति एवं व्यक्तित्व के सम्बन्धों की पूरी जाँच पड़ताल करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम व्यक्तित्व क्या है यह जानें।

### 14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- व्यक्तित्व शब्द का अर्थ एवं उसकी परिभाषाओं को जान सकेंगे।
- व्यक्तित्व की विशेषताओं एवं प्रकारों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त होगी।
- संस्कृति एवं व्यक्तित्व में क्या सम्बन्ध है इसका अध्ययन कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक कारकों का विस्तृत रूप में जानकारी देने की कोशिश की गई है।

### 14.3 व्यक्तित्व का आशय

अपने रोजमर्रा के जीवन में हम व्यक्तित्व का प्रयोग कई बार करते हैं। सामान्यतः जब हम किसी पार्टी, उत्सव आदि में किसी आकर्षक या हृष्टपुष्ट व्यक्ति को देखते हैं तो अनायास ही कहने लगते हैं “ वाह क्या परसैनलिटी है” आम जन जीवन में सामान्यतः व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य जीवन से ही लगाया जाता है। व्यक्तित्व शब्द मुख्यतः लैटिन भाषा के से बना है जिसका अर्थ नकाब होता है,। परसोना शब्द के अनुसार व्यक्तित्व का अर्थ बाह्य गुणों से लगाया जाता है लेकिन मनोविज्ञान में हम मात्र व्यक्तित्व के बाह्य गुणों का व्यक्तित्व नहीं कहते वरन व्यक्तित्व में व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक गुणों का समावेश किया जाता है।

व्यक्तित्व को स्पष्टतः समझने के लिए उसकी परिभाषाओं को जानना जरूरी है।

### 14.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएँ

- Child 1968 - व्यक्तित्व से तात्पर्य कमोबेश उन स्थायी आन्तरिक कारकों से होता है, जो व्यक्ति के व्यवहार को एक समय तक संगत बनाता है तथा उन व्यवहारों से भिन्न करता है जिसे तुल्य परिस्थितियों में व्यक्त करता है।
- Eysenck 1972- व्यक्ति की अभिप्रेरणात्मक व्यवस्थाओं का व्यक्तित्व सापेक्ष रूप में वह स्थिर संगठन है जिसकी उत्पत्ति जैविक अर्न्तनोदों सामाजिक तथा भौतिक वातावरण की अन्तःक्रिया के फलस्वरूप होती है।

- J.P.Guildford 1960- व्यक्तित्व शीलगुणों का एक समन्वित पैटर्न है।
- Allport (1937)- व्यक्तित्व व्यक्ति के उन मनोवैज्ञानिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया है जो निम्न है:-

परिभाषाओं के आधार पर व्यक्तित्व की विशेषताएँ -

1. मनोवैहिक तंत्र (Psychophysical system) व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसमें शारीरिक तथा मानसिक दोनों तंत्र होते हैं। यह दोनों तंत्र एक दूसरे से पूर्णतया अलग होते हुए एक दूसरे पर आश्रित होते हैं।
2. गत्यात्मक संगठन (Dynamic organization) गत्यात्मक संगठन से तात्पर्य यह है कि मनोशारीरिक तंत्र के विभिन्न तत्व, आदत, शीलगुण आदि एक दूसरे से सम्बन्धित होकर संगठित रहते हैं और इसमें परिवर्तन भी होता रहता है।
3. संगतता (Consistency) व्यक्तित्व में कमोवेश स्थायित्व रहता है साथ ही व्यवहार में निरन्तरता भी बनी रहती है।
4. वातावरण में अपूर्व समायोजन का निर्धारण (Determination of unique adjustment to environment) प्रत्येक व्यक्ति में मनोशारीरिक गुणों का एक गत्यात्मक संगठन पाया जाता है कि उसका व्यवहार वातावरण में अपने-अपने ढंग का अपूर्व होता है।

#### 14.5 व्यक्तित्व के प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकार बताये हैं।

1. **हिप्पोक्रेटस का वर्गीकरण** : सर्वप्रथम हिप्पोक्रेटस ने व्यक्तित्व के चार प्रकारों का वर्गीकरण किया है। हिप्पोक्रेटस के अनुसार व्यक्ति के शरीर में चार प्रकार के द्रव्य पाये जाते हैं।
  - i. पीलापित्त (Yellow bile) पीले पित्त प्रधान व्यक्तियों का स्वभाव या चित्त प्रकृति चिड़चिड़ा होता है तनक मिजाज होते हैं। तथा गुस्सैल प्रकार के होते हैं।
  - ii. काले पित्त (Black bile) काले पित्त प्रधान व्यक्तियों का स्वभाव उदास व विषादी प्रकार का होता है विषादी व्यक्ति निराशावादी होते हैं।
  - iii. रक्त प्रधान पित्त (Blood bile) रक्त प्रधान व्यक्तियों का स्वभाव प्रसन्नतापूर्ण एवं खुशमिजाज, दृष्टिगोचर होता है इस प्रकार के व्यक्ति आशावादी व उत्साही होते हैं।

iv. कफ प्रधान (Phlegm) कफ प्रधान व्यक्तियों का स्वभाव षान्त और निष्क्रिय प्रकार का होता है इसमें भाव शून्यता पाई जाती है।

2. क्रेश्मर का वर्गीकरण : जर्मन मनोचिकित्सक क्रेश्मर (1925) ने शारीरिक गुणों के आधार पर चार प्रकार के व्यक्ति बताये।

- i. स्थूलकाय प्रकार (Pyknic type) इस प्रकार के व्यक्ति छोटे-मोटे स्थूलकाय व गोल प्रकार के होते हैं चित्तप्रकृति की दृष्टि से ये लोग मिलनसार, प्रशन्नचित्त तथा मित्रता वाले होते हैं।
- ii. कृशकाय प्रकार (Asthenic type) इनका शरीर दुबला पतला होता है लेकिन कद की दृष्टि से अधिक लम्बे होते हैं ये लोग आत्मकेन्द्रित तथा शान्त स्वभाव के होते हैं व एकान्तप्रिय तथा अर्न्तमुखी प्रकार के होते हैं।
- iii. पुष्टकाय प्रकार (Athletic type) ये लोग हष्ट-पुष्ट प्रकार के होते हैं इनके स्वभाव में जोश तथा साहस बहुत दिखाई देता है।
- iv. मिश्रितकाय प्रकार (Dysplastic type) इस प्रकार के व्यक्तियों में उपर्युक्त तीनों प्रकार के व्यक्तित्व के शारीरिक-मानसिक लक्षण पाये जाते हैं।

3. शेल्डन का वर्गीकरण: शेल्डन ने शारीरिक बनावट के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये।

- i. एण्डोमर्फ़ी (Endomorphy) इस प्रकार के व्यक्ति मोटे एवं नाटे होते हैं और इनका शरीर गोलाकार दिखता है इस प्रकार के शारीरिक गठन वाले व्यक्ति आराम पसंद, खुशमिजाज तथा सामाजिक तथा खाने-पीने की चीजों में रूचि दिखलाते हैं।
- ii. मेसोमर्फ़ी (Mesomorphy) इस प्रकार के व्यक्तियों का शारीरिक गठन हष्ट-पुष्ट एवं सुडौल होता है, इनमें जोखिम तथा बहादुरी का कार्य करने की तीव्र प्रवृत्ति, आक्रमकता आदि गुण पाया जाता है।
- iii. एक्टोमर्फ़ी (Ectomorphy) इस प्रकार के व्यक्ति दुबले पतले एवं लम्बे होते हैं, ऐसे व्यक्तियों को अकेला रहना तथा लोगों से कम मिलता जुलना अधिक पसंद आता है।

मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर- कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का अध्ययन मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर किया है इसमें युंग, आईजेक एवं गिलफोड प्रमुख हैं।

4. युंग के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकार : युंग ने मुख्यतः दो प्रकार बताये हैं -

- i. बर्हिमुखी व्यक्तित्व (Extrovert Personality) इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति समाजवादी, यथार्थवादी, व्यवहारकुशल, भावप्रधान, संकोचरहित, भौतिकवादी, अधिक वाल शक्ति वाले, कार्यशील वर्तमान को महत्त्व देने वाले, शीघ्र निर्णय लेने वाले तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण वाले होते हैं।



- ii. अन्तर्मुखी (Introvert Personality) इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति संकोची, विचार प्रधान, एकांतप्रिय, कम व्यवहार कुशल आदर्शवादी, देर से निर्णय लेने वाले आत्मगत कोण वाले, कम वाक शक्ति वाले तथा भविष्य को महत्त्व देने वाले होते हैं।
- iii. उभयमुखी व्यक्तित्व (Ambivert Personality) आधुनिक मनोवैज्ञानिक ने युग के व्यक्तित्व के दो प्रकारों की आलोचना करते हुए कहा कि अधिकांशतः लोगों में दोनों प्रकार के गुण पाये जाते हैं और उन्हें उभयमुखी कहा गया है।

#### 14.6 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक

उपरोक्त विवेचन से व्यक्तित्व का अर्थ स्पष्ट हो जाता है लेकिन जब तक हम व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों को नहीं जान पाते तब तक व्यक्तित्व के बारे में समुचित जानना मुश्किल है, हम यह जानते हैं कि व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक घटना उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करती है।

##### 1) जैविक आधार-

जैविक कारक से तात्पर्य जैसे कारकों से होता है जो आनुवांशिक होते हैं जो जन्म या जन्म से पहले गर्भधारण के समय से ही व्यक्ति में मौजूद होते हैं तथा व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। जीवविज्ञानी मानते हैं कि व्यक्तित्व को प्रभावित करने में शरीर रचना प्रमुख होती है, उनका मानना है कि शारीरिक विशेषताओं के अनुसार ही व्यक्ति अपनी विभिन्न परिस्थितियों में अनुकूल करता है इस प्रकार अनेक विद्वान आज भी व्यक्ति की सफलता/असफलता को शरीर रचना से सम्बन्धित मानते हैं। जीववादी व्यक्तित्व को प्रभावित करने में शरीर रचना के योगदान में वंशानुक्रम, नाडीतंत्र, अन्तःश्रावी ग्रन्थिया और बौद्धिक योगिता के महत्त्व को स्वीकारा है।

- a) वंशानुक्रम-वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बच्चा अपने माता-पिता के गुणसूत्र तथा वाहकाणुओं;हमदमेद्धे द्वारा विभिन्न शारीरिक व मानसिक विशेषतायें प्राप्त करता है शारीरिक रचना से सम्बन्धित ये शीलागुण वंशानुगत होते हैं। जैसे- प्रायः देखा गया है कि लम्बे माता-पिता के बच्चे लम्बे तथा गोरे माता-पिता के बच्चे गोरे होते हैं। कभी-कभी बच्चों की शारीरिक रचना अपने माता-पिता से न मिलकर पूर्वजों से भी मिलते हैं। एक व्यक्ति गोरा लम्बा सुस्त मेहनती आकर्षक भद्रा, मूर्ख,बुद्धिमान आदि कैसा होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि अपने वंशानुक्रम में किस प्रकार के जीन प्राप्त हुए हैं।
- b) नाडीतंत्र- नाडीतंत्र का कार्य शरीर रचना को गति देने के साथ विचारों एवं आदतों का निर्माण करना है व्यक्ति का केन्द्रीय नाडीतंत्र तीन भागों में विभक्त है।
- c) मस्तिष्क व्यक्ति को विचार करने की क्षमता देने एवं शरीर को क्रियाशील बनाये रखने का काम करता है जीवविज्ञानी मानते हैं कि अगर व्यक्ति में बुद्धि अधिक है तो समायोजन करने की क्षमता भी अधिक होगी।

- d) रीढ़ सम्बन्धी तन्तु रीढ़ सम्बन्धी तन्तु शरीर की बाहरी रचना को एक विशेष स्वरूप देते हैं।
- e) सेरेब्रल कोर्टेक्स मस्तिष्क व्यक्ति को विचार करने की क्षमता देने और शरीर को क्रियाशील बनाये रखने का कार्य करता है इसका तात्पर्य यह है कि नाड़ीतंत्र ही व्यक्ति के विभिन्न अनुभवों को संचित करने और इन अनुभवों को आगामी पीढ़ियों के लिए हस्तान्तरित करने का प्रयत्न करता है।
- f) अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ-अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों का महत्व व्यक्तित्व के निर्धारण में बहुत है इससे निकलने वाला स्त्राव हारमोन्स करता जाता है और व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करता है-जैसे कण्ठ ग्रन्थि से थाईराक्सिन नाम हारमोन्स निकलता है अगर थायराक्सिन नाम हारमोन्स बचपन में ही कम हो जाता है तो व्यक्ति बौना हो जाता है। इस प्रकार विभिन्न अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ व्यक्ति को प्रभावित करती है। इस प्रकार जीवविज्ञानी मानते हैं कि व्यक्तित्व का विकास जैविक कारकों द्वारा होता है लेकिन मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि शरीर रचना एक कारक मात्र की तरह है जिन्हें सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक प्रभावित करते हैं।

## 2) सामाजिक कारक -

उपरोक्त तीनों आधारों को देखने के बाद यह कहना उचित है कि व्यक्तित्व के विकास में मात्र एक कारक को श्रेष्ठता देना अन्य कारकों की अवहेलना करना जैसा है व्यक्ति, समाज एवं संस्कृति के तीनों कारण ही मिलकर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं इसलिए किम्बल यंग ने कहा है- “ व्यक्तित्व का विकास सामाजिक सांस्कृतिक घेरे में ही काम करता है जो व्यक्ति के जैविकीय आधार पर निर्भर है।”

व्यक्ति की शारीरिक रचना केवल एक निष्क्रिय कारक है जबकि समाज व्यक्तित्व के निर्माण का सक्रिय कारक है। इसे स्पष्ट करते हुए किम्बल यंग ने लिखा है, “ समाज वह रंगमंच है जिस पर व्यक्तित्व का विकास होता है।” समाज व्यक्तित्व को जिन दो प्रमुख प्रक्रियाओं के द्वारा प्रभावित करता है, उन्हें हम सामाजिक अन्तर्क्रियाओं की प्रक्रिया तथा समाजीकरण की प्रक्रिया कह सकते हैं।

सामाजिक अन्तर्क्रियाएं व्यक्तित्व के निर्माण का महत्वपूर्ण माध्यम है। यह अन्तर्क्रियाएं मुख्यतः तीन प्रकार की होती है-1- व्यक्ति की व्यक्ति के प्रति अन्तर्क्रिया, 2- समूह और व्यक्ति के अन्तर्क्रिया, 3- एक समूह की दूसरे समूह से अन्तर्क्रिया। इन्हीं अन्तर्क्रियाओं के द्वारा व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से समायोजन करना सीखता है, उनसे अपनी अनुरूपता स्थापित करता है जो व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। वास्तव में सामाजिक अन्तर्क्रियाओं की सफलता ही व्यक्ति के समाजीकरण का आधार है। इन अन्तर्क्रियाओं की सफलता अथवा असफलता के अनुसार ही व्यक्ति की उन आदतों, मनोवृत्तियों, विचारों तथा धरणाओं का निर्माण होता है जिनकी समग्रता को हम व्यक्ति का व्यक्तित्व कहते हैं। सामाजिक अन्तर्क्रियाओं के अनुसार ही व्यक्ति को समाज में एक विशेष प्रस्थिति प्राप्त होती है। व्यक्ति अपने आरम्भिक जीवन से लेकर अन्त तक अपनी विभिन्न

परिस्थितियों के अनुसार ही अपने 'आत्म' को विकसित करता है विलियम जेम्स का कथन है कि "सामाजिक आत्म का तात्पर्य उस सामाजिक स्वीकृति से है जिसे एक बच्चा अथवा व्यक्ति अपने साथियों से प्राप्त करता है।" समाज ही वह रंगमंच है जिस पर अन्तक्रिया करके व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है। व्यक्ति की अन्तक्रिया ही यह निश्चित करती हैं कि एक व्यक्ति नेता, अनुयायी, निडर, कायर, झगड़ालू, शान्तिप्रिय, विचारवान अथवा मूर्ख में से किस तरह का व्यक्तित्व अर्जित करेगा। व्यक्ति के व्यवहार और उसकी मनोवृत्तियाँ भी एक बड़ी सीमा तक उसकी सामाजिक परिस्थितियों तथा उनसे किए गये अनुकूलन पर निर्भर होती है इस दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों में सामाजिक कारकों की भूमिका अत्यधिक प्रभावी होती है।

### 3) सांस्कृतिक आधार -

सांस्कृतिक सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व के निर्माण का आधारभूत कारक व्यक्ति का सांस्कृतिक पर्यावरण है। सांस्कृतिक पर्यावरण ही यह निश्चित करता है कि व्यक्ति में किस प्रकार की मनोवृत्तियाँ, विचार आदतें और सामाजिक मूल्यों के प्रतिनिष्ठ उत्पन्न होगी। व्यक्ति के व्यवहार-प्रतिमानों का निर्धारण भी उसकी सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर ही होता है। व्यक्ति जिस समूह में रहता है, उस समूह के सांस्कृतिक प्रतिमान ही यह निर्धारित करते हैं कि व्यक्ति अपने परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न भूमिकाओं का निर्वाह किस प्रकार करेगा, वह कितना अधिक नैतिक अथवा अनैतिक होगा, उसमें शिष्टता और सम्मान-प्रदर्शन का स्तर कैसा होगा। सांस्कृतिक कारकों को हम व्यक्तित्व एवं संस्कृति के सम्बन्ध में आगे स्पष्ट करेंगे।

### 14.7 संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध

संस्कृति का व्यक्तित्व पर व्यापक प्रभाव पड़ता है, जन्म के समय से ही बच्चा अपनी संस्कृति को सीखने लगता है वह अपने आस-पास के वातावरण से भाषा ज्ञान विश्वास रीतियाँ, मनोवृत्तियाँ सीखने लगता है। शिशु को जिस संस्कृति में रखा जाय बड़े होकर उसका व्यक्तित्व उसी संस्कृति का होकर निखरता है। इसलिए कहा गया है कि "व्यक्ति अपनी संस्कृति का आईना होता है" संस्कृति एवं व्यक्ति हमेशा एक दूसरे को प्रभावित रहते हैं अर्थात् संस्कृति व्यक्ति को और व्यक्ति संस्कृति को प्रभावित करता है।

क्रेच, क्रेचफील्ड एवं बैलक (1962)- व्यक्ति एवं संस्कृति के मध्य सम्बन्ध एक तरफा नहीं है अपितु दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है संस्कृति व्यक्ति को व्यापक रूप से प्रभावित करके समाज में स्थायित्व लाती है तथा संस्कृति की निरन्तरता बनाये रखती हैं व्यक्ति भी अपनी संस्कृति को प्रभावित करता है और इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है।

क्रेच, क्रेचफील्ड ने संस्कृति एवं व्यक्तित्व के मध्य सम्बन्ध बताने पर कहा कि व्यक्तित्व एवं संस्कृति का सम्बन्ध काफी जटिल है इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

- प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति का एक अंग ; बतमंजनतमद्ध होता है। वह सांस्कृतिक मान्यताओं के अनुसार अनुरूपता का प्रदर्शन भी करता है।
- प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति विरासत का वाहक होता है। अतः वह अपने बाद की पीढ़ियों को उससे अवगत भी कराता है ताकि सांस्कृतिक निरन्तरता बनी रहे।
- व्यक्ति संस्कृति में परिवर्तन भी करता है ताकि समकालीन परिस्थितियों के अनुरूप उसे बनाया जा सके।
- व्यक्ति आवश्यकतानुसार नवीन विचारों एवं मूल्यों की स्थापना भी करता है। इस दृष्टि से उसे संस्कृति का सृजनकर्ता(Creator) भी कहा जाता है।

व्यक्तित्व एवं संस्कृति में सम्बन्ध बताते हुए रयूटर एवं हार्ट (Reuter and Hart) ने कहा है कि “समाज मनुष्य को पशु जीवन से अवश्य अलग करता है लेकिन इस बात का निर्धारण संस्कृति ही करती है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का रूप किस प्रकार होगा।”

अर्थात् जब बच्चा जन्म लेता है वह मात्र शरीर होता है अर्थात् कच्चे माल की तरह वह जिस संस्कृति में जन्म लेता है संस्कृति उसके अनुभवों व व्यवहारों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर देती है संस्कृति में ही बच्चे का व्यक्तित्व विकसित होने लगता है। व्यक्ति को भी अगर अपनी संस्कृति में किसी प्रकार की बुराई नजर आती है तो उसमें परिवर्तन करने के लिए वह अन्य व्यक्तियों को भी प्रेरित करता है इस प्रकार व्यक्ति एवं संस्कृति लगातार एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं और यही प्रभाव संस्कृति में एक निरन्तरता बनाये रखता है, व्यक्ति अपने आगामी पीढ़ी को अपनी संस्कृति को हस्तान्तरित करता है इसलिए मानव अपनी बुद्धि विवके एवं संस्कृति के कारण निरन्तर आगे बढ़ रहा है।

यहाँ किसी एक पक्ष अर्थात् व्यक्ति या संस्कृति महत्व देना कठिन होगा क्योंकि संस्कृति से व्यक्तित्व प्रभावित होता है और व्यक्तित्व से संस्कृति। प्रत्येक व्यक्ति अपने संस्कृति का अंग है- शिशु को जन्म के समय से ही कुछ सांस्कृतिक मान्यतायें प्राप्त होती हैं वह जिस संस्कृति में पैदा हुआ है उसके नियम कानून नैतिकता प्रथायें एवं मान्यताएँ विरासत में मिलती हैं वह अपने से बड़ों को जैसा व्यवहार करते देखता है उसके अनुरूप व्यवहार करने लगता है न करने पर बचपन से दण्ड व सजा मिलती है जिससे वह अपनी संस्कृति के अनुरूप व्यवहार करने लगता है इसलिए कहा जाता है संस्कृति में अनुरूपता का गुण पाया जाता है।

- व्यक्ति सांस्कृतिक विरासत का अंग होता है- व्यक्ति एवं संस्कृति को अलग-थलग नहीं किया जाता है प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संस्कृति से विरासत में बहुत कुछ मिलता है भाषा ज्ञान अभिवृत्तियाँ, मनोवृत्तियाँ विश्वास, व्यवहार आदि और यही विरासत से वह अपने बाद की पीढ़ियों को अवगत कराता है ताकि सांस्कृतिक निरन्तरता बनी रहे।

- व्यक्ति संस्कृति में परिवर्तन भी करता है जब कभी संस्कृति परिस्थिति या मान्यताएँ समाज के अनुकूल नहीं होती है तो समकालीन परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने के लिए व्यक्ति या समूह उसमें परिवर्तन भी करता है। जैसे- सती प्रथा जैसी रूढ़िया जब संस्कृति के लिए कलंक हो गई तो कुछ गणमान्य व्यक्तियों उसके खिलाफ आवाज उठाई और समाज तथा सरकारों को उसके विरुद्ध कानून बनाना पड़ा इस प्रकार समय-समय पर संस्कृति में आई कुरीतियों को दूर कर व्यक्ति संस्कृति में परिवर्तन लाते हैं।
- व्यक्ति आवश्यकतानुसार नवीन विचारों एवं मूल्यों की स्थापना करता है- प्रत्येक समूह या समाज की अपनी सांस्कृति होती है व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार नये विचारों एवं मूल्यों को स्थापित भी करते हैं। जैसे उत्तराखण्ड की धरती पर लगातार हो रहे पेड़ों के कटान के पश्चात व्यक्तियों ने यह सोचना प्रारम्भ किया कि यह उनके जीवन व उनकी आने वाली पीढ़ी के जीवन के लिए नुकसानदायक है, ऐसी स्थिति में, कुछ समाज सुधारकों ने वृक्षों को लगाने के लिए उसे वैवाहिक संस्कार में जोड़ना प्रारम्भ किया और यह निश्चित किया कि दूल्हा-दुल्हन शादी के बाद वृक्षारोपण करेंगे, जिसे दुल्हन की याद में उसके मायके वाले सुरक्षित रखेंगे यह संस्कृति का एक हिस्सा होने लगा ओर उत्तराखण्ड के कई गांवों में यह एक प्रथा के रूप में संस्कृति का हिस्सा बन गया अतः हम कह सकते हैं कि आवश्यकतानुसार नये विचारों एवं मूल्यों को स्थापित किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं और एक दूसरे के बगैर दोनों ही अर्थात संस्कृति एवं व्यक्तित्व अस्तित्वविहीन है। इसलिए दोनों के सम्बन्धों को समानता के परिपेक्ष्य में देखना उचित होगा।

#### 14.8 व्यक्तित्व विकास पर संस्कृति का प्रभाव

प्रत्येक समूह या समाज की अपनी मान्यताएँ होती है मानव को उन मान्यताओं के अनुरूप ही व्यवहार करना पड़ता है ऐसा न करने पर समूह तथा समाज व्यक्ति को दण्ड, आलोचना एवं तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। चूंकि शिशु जब पैदा होता है तो उसे मानव निर्मित पर्यावरण मिलता है। उसी पर्यावरण में वह जीवन जीने का सलीका सीखता है, यह पर्यावरण ही उसकी संस्कृति होती है। व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन संस्कृति से होकर गुजारता है अर्थात कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित करती रहती है। इन कारकों एवं तथ्यों की विवेचना निम्न प्रकार की गई है।

##### 1. पालन पोषण की विधियों का व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव -

पालन पोषण की विधि एक विशेष सांस्कृतिक तत्व है जिसका व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। बच्चे के जन्म के बाद पालन पोषण एवं प्रशिक्षण देने का कार्य माता-पिता एवं पारिवारिक सदस्यों का होता है। बच्चे की खान-पान की आदतें, मल-मूत्र त्याग, शिष्टाचार, उत्तरदायित्व आदि सभी तरह का प्रशिक्षण पालन-पोषण से सम्बन्धित है इस सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिकों ने कई अध्ययन किये हैं। बॉर्नफेन ब्रेनर

(1970) में अपने अध्ययन में पाया कि यदि माता-पिता अपने बच्चों से कम सम्पर्क रखते हैं तो उनमें आत्मनियंत्रण की कमी आ जाती है।

श्रीमती मीड ने आरापेश जनजाति के अध्ययन के आधार पर मानव व्यक्तित्व पर पालन-पोषण के प्रभावों को स्पष्ट किया है इस जनजाति में बच्चों को बचपन से ही बड़ी कोमलता से पाला जाता है, ये लोग बच्चों की भावनाओं एवं आवश्यकताओं के प्रति सदैव जागरूक रहते हैं। इसी कारण इस जनजाति के लोगों में दया, प्रेम सहानुभूति, एवं मृदुलता के गुण अधिक पाये जाते हैं जबकि मुण्ड गुमार जनजाति में बच्चों के पालन पोषण पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया जाता है, इन बच्चों में आक्रमकता, ईर्ष्या, कठोरता अधिक पायी जाती है।

उपरोक्त अध्ययनों से स्पष्ट है कि समाज अपने बच्चों के पालन पोषण में जिस प्रकार की संस्कृति को अपनाता है व्यक्तित्व का विकास उसी प्रकार होता है।

## 2. भाषा एवं व्यक्तित्व -

भाषा अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण माध्यम है, व्यक्ति अपने विचार, भावनाएँ, कला, साहित्य एवं सृजन आदि सभी कुछ बताने के लिए भाषा को प्रयोग करता है। भाषा जितनी सुस्पष्ट एवं निपुण होगी व्यक्तित्व के विकास पर उसका उतना सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। एक समुदाय के लोगों को दूसरे समुदाय से जोड़ने में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बच्चा जब बोलना प्रारम्भ करता है सबसे पहला सम्पर्क उसका भाषा से होता है भाषा जितनी कोमल व मधुर होती है, व्यक्तित्व का विकास उतना ही प्रभावशाली होता है इसलिए हम कह सकते हैं कि भाषा संस्कृति का अभिन्न अंग है।

## 3. संस्थाएँ एवं व्यक्तित्व -

प्रत्येक संस्कृति में सामाजिक, पारिवारिक आर्थिक एवं राजनैतिक संस्थाएँ होती हैं इन संस्थाओं के नियम एवं मानकों को मानने की सभी व्यक्तियों से उम्मीद की जाती है सभी संस्थाएँ व्यक्तित्व को हर पल प्रभावित करती है। संस्थाओं के नियमानुसार ही व्यक्तित्व में सहयोग एवं संघर्ष की मनोवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। उदाहरण-जैसे विवाह एक संस्था है, किसी समूह में एक विवाह प्रचलित होता है, और कई समूहों में बहुपति एवं बहुपत्नी का विवाह प्रचलन में है। जहाँ एक पति या पत्नी के विवाह का चलन है वहाँ के समूह के लोगों का व्यक्तित्व दूसरे समूह या समाज से भिन्न होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तमाम तरह की संस्थाएँ चाहे वो आर्थिक हो या राजनैतिक अथवा पारिवारिक व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं।

## 4. परम्पराएँ एवं व्यक्तित्व -

परम्पराएँ व्यवहार के मान्य तरीकों को घोटक है, सामान्यतः परम्पराओं का सम्बन्ध एक समुदाय की सभी आदतों विचारों से होता है जो दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता है परम्पराओं से हम यह जान जाते हैं कि एक

निश्चित परिस्थिति में व्यक्ति कैसा व्यवहार करेगा। परम्पराओं के पीछे अनेक पीढ़ी के अनुभवों पर सामाजिक सहमति होती है जो व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण करती हैं और उसकी इच्छाओं को समाज के मान्य तरीके द्वारा पूरा करती हैं जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व सन्तुलित एवं समायोजित रह सके। परम्परायें संस्कृति का महत्वपूर्ण भाग होती हैं, भारत के हर सम्प्रदाय या समूह की अपनी अलग-अलग परम्पराएँ हैं यही परम्परायें व्यक्तित्व में विशिष्टता का गुण पैदा करती हैं और समूह या समाज को भी सामूहिक मनोबल प्रदान करती हैं।

### 5. धर्म एवं नैतिकता का व्यक्तित्व पर प्रभाव -

जन्म लेते ही बच्चा मानव निर्मित वातावरण में प्रवेश करता है जहाँ भौतिक (मकान, फर्नीचर, आदि) तथा अभौतिक संस्कृति(धर्म प्रथा, विश्वास आदि) उसे घेरे रहते हैं। धर्म का सम्बन्ध आध्यात्मिक शक्ति से है जो समस्त प्राणी जगत की सेवा करने एवं कर्तव्यनिष्ठ बने रहने की प्रेरणा देती है, धर्म के द्वारा व्यक्ति संसारिक निराशाओं से बचकर अपने कर्तव्य की दिशा में आगे बढ़ने की कोशिश करता है तथा गलत कार्य करने पर अलौकिक शक्ति द्वारा दण्ड दिये जाने का भय भी उसमें बना रहता है। नैतिकता का सम्बन्ध मनुष्य के आन्तरिक भावना से है जो उचित एवं अनुचित का भेद कराती है। नैतिकता व्यक्ति में ईमानदारी पवित्रता एवं सदगुणों के अनुसार चलने की प्रेरणा देता है। धर्म एवं नैतिकता दोनों ही व्यक्ति के व्यक्तित्व में सदगुणों, अच्छे आचरण एवं आदर्शों का विकास करते हैं। बच्चा जिस परिवार में जन्म लेते हैं वह किसी धर्म का अनुयायी होता है बच्चा उसी धर्म को मनने लगता है बड़े होने के बाद व्यक्ति अन्य धर्मों को समाज में देखता है और उनसे सीखता है। धर्म में मात्र श्रद्धा का ही भाव नहीं होता वरन् भय भी उसमें शामिल होता है इसी कारण मानव सामान्यतः धर्म की अवहेलना नहीं करता। इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्म नैतिकता मिलकर व्यक्ति के व्यवहारों को नियन्त्रित एवं सन्तुलित करते हैं इस प्रकार के मिश्रित व्यक्तित्व समाज के लिए आदरणीय होते हैं ओर लोग उनका अनुकरण करते हैं। जैसे- विवेकानन्द अतः स्पष्टतः कहा जा सकता है कि धर्म एवं नैतिकता संस्कृति के महत्वपूर्ण घटक हैं और व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

### 6. प्रथाएँ एवं व्यक्तित्व -

व्यक्तित्व के विकास में प्रथाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। समाज द्वारा मान्यता प्राप्त ऐसी जनरीतियाँ जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है तथा जिन्हें समूह कल्याण के लिए आवश्यक समझा जाने लगता है, उन्हीं को हम प्रथाएँ कहते हैं। प्रथाएँ सीखने की प्रक्रिया को सरल बनाती हैं ओर सीखने की प्रक्रिया ही व्यक्तित्व के विकास की आधारशिला है। सामाजिक समस्याओं का समाधान करने के लिए व्यक्ति उन्हीं क्रियाओं को चुनता है जो उसके लिए उपयोगी होती हैं। ऐसी क्रियाएँ जब किसी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रहती हैं तब वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होने लगती हैं। यही क्रियाएँ धीरे-धीरे प्रथा का रूप ले लेती हैं।

### 7. लोकाचार एवं व्यक्तित्व -



“लोकाचारों कार्य करने के वे सामान्य तरीके हैं जिन्हें जनरीतियों की अपेक्षा अधिक सही और अधिक उचित समझा जाता है तथा जिनकी अवहेलना करने पर व्यक्ति को अधिक निश्चित रूप से कठोर दण्ड दिया जाता है। “लोकाचार में जनकल्याण की भावना निहित होती है तथा यह एक सामाजिक आदत के रूप में स्थापित हो जाते हैं।“ लोकाचार सकारात्मक भी होते हैं और नकारात्मक भी। सकारात्मक लोकाचार जीवन में उचित समझे जाने वाले व्यवहारों की प्रेरणा देते हैं। उदाहरण के लिए, सच बोलना, ईमानदारी रखना तथा परिश्रम करना आदि सकारात्मक लोकाचार हैं। नकारात्मक लोकाचार वे होते हैं जो व्यक्ति को अनुचित व्यवहार करने से रोकते हैं। जैसे-चोरी न करना, भीख न माँगना, झूठ न बोलना आदि। वास्तविकता यह है कि लोकाचार जनप्रिय विचारों, दृष्टिकोणों और आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः इन्हें अपनाने का अर्थ व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करना होता है।

### 8. सामाजिक मान्यताएँ एवं व्यक्तित्व -

प्रत्येक समाज या समूह चाहे व आधुनिक हो या जनजातिय, अपराधिक हो या पुरातनपंथी उस समूह के अपने निश्चित मान्यतायें होती हैं और उस समाज समूह से उन मान्यताओं को अपनाने की आशा की जाती है नहीं अपनाने पर उन्हें दण्ड एवं तिरस्कार दिया जाता है सामाजिक मान्यतायें व्यक्ति के व्यक्तित्व में उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करती हैं इस प्रकार संस्कृति एक निश्चित स्थितियों में मानक व्यवहार अपनाने की सीख देकर अपने समूह व समाज को व्यवस्थित जीवन प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सांस्कृतिक कारण भी व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं-

उपरोक्त तथ्यों से हम जान चुके हैं कि संस्कृति विभिन्न प्रकार जैसे- धर्म, भाषा, नैतिकता, परम्परायें, प्रथायें आदि से व्यक्तित्व को लगातार प्रभावित कर सिकतित करती हैं बच्चा बचपन से ही अपने आस-पास के परिवेश से सीखने लगता है संस्कृति प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तरीके से उसके व्यक्तित्व को विकसित करती है और एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में उसे जीना सिखाती है, संस्कृति उसके व्यक्तित्व में इस प्रकार रची-बसी होती है कि उसको अलग से देखना मानव के लिए मुश्किल कार्य होता है अतः हम कह सकते हैं कि संस्कृति व्यक्तित्व का विकास ही नहीं करती वरन् व्यक्तित्व का निर्माण भी कर देती है।

- संस्कृति व्यक्ति में उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करती है उदाहरण-जैसे भारतीय संयुक्त परिवारों में बच्चों को कठोर अनुशासन में रखा जाता है तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए तरह-तरह का प्रशिक्षण दिया जाता है इसी के परिणामस्वरूप भारत में अपने माता-पिता, भाई-बहनों या पारिवारिक सदस्यों के सन्दर्भ में उत्तरदायित्व की भावना जितनी अधिक पाई जाती है वह यूरोप के लोगों में देखने को नहीं मिलती है।



- कष्ट सहने की क्षमता सभी व्यक्तियों के जीवन में सुख-दुख दोनों ही आते हैं। व्यक्ति के जीवन में आये कष्टों से जो जितनी सहनशीलता व निडरता से सह लेता है उसका व्यक्तित्व उतना ही सहनशील बन जाता है।

प्रो० वुडवर्थ- के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है “ सामान्य अमेरिकनों की तुलना में वहाँ के रेड इण्डियन जनजाति के लोगों में कष्ट सहने की क्षमता अधिक होती है इसका कारण रेड इण्डियन की वह संस्कृति है कि वह अपने बच्चे को आरम्भ से ही तरह-तरह के कष्टों को सहन करने का अभ्यास कराते हैं।

इसी तरह भारतीय संस्कृति में भी सुख-दुख में समान बने रहने व सहनशील बने रहने की सीख दी जाती है जो उनके व्यक्तित्व में दिखाई देता है।

### 9. मनोवृत्तियों का निर्माण –

व्यक्ति के मानसिक झुकाव को मनोवृत्ति कहा जाता है अर्थात् विचारों, परिस्थितियों, ईच्छाओं, वस्तुओं आदि के सन्दर्भ में व्यक्ति किन वस्तु परिस्थितियों व विचारों की ओर समर्पित होता है यही उसकी मनोवृत्ति कहलाती है। मनोवृत्तियों से ही व्यवहार का निर्धारण होता है बचपन से ही बच्चा जिस संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है वैसा ही व्यवहार उसका दिखाई देता है। जैसे- गोरे अमेरिकन बच्चों को प्रारम्भ से ही नीग्रो के प्रति घृणा करना सिखाया जाता है। वह नीग्रो के मिलने पर वैसी ही मनोवृत्ति जाहिर करते हैं। वास्तव में संस्कृति अनेक लोक गाथाओं, पौराणिक गाथाओं से आरम्भ से ही बच्चों को शिक्षा देती है जिसके द्वारा समूह, समाज, देश व दुनिया के बारे में बच्चों में तरह-तरह की मनोवृत्तियों का विकास हो जाता है। मनोवृत्तियाँ यह निर्धारित करती हैं कि व्यक्ति का व्यक्तित्व उदार होगा या संकीर्ण, स्वार्थी होगा या दयालु निडर होगा या कायर, इन मनोवृत्तियों का निर्धारण समाज या समूह का सांस्कृतिक स्वरूप करता है।

### 10. सम्मान प्रदर्शन-

व्यक्ति की एक प्रमुख विशेषता अन्य लोगों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना है प्रत्येक संस्कृति अपने समूह या सामज के लोगों को दूसरों का सम्मान करना सीखाती है। जैसे-भारतीय संस्कृति पैर छूकर, हाथ जोड़कर, अथवा खड़े होकर दूसरों का सम्मान करना सीखाती है जबकि अफ्रीका की मसाई जनजाति किसी के प्रति स्नेह अथवा सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उस पर थूकना अच्छा समझती है, जबकि हमारी संस्कृति में थूकना घृणित व्यवहार माना जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक समूह/समाज संस्कृति का सम्मान प्रदर्शित करने का तरीका अलग-अलग होता है और उसी के अनुसार व्यक्तित्व का विकास होता है यही अलग-अलग संस्कृति के तरीके हर समाज में विभिन्नता एवं विषिष्टता का गुण उत्पन्न करते हैं।

### 11. संस्कृति व्यवहारों का निर्धारण करती है -

कोई व्यक्ति घर में पिता,पति एवं भाई हो सकता है कार्यालय में उसकी भूमिका कर्मचारी की हो सकती है- अलग-अलग परिस्थितियों में तरह-तरह का व्यवहार करना संस्कृति ही सीखाती है कि पिता को पुत्र या पुत्री से

कैसा व्यवहार करना चाहिए। पति के रूप में उसे कैसा होना चाहिए साथ ही समाज या कार्यालय में उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए या किसी नेता के अपने अनुयायियों के साथ कैसा बर्ताव रखना चाहिए- वे तमाम तरह की भूमिकायें व्यक्तित्व के व्यवहार का निर्धारण करते हुए उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि संस्कृति के प्रतिमानों में हम सभी तरह के विश्वास मनोवृत्तियों प्रथायें धर्म नैतिकता परम्पराओं, समाजीकरण एवं उत्तरदायित्व की भावनाओं आदि सभी विशेषताओं को सम्मिलित करते हैं ये सभी विशेषतायें अथवा गुण व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास के वास्तविक आधार हैं।

#### 14.9 सारांश

व्यक्तित्व के विकास पर संस्कृति का प्रभाव जन्म से ही पड़ता है जन्म से ही बच्चा जिस संस्कृति में पैदा होता है वह संस्कृति उसके व्यक्तित्व को आकार देने लगती है संस्कृति में व्याप्त भाषा ज्ञान परम्परायें विश्वास अभिवृत्ति प्रथायें आदि तमाम घटक हर पल व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं और यह प्रभाव जीवन पर्यन्त तक चलता रहता है। लेकिन यहाँ यह कहना भी समीचीन होगा कि व्यक्तित्व भी संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है व्यक्तियों को संस्कृति में अगर कुरीति दिखाई देती है तो वह उसमें परिवर्तन करके समाज को नई दिशा भी देता है। इस प्रकार व्यक्ति एवं संस्कृति हमेशा एक दूसरे पर आश्रित भी होती है संस्कृति से व्यक्तित्व का निर्माण होता है और व्यक्तित्वों से संस्कृति को नई दिशा प्राप्त होती है अतः हम कह सकते हैं कि संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध अटूट है। ये एक दूसरे के पूरक हैं प्रस्तुत सारांश में संस्कृति का व्यक्तित्व विकास में प्रभाव देखने के लिए कुछ पुरातन अध्ययन का उल्लेख किया है जो व्यक्ति एवं संस्कृति में सम्बन्ध तथा व्यक्तित्व के विकास में सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

#### 14.10 शब्दावली

- **व्यक्तित्व:** व्यक्तित्व शीलगुणों का एक समन्वित पैटर्न है।

#### 14.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- 1) व्यक्तित्व व्यक्ति के बाह्य रूप को कहते हैं।  
(अ) सत्य (ब) असत्य
- 2) व्यक्तित्व एवं संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं।  
(अ) सत्य (ब) असत्य
- 3) संस्कृति के तत्व हैं-  
(अ) भाषा (ब) धर्म एवं नैतिकता (स) परम्परायें (द) उपरोक्त सभी

4) मनोवृत्तियों का निर्धारण संस्कृति की देने है-

(अ) सत्य (ब) असत्य

5) संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती है।

(अ) सत्य (ब) असत्य

#### 14.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा० श्रीवास्तव डी०एन०- व्यक्तित्व मनोविज्ञान
2. डा० सिंह ए० के०- व्यक्तित्व मनोविज्ञान
3. डा० सिंह आर०एन०- आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान
4. डा० सिंह अरूण कुमार- समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा
5. डा० अग्रवाल पी०के, डा० पाण्डेय एस०एस०- सामाजिक मनोविज्ञान
6. कुप्पुस्वामी बी- समाज मनोविज्ञान
7. डा० मुकर्जी- युनीफाईट समाजशास्त्र
8. डा० बघेलडी०एस, डा० अग्रवाल- उच्चतर समाजशास्त्र

#### 14.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यक्ति से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।
2. संस्कृति से आप क्या समझते हैं? संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये।
3. व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभाव का विस्तृत वर्णन कीजिये।
4. जनजातीय उदाहरणों द्वारा सांस्कृतिक प्रभावों का विवेचन कीजिये।
5. टिप्पणी लिखिये- i. संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध।  
ii. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक।

---

**इकाई-15 राष्ट्रीय चरित्र:- अर्थ एवं सिद्धान्त (National Character:- Meaning and Theory)**


---

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 राष्ट्रीय चरित्र का आशय
- 15.4 राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक
  - 15.4.1 भौगोलिक कारक
  - 15.4.2 सामाजिक कारक
  - 15.4.3 आर्थिक कारक
  - 15.4.4 आर्थिक राजनैतिक कारक
  - 15.4.5 धार्मिक कारक
- 15.5 राष्ट्रीय चरित्र के सिद्धान्त
  - 15.5.1 मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त
  - 15.5.2 क्षेत्र सिद्धान्त
  - 15.5.3 शिक्षण सिद्धान्त
  - 15.5.4 प्रेरणात्मक सिद्धान्त
- 15.6 सारांश
- 15.7 शब्दावली
- 15.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 15.10 निबंधात्मक प्रश्न

---

**15.1 प्रस्तावना**


---

सामान्य तौर पर एक ऐसा व्यक्तित्व जो राष्ट्र के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करें उस व्यक्ति के व्यक्तिगत चरित्र की पहचान से राष्ट्र की पहचान का या उसके व्यवहार का आदर्श झलकता हो, ऐसे व्यक्तित्व को राष्ट्रीय चरित्र की श्रेणी में रखा जाता है जिसे हम अंग्रेजी में माडल परसैनलिटी कहते हैं।

किसी भी राष्ट्र के लिए उसका राष्ट्रीय चरित्र बहुत महत्वपूर्ण होता है अगर किसी भी देश के व्यक्तियों के समूह में कोई गुण या अवगुण प्रदर्शित होता है जो उसे हम उस देश या राष्ट्र की पहचान के रूप में प्रदर्शित करते हैं। राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में वहाँ की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक वातावरण का प्रभाव अवश्य पड़ता है। समय बीतने के साथ अगर सामाजिक आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन हो जाता है तो राष्ट्रीय चरित्र में भी परिवर्तन दिखाई देने लगता है। यहाँ यह बता दें कि राष्ट्रीय चरित्र एक जटिल अवधारणा है अतः इसे विस्तृत रूप से समझना आवश्यक है।

### 15.2 उद्देश्य

इकाई तृतीय में हम राष्ट्रीय चरित्र के अर्थ को जान पायेंगे -

- राष्ट्रीय चरित्र को समझने के लिए यह आवश्यकीय है कि हम राष्ट्र की अवधारणा को जाने, इस इकाई में राष्ट्र का अर्थ एवं उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को संक्षिप्त रूप में बताया गया है।
- राष्ट्रीय चरित्र किस प्रकार का होता है इम सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपने सिद्धान्त दिये हैं ताकि छात्र-छात्रायें राष्ट्रीय चरित्र के सामान्य व सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि को पूर्णतः जान सकें।

### 15.3 राष्ट्रीय चरित्र का आशय

राष्ट्रीय चरित्र की अवधारणा एक नवीनतम अवधारणा है जो राष्ट्र राज्यों के अस्तित्व में आने के बाद विकसित हुई जब कभी हम राष्ट्रीय चरित्र की बात करते हैं तो हम सभी के लिए 'राष्ट्र' बहुत की महत्वपूर्ण हो जाता है राष्ट्रीय चरित्र मुख्यतः दो शब्दों से मिलकर बना है राष्ट्रीय चरित्र, इसलिए आवश्यक है कि हम पहले थोड़ा राष्ट्र के बारे में जानें।

मानव के विकास के प्रारम्भिक दौर में मानव गुफाओं में रहता और आखेट कर अपना जीवनयापन करता अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसने अग्नि का आविष्कार किया और जीवन सुरक्षा के लिए खेती प्रारम्भ की। धीरे-धीरे कबिलाई समाज बना प्रत्येक कबीला अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए दूसरे कबिले पर आक्रमण करता। मध्यकालीन युग में राज्य अस्तित्व में आये राजा व प्रजा के सम्बन्ध विकसित हुए पर उसे हम राष्ट्र की संज्ञा नहीं दे सकते जैसे- अकबर के दरवार में नौ रत्न थे पर उनको राष्ट्रीय चरित्र का दर्जा नहीं दिया जा सकता क्योंकि तब तक राष्ट्र राज्य की अवधारणा विकसित ही नहीं हुई थी, या यों कहें कि आधुनिक युग के साथ औद्योगिक क्रान्ति का विकास हुआ और पूंजीवाद एवं औद्योगिक क्रान्ति के विकास के साथ ही राष्ट्र राज्यों का विकास हुआ जैसे-भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान आदि।

इस प्रकार अगर हम किसी राष्ट्र की बात करते हैं तो राष्ट्र की एक निश्चित सीमा होती है उसकी एक सरकार होती है ओर एक संप्रभुता होती है अर्थात् ये तीन कारक राष्ट्र के निर्माण में बहुत उपयोगी होते हैं। अर्थात्

एक निश्चित सीमा या भूखंड, एक सरकार व एक संप्रभुता ये तीनों मिलकर राष्ट्र राज्य का निर्माण करती है इस प्रकार राष्ट्र की एक परिभाषा दी जा सकती है।

“राष्ट्र से तात्पर्य विभिन्न प्रजातियों के व्यक्तियों के एक ऐसे समूह से होता है जिसका अपना एक स्वतंत्र भूखण्ड होता है और जिसके सदस्यों में लगभग समान विचार, भाव, भाषा एवं एक सामान्य उद्देश्य होता है”

इस प्रकार अगर हम चरित्र की बात करें तो चरित्र से तात्पर्य व्यक्ति के ऐसे व्यवहार श्रंखला से होता है जिसके संदर्भ में व्यक्ति या उसके व्यवहारों का मूल्यांकन किया जाता है। कई बार हम चरित्र को व्यक्ति के नैतिक आंकलन के रूप में भी परिभाषित करते हैं जिसके द्वारा व्यक्ति का स्वयं से, व्यक्ति का दूसरों से व्यक्तियों के समूह का, दूसरे समूह से आंकलन कर विभिन्नता देखी जाती है। इस प्रकार राष्ट्र एवं चरित्र के अर्थ समझ लेने के पश्चात् विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय चरित्र को समझना ज्यादा आसान होगा।

राष्ट्रीय चरित्र का पर्यायवाची शब्द रूपात्मक, व्यक्तित्व माना जाता है जिस तरह से किसी व्यक्ति का एक निश्चित चरित्र होता है इसी प्रकार राष्ट्र के निवासियों का भी एक निश्चित चरित्र होता है जिसे राष्ट्रीय चरित्र की संज्ञा दी जाती है वास्तव में राष्ट्रीय चरित्र से तात्पर्य विशिष्ट व्यवहार प्रतिमान, मनोवृत्तियों, विश्वास, मूल्य एवं मानकों आदि से होता है जो एक राष्ट्र के अधिकांश व्यक्तियों में पाया जाता है। अर्थात् जब राष्ट्र के अधिकांश व्यक्तियों के व्यवहारों के स्वरूप में एक विशिष्टता दिखाई देती है उनकी मनोवृत्तियों से एक राष्ट्र की छवि झलकती है। उनके मूल्य व विश्वास अपने राष्ट्र के मान्य मूल्यों एवं मानकों के समान हो तो उसे राष्ट्रीय चरित्र कहा जा सकता है।

**क्रेच एवं क्रेचफील्ड(1948)** कहा कि समाज मनोवैज्ञानिकों ने राष्ट्रीय चरित्र का प्रयोग दो अर्थ में किया है।

राष्ट्रीय चरित्र एक सांख्यिकीय सम्प्रत्यय है अर्थात् एक राष्ट्र की जनसंख्या में विभिन्न शीलगुण (जैसे विनम्रता, आक्रामकता मणता, ईमानदारी, बर्इमानी आदि) के औसत वितरण से होता है अर्थात् देश की औसत जनसंख्या में कोई विशेष गुण या व्यवहार अधिकांश रूप से पाया जाता है तो उसे उस देश की राष्ट्रीय चरित्र माना जाता है।

उदाहरणार्थ-कहा जाता है कि बिट्रेन के राष्ट्रीय चरित्र की तुलना में जर्मनी के राष्ट्रीय चरित्र में विनम्रता अधिक पाई जाती है और भारत के राष्ट्रीय चरित्र में पाश्चात्य देशों की तुलना में धार्मिकता अधिक पाई जाती है।

उपरोक्त उदाहरण किसी राष्ट्र के सामाजिक व्यवहार को प्रदर्शित कर रहा है इस प्रकार हर राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था में विशिष्ट व्यवहार एवं गुणों का सम्मुख होता है जो अपने राष्ट्रों की पहचान को भी प्रदर्शित करता है।

क्रेच एवं क्रेचफील्ड के अनुसार दूसरे अर्थों में राष्ट्रीय चरित्र से तात्पर्य किसी देश के संगठनों में सामाजिक व्यवहार के विशिष्ट प्रतिमानों से होता है इस प्रकार किसी एक देश का व्यवहार प्रतिमान लोकतांत्रिक हो सकता

है तो दूसरे देश का व्यवहार प्रतिमान निरंकुश हो सकता है। इसे समझने के लिए ऐसे भी पढ़ा जा सकता है अगर राष्ट्र में लोकतांत्रिक व्यवस्था है हर कोई अपने अधिकारों के प्रतिजागरूक है और दूसरों के अधिकारों के प्रति संवेदनशील तो इसी व्यवस्था में राष्ट्रीय चरित्र के रूप में संवेदनशीलता एवं लोकतांत्रिकता का शीलगुण अधिक पाया जायेगा। इसके विपरीत अगर देश की व्यवस्था निरंकुश है शोषण उत्पीड़न आक्रमकता ज्यादा है तो उस देश के राष्ट्रीय चरित्र में आक्रमकता एवं निरंकुशता अधिक देखने को मिलेगी।

राष्ट्रीय चरित्र के संदर्भ में उपरोक्त दोनों प्रकारों को हम अलग-अलग परिपेक्ष्य में नहीं देख सकते ये दोनों प्रकार एक दूसरे से गुथे हुए प्रतीत होते हैं। इसी संदर्भ में क्लार्डनवर्ग 1944 ने कहा है “राष्ट्रीय चरित्र के ये दोनों अर्थ ठीक हैं और वो एक दूसरे से स्वतंत्र भी नहीं हैं देश के व्यक्तियों के शीलगुण से सामाजिक प्रतिरूप तैयार होता है तथा सामाजिक संगठनों द्वारा भी सदस्यों के शीलगुण का प्रतिरूप निर्धारित होता है।” जैसे देश के बहुत से व्यक्ति जब अपने व्यवहार की विशेषताओं के साथ एक दूसरे मिलते हैं तो एक सभ्य समाज का निर्माण होता है और जब एक समाज या संगठन का निर्माण हो जाता है जो समाज यह तय करता है कि उसके सदस्य नियमों नैतिक मूल्यों परम्पराओं, विश्वासों आदि के लिए वो अपने सदस्यों को बाल्यकाल से ही प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक नियमों का प्रशिक्षण देते हैं ताकि उनमें उन्हें चारित्रिक गुण या शीलगुण विकसित हों। इसलिए राष्ट्रीय चरित्र को सांख्यिकीय एवं सामाजिक दोनों अर्थों में अलग-अलग देखना उचित नहीं है।

राष्ट्रीय चरित्र के लिए हमेशा यह बहस रहती है कि यह स्थायी होता है या अस्थायी मैकडूगंज 1910- ने अपनी किताब ग्रुप माईन्ट में कहा है कि राष्ट्रीय चरित्र निश्चित एवं स्थायी होता है। परन्तु समाज मनोवैज्ञानिकों एवं मानवशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि राष्ट्रीय अस्थायी एवं परिवर्तनशील होता है यह राष्ट्र भौगोलिक, सांस्कृतिक, धर्म, भाषा राजनैतिक एवं आर्थिक आदि परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित भी होता है और अस्थायी भी होता है।

#### 15.4 राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक

जैसा कि हम अपने सामान्य जीवन के देखते हैं कि विभिन्न देशों का राष्ट्रीय चरित्र अलग-अलग होता है राष्ट्रीय चरित्र के सम्प्रत्तम को ठीक से समझने के लिए आवश्यक है कि उन कारकों को जाने जिनसे किसी देश के राष्ट्रीय चरित्र प्रभावित होता है। इस संदर्भ में समाज मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों से कुछ तथ्य प्राप्त हुए हैं जो राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

##### 15.4.1 भौगोलिक कारक -

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भौगोलिक कारक प्रभावित करते हैं देश के किसी भूखण्ड, आकार, उसकी जलवायु उसकी आन्तरिक संरचना ये सभी कारक देश के चरित्र का निर्धारण करने में मदद करते हैं समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों में यह स्पष्ट किया है कि भौगोलिक वातावरण का किसी देश के राष्ट्रीय चरित्र पर प्रभाव पड़ता है।

उदाहरण- मीड 1933 ने अपने अध्ययन में पाया कि न्यू गिनिया के राष्ट्रीय चरित्र में दो तरह के विरोधी शीलगुण पाये जाते हैं जो वहां की दो प्रकार की भौगोलिक स्थिति के कारण है देश के एक तरह का भूखण्ड चारों तरफ से ऊँचे-2 पहाड़ों से भिन्न है इस भूखण्ड में रहने वाले लोग सहयोगी एवं शान्त प्रवृत्ति के हैं जबकि देश का दूसरा हिस्सा खुला अथवा मैदानी है वहाँ के लोगों में आक्रामकता अधिक पाई जाती है और ये श्रद्धालु अधिक हैं अतः कहा जा सकता है कि भौगोलिक कारक राष्ट्रीय चरित्र अधिक प्रभावित करते हैं।

उत्तराखण्ड के परिपेक्ष्य में भी इस तरह का वातावरण देखने को मिलता है हिमालय एवं शान्त पहाड़ों में रहने वाले सीधे सरल स्वभाव के दिखाई देते हैं जबकि मैदानी व गरम क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के व्यवहार में आक्रामकता अधिक प्रतीत हुए है हालांकि कोई प्रयोगात्मक अध्ययन नहीं हुए हैं।

#### 15.4.2 सामाजिक कारक -

सामाजिक कारकों का राष्ट्रीय चरित्र प्रभावित करने में महत्वपूर्ण योगदान होता है समाज या समूह में व्याप्त संस्कृति, पालन-पोषण का तरीका परम्परायें विश्वास अभिवृत्ति सामाजिक वातावरण आदि व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं इसलिए प्रत्येक देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार ही व्यक्तित्व विकसित होता है। किसी देश के एक से अधिक जाति के लोग रहते हैं अगर भारत को ही देखें तो भारत में विभिन्न जातियाँ रहती हैं जो विभिन्न भाषायें बोलती हैं जिनके धर्म, भाषा संस्कृति में भी विभिन्नता देखने को मिलती है। उदाहरण- भारत के राष्ट्रीय चरित्र में धार्मिकता, सहनशीलता, भाग्यवादिता देखने को ज्यादा मिलती है और यह गुण सभी प्रजातियों में पाया जाता है सांस्कृतिक विभिन्नता होने के बाद भी राष्ट्रीय चरित्र की जहाँ बात आती है तो सभी प्रजातियों में कुछ गुण समान रूप से देखे जा सकते हैं।

#### 15.4.3 आर्थिक कारक -

यदि देश आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है वहाँ उद्योग, व्यवसाय, कृषि तकनीक काफी उन्नत हैं तो वहाँ के राष्ट्रीय चरित्र में आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास व आक्रामकता ज्यादा देखने को मिलती है परन्तु यदि अविकसित देश है लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है भूख व गरीबी है तो राष्ट्रीय चरित्र में दूसरों पर निर्भरता, आत्मविश्वास की कमी तथा धार्मिक विश्वास व भाग्यवादिता ज्यादा देखने को मिलते हैं इसलिए आर्थिक सम्पन्नता के कारण अमेरिकन एवं बांग्लादेशी का राष्ट्रीय चरित्र भिन्न होगा इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आर्थिक कारणों से दो देशों के राष्ट्रीय चरित्र में भिन्नता है। आर्थिक कारण व्यक्ति के मनोविज्ञान में परिवर्तन लाता है जो राष्ट्रीय चरित्र में परिलक्षित होता है।

#### 15.4.4 आर्थिक राजनैतिक कारक -

राजनैतिक कारक देश के राष्ट्रीय चरित्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं प्रत्येक राष्ट्र की एक सरकार होती है और उसका अपना संविधान होता है अगर सरकार लोकतांत्रिक है तो उस देश के राष्ट्रीय चरित्र में उदारता, सहयोग



एवं सहभागिता ज्यादा देखने को मिलती है इसके विपरीत अगर सरकार तानाशाह तो लोगों के चरित्र में दबूपन एवं संकीर्णता की प्रधानता होती है। फिशर 1983 के अनुसार ऐसे देश के राष्ट्रीय चरित्र में आक्रामकता अधिक होती है क्योंकि वहाँ के लोगों में निराशा एवं कुंठा का स्तर अधिक होता है। उदाहरण- लिबिया के लोगों ने लम्बे समय से तानाशाही सहते हुए अपने तानाशाह गद्दाफी के खिलाफ आक्रमक प्रदर्शन किया जो उपरोक्त गुणों को प्रदर्शित करता है।

#### 15.4.5 धार्मिक कारक -

राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में धर्म भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों में अलग-अलग तरह के राष्ट्रीय गुण विकसित होते हैं धर्म के मानक मूल्य एवं विश्वास आदि व्यक्ति को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है अगर कोई धर्म अपने अनुयायियों को नियमों को सख्ती के लिए प्रेरित करता है तो उस स्थिति में उस धर्म के लोगों में कट्टरता दिखाई देगी और राष्ट्रीय चरित्र में कट्टरता के गुण दिखाई देंगे, इसी प्रकार धर्म मानवता, सहिष्णुता, उदारता के गुणों को अपनाते को प्रेरित करता है तो राष्ट्रीय चरित्र के उन गुणों की प्रधानता रहती है जैसे बौद्ध धर्म व ईसाई धर्म में मानवता के गुण ज्यादा दिखाई देते हैं क्योंकि बौद्ध, ईसाई धर्म को मानने वाले लोगों में मानवता एवं गतिशीलता का गुण ज्यादा विकसित होता है जबकि हिन्दू धर्म के मानने वाले लोगों के राष्ट्रीय चरित्र में आध्यात्मिकता, भाग्यवादिता, सहनशीलता एवं समायोजन के गुण अधिक देखने को मिलता है।

### 15.5 राष्ट्रीय चरित्र के सिद्धान्त या उपागम

राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या करने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिनमें प्रमुख निम्नांकित हैं-

#### 15.5.1 मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त -

सिग्मण्ड फ्राइड (1856-1939) का जन्म चेकोस्लाविया में हुआ 1885 में पेरिस जाकर उन्होंने न्यूरोलॉजी का अध्ययन किया वो मूलतः एक चिकित्सक थे पर चिकित्सा के दौरान रोगियों को देखते-देखते उन्हें लगा कि व्यक्ति शारीरिक रूप से अस्वस्थ नहीं होता पर मानसिक रूप से अस्वस्थ होने पर भी उसका प्रभाव शारीरिक होता है उन्होंने ब्राउन के साथ मिलकर हिस्टीरिया का अध्ययन किया फ्राइड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषणात्मक प्रत्यय मनोविज्ञान का एक चिकित्सा मनोविज्ञान का पहला व्यापक सिद्धान्त है जिसमें मानव व्यवहार की व्याख्या अतल गहराईयों को स्पर्श करती हैं। उन्होंने अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व को गति दी। व्यक्तित्व संरचना और व्यक्तित्व के विकास का वर्णन किया है चूंकी मानव को शीलगुणों का विकास मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं द्वारा नियंत्रित होता है तो व्यक्तित्व की संरचना एवं गतिकी पर हम संक्षिप्त में चर्चा कर मनोवैज्ञानिक विकास का

अवस्थाओं पर अपनी अधिक चर्चा करेंगे ताकि विद्यार्थी यह जान सके कि चारित्रिक, शीलगुणों का विकास एवं नियंत्रण के लिए कौन सी अवस्थायें प्रमुख हैं।

### मन का सिद्धान्त या व्यक्तित्व संरचना

फ्राईड का कहना है कि मस्तिष्क के विभिन्न भागों का केन्द्र मन है का प्रत्यय एक प्रकार का परिकल्पनात्मक प्रत्यय है उसके दो भाग हैं-

- **मन का गत्यात्मक पक्ष-** इसमें तीन तत्व आते हैं (क) इदम- बचपन में मानव शिशु का मन पूर्णता इड होता है अतः इड जन्मदाता व वंशानुगत हैं इड सुख के सिद्धान्त पर आधारित है यह तुरन्त सुख चाहता है उसके लिए कुछ भी करते को तैयार हो जाता है।

अहम- अहम से तात्पर्य आत्म या चेतन बुद्धि है इसका सम्बन्ध एक ओर बाह्य वास्तविकता से होता है दूसरी ओर इड से होता या व्यक्ति का ईच्छाओं की पूर्ति भौतिक एवं सामाजिक वास्तविकता के संदर्भ में करता है यह वास्तविकता के सिद्धान्त पर आधारित है।

पराहंम मानव का यह पक्ष सबसे बाद में विकसित होता है यह नैतिक पक्ष है यह इगो के उन सभी कार्यों पर रोक लगाती है जो असामाजिक व अनैतिक कार्यों पर रोक लगाता है पराहंम को नैतिकता का सिद्धान्त भी कहा जाता है यह मानव के पूर्ण सामाजिक एवं आदर्श बनाने का प्रयास करता है।

- **मन का स्थलाकृतिक पक्ष -**

फ्राईड के अनुसार विभिन्न मानसिक प्रक्रियायें तीन स्तरों पर होती है-

चेतन मन का वह भाग जिसका सम्बन्ध तुरन्त ज्ञान से है चेतना कहलाता है। व्यक्ति जिन शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं के प्रति जागरूक होता है यह चेतन स्तर पर घटित होती है।

अवचेतन फ्राईड के अनुसार यह मन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय सामग्री से होता है जिसे व्यक्ति ईच्छानुसार कभी भी याद कर सकता है। अवचेतन को विषय सामग्री को चेतन में लाने के लिए व्यक्ति को प्रयास करने पड़ने हैं और यह स्मृति के द्वारा लाई जाती है।

अचेतन अचेतन जो चेतन से परे हैं यह मन का वह भाग है जिसमें ऐसी विषय सामग्री होती है जिसे व्यक्ति याद करके चेतना में लाना भी चाहे तो भी नहीं ला सकता है अचेतन मन में वह विचार व ईच्छाएँ होती हैं जो अनैतिक होती है। ऐसा नहीं है कि ये विषय सामग्री चेतना में आने का प्रयास नहीं करती। कई बार रूप से बदलकर चेतना में आती है अचेतन में तर्क एवं नैतिकता का कोई स्थान नहीं होता है।

हम पहले भी बता चुके हैं कि मानव का व्यवहार एवं शीलगुणों का विकास कुछ प्रमुख अवस्थाओं द्वारा होता है उसके लिए फ्राईड ने एक सिद्धान्त दिया है जिसकी चर्चा हम कर रहे हैं।

- मनोलौगिक विकास की अवस्थायें -

फ्राईड ने कहा है कि मनुष्य का व्यवहार एवं उसके चारित्रिक गुणों का विकास एवं नियन्त्रण मनोलौगिक अवस्थाओं द्वारा होता है फ्राईड ने मानव विकास में उसके प्रारम्भिक वर्षों को अधिक महत्व दिया है उनका यह सिद्धान्त केवल वयस्कों के मनोविश्लेषण पर आधारित नहीं है बल्कि बाल्यावस्था के घरेलू मानव सम्बन्धों के निरीक्षण पर भी आधारित है फ्राईड मनोलौगिक विकास की पाँच अवस्थायें बताई जो निम्न हैं :-

- (i) **मुख्य अवस्था (Oral Stage)**- यह अवस्था जन्म से 18 माह तक की अवस्था है इस अवस्था को दो भागों में बांटा गया है
  - **मुख्य चूषण (Oral Sucking)**- यह जन्म से लेकर 8 माह की अवस्था है इस अवस्था में बच्चा सुख की अनुभूतियाँ स्तनपान द्वारा करता है। फ्राईड के अनुसार बालक की काम शक्ति की सन्तुष्टि, मुख, होंठ, जीभ के द्वारा चूसने से एवं निगलने की क्रिया से प्राप्त होती है इस अवस्था में बालक का पूर्ण शरीर इदम् का बना होता है इस अवस्था में व्यक्तित्व विकास का मुख्य निर्धारक इडिपस ग्रन्थि की उत्पत्ति का सूत्रपात होता है फ्राईड का विचार है कि जब माँ बच्चे को तिरस्कृत भाव से स्तनपान कराती है या जब वह बच्चे का स्तनपान एकाएक छुड़ा देती है तो शिशु पर इस प्रकार का मनोवैज्ञानिक आघात उसके व्यक्तित्व में विकृति उत्पन्न करता है ऐसे बच्चों में बड़े होने पर उनमें मनोविफलता, उत्साह विषाद, आदि चारित्रिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।
  - **मुख्य दशन अवस्था (Oral biting stage)**- यह छः माह से अठारह माह तक की अवस्था है इस उम्र में दाँत निकलने लगते हैं दाँत निकलने पर बच्चा आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित कर सकता है इस अवस्था में लिबिडो का क्षेत्र दाँत व जबड़े होते हैं इस उम्र में बच्चे का व्यवहार माँ के प्रति उभयवादी होता है वह माँ से प्रेम करता है, क्योंकि माँ उसकी इच्छाओं की पूर्ति करती है बच्चा माँ से घृणा भी करता है क्योंकि कई बार माँ उस पर ध्यान नहीं दे पाती है। डेढ़ वर्ष की अवस्था तक बालक में इगो का विकास तेजी से होने लगता है बच्चा यह स्वीकार करने लगता है कि वह अपने माता-पिता का केन्द्र नहीं है बालक का व्यवहार सुख के नियम की अपेक्षा वास्तविकता के नियम से नियन्त्रित होता है उसे बाह्य वातावरण की वास्तविकता का ज्ञान होने लगता है।
- (ii) **गुदीय अवस्था (Anal Stage)**- यह आठ माह से 4 वर्ष तक की आयु की अवस्था है इसमें बालक की यौन सन्तुष्टि का केन्द्र गुदा होता है इस अवस्था को दो भागों में बांटा गया है।
  - **गुदा निष्कासन अवस्था (Anal Expulsivestage)**- यह आठ माह से 3 वर्ष तक की आयु की स्थिति है बच्चे को यौन सुख की प्राप्ति गुदा निष्कासन में होती है इस उम्र में उसे शौचालय का प्रशिक्षण दिया जाता है अगर शौचालय के नियमों में कठोरता उत्पन्न की जाती है तो बच्चे के मन में अपराध

भाव उत्पन्न होता है जो मानव के विकास में बाधक सिद्ध होते हैं। इस उम्र में बच्चा दो लिंगों में अन्तर समझने लगता है और बालक यह कल्पना करता है कि वह बड़े होकर पिता बनेगा और लड़की यह कल्पना करती है कि वह बड़ी होकर माँ बनेगी अर्थात् इंडिपेंडेंट काम्प्लैक्स का निर्माण इस अवस्था में शुरू हो जाता है। इसलिए इस अवस्था से अन्तर्द्वन्द भी प्रारम्भ होते हैं।

- **गुदा अवधारणा अवस्था (Anal Retentive Stage)**- एक से चार वर्ष की अवस्था होती है इस उम्र में बच्चे का अहम विकसित हो जाता है और पराहंम का विकास होने लगता है इस उम्र में उसकी यौन सन्तुष्टि में डाली गयी बाधा बाद में अनेक मानसिक रोगों के लक्षण उत्पन्न कर सकती है। जैसे-पराનોईया चरित्र दोष आदि प्रतिदिन मल-मूत्र कार्य में रूचि कब्ज, मल त्याग में आनन्द आदि सामान्य व्यवहार व्यक्ति में आगे चलकर उदात्तीकरण व्यवहार उत्पन्न करते हैं ब्राउन का मत है कि मूर्तिकार, दानी, पेण्टर आदि इस मनोरचना के व्यवहार के कारण होते हैं।

(3) **लैंगिक अवस्था (Phallic Stage)**- यह अवस्था तीन वर्ष से सात वर्ष है धन उम्र में बालक अपनी ज्ञानेन्द्रियों को छूने तथा उसके साथ खेलने में रूचि लेता है। माता-पिता द्वारा अगर जनेन्द्रिय से खलने से अत्यधिक मना किया जाय और इसे गन्दा बताया जाय तो आगे चलकर मनस्ताप एवं हिस्टीरिया आदि जैसे मानसिक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। इस उम्र में अगर उदात्तीकरण मनोरचना उत्पन्न हो जाती है तो आगे चलकर व्यक्ति कविता प्रेम अभिनय, पवित्र क्षेत्र का प्रतीक बनता है।

(4) **सुप्तावस्था (Latency Stage)**- यह 5 से 12 वर्ष तक की आयु है इस उम्र में कामजनित क्रियायें प्रायः शान्त रहते हैं और बच्चों का बौद्धिक एवं नैतिक विकास होता है इस अवस्था में पराहंम पूरी तरह विकसित हो जाता है इस अवस्था में उदात्तीकरण व प्रतिक्रिया निर्माण मनोरचना के कारण बालक के सभी व्यवहार समाज की मान्यताओं के अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं।

(5) **जननेन्द्रिय अवस्था (Genital Stage)**- यह 12 से 20 वर्ष की अवस्था है इस उम्र में यौन अंगों के विकास पूर्णता की ओर अग्रसर होता है विपरीत लिंग के प्रति रूचि एवं आकर्षण होता है मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यौन तृप्ति विषयक विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण सामान्य व्यवहार है यदि व्यक्ति काम क्रिया को तिरस्कार करता है तो समाज, कला, विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करता है।

फ्राईड द्वारा दिये गये उपर्युक्त पांचों अवस्थाओं में से प्रारम्भिक तीन अवस्थाएँ सुखीय, गुदीय, ओर लैंगिक चारित्रिक विकास में प्रमुख हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के इन प्रकारों से व्यक्तित्व में बहुत से शीलगुणों का विकास होता है आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने फ्राईड के इस सिद्धान्त का उपयोग रूपात्मक व्यक्तित्व की व्याख्या करने में किया है।

गौरर तथा रिकमैन 1949 टर्नर 1960 ने रूपतामक व्यक्तित्व (माडल परसैनलिटी) को व्याख्या मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त से किया और कहा है यहाँ के बच्चों का पालन-पोषण की प्रणाली ऐसी है कि उन पर कहा नियन्त्रण प्रारम्भ से ही रखा जाता है जिसके फलस्वरूप उनके राष्ट्रीय चरित्र में अनुशासन हठधर्मिता एवं सत्तावादी जैसे शीलगुण की प्रधानता होती है।

टर्नर 1971-ने जापनी लोगों के राष्ट्रीय चरित्र में साफ-सुथरा एवं परिश्रमी होने का कारण उनके माता-पिता द्वारा बचपन में विशेष शौचालय प्रशिक्षण देने के कारण बताया।

(सिन्हा 1979, पांडे एवं त्रिपाठी-1984) ने अपने अध्ययन में भारत के राष्ट्रीय चरित्र में भाग्यवादिता, संवेगात्मक असुरक्षा, आध्यात्मिक एवं सहनशीलता के गुणों की प्रधानता का कारण भारतीय माताओं द्वारा बच्चों के पालन-पोषण में कई तरह के अन्धविश्वास एवं उदारता की उपस्थिति बताया है उपरोक्त अध्ययनों से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त उपयुक्त हैं।

### 15.5.2 क्षेत्र सिद्धान्त -

कर्ट लेविन (1890-1947) का जन्म बर्लिन में हुआ 1914 में बर्लिन विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। 1926 में बर्लिन विश्वविद्यालय में दर्शन एवं मनोविज्ञान के प्रोफेसर संयुक्त हुए सन् 1944 में मेसाच्युशान इंस्टीट्यूट पद पर नियुक्त हुए। लेविन ने क्षेत्र सिद्धान्त का प्रतिपादन गणित की एक विशेष शाखा संस्थितविज्ञान की सहायता से किया है। राष्ट्रीय चरित्र एवं रूपतामक माडल की व्याख्या लेविन के क्षेत्र सिद्धान्त द्वारा की गई है। प्रश्न यह उठता है कि पहले हम क्षेत्र सिद्धान्त क्या है यह जाने -

क्षेत्र सिद्धान्त क्या है-

लेविन ने व्यक्तित्व की संरचना एवं शीलगुणों के विकास के सन्दर्भ में एक सूत्र दिया और कहा कि व्यवहार व्यक्ति एवं वातावरण की अन्तःक्रियाओं का परिणाम है आगे इस प्रकार हम देखते हैं कि लेविन ने व्यक्तित्व के शीलगुणों के निर्माण की सम्पूर्ण व्याख्या में वातावरण की भूमिका को प्रमुख स्थान दिया है वातावरण को दो भागों में बाँटा है-

- भौतिक वातावरण-से तात्पर्य व्यक्ति के इर्द-गिर्द के वातावरण से होता है
- मनोवैज्ञानिक वातावरण- से तात्पर्य भौतिक वातावरण से व्यक्ति में उत्पन्न चिन्तन प्रत्यक्षण भाव संवेग आदि से होता है।

कर्ट लेविन का कहना है कि दो लोगों के भौतिक वातावरण समान होने पर भी उनके मनोवैज्ञानिक वातावरण में अन्तर हो सकता है और इसके कारण चरित्र में अन्तर हो जाता है और इसके कारण चरित्र में अन्तर हो जाता है इसी कारण समाज मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि दो देशों के भौतिक वातावरण में समानता होने पर भी उनके राष्ट्रीय चरित्र में अन्तर होता है। अर्थात् भौतिक वातावरण समान होने पर भी राष्ट्र के व्यक्ति उस वातावरण के

सम्बन्ध में क्या सोचते हैं विचारते हैं इन भौतिक वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण कैसे करते हैं उनके संदर्भ में कौन से संवेदों की अभिव्यक्ति करते हैं यह व्यक्ति विशेष व राष्ट्र पर निर्भर करता है। जैसे-अमेरिका व ब्रिटेन में भौतिकवाद की प्रबलता के बाद भी दोनों के मनोवैज्ञानिक वातावरण में अन्तर है जैसे कहा जाता है कि अमेरिकन बहिर्मुखी प्रवृत्ति के होते हैं और ब्रिटेन के निवासी अर्न्तमुखी प्रकार के होते हैं।

कर्ट लेविन के सिद्धान्त के पूर्णरूपेण एक सफल सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता है। इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें भौतिक वातावरण की उपेक्षा की गई है, वास्तविकता यह है कि किसी भी देश की भौतिक समृद्धि वहाँ के लोगों में विशेष आदतों का निर्माण करती है। विशेष प्रेरणा बनती है ओर ऐसी आदतों एवं प्रेरणाओं का महत्त्व राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में होता है।

इस सिद्धान्त में राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में वर्तमान एवं भविष्य पर अधिक बल डाला गया है तथा अतीत का तुलनात्मक रूप से उपेक्षा की गई है

$$B = f(P * E)$$

B= व्यवहार (Behaviour)

f= प्रकार्य (Function)

P= वातावरण (Environment)

लेविन ने P और E को कोष्ठक रखके यह संकेत दिया है कि व्यक्ति और वातावरण का अटूट सम्बन्ध है।

जबकि समाज मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि राष्ट्रीय चरित्र को समझने के लिए अतीत की घटनाओं व अनुभवों की भूमिका प्रधान होती है।

उपरोक्त आलोचनाओं के पश्चात् क्षेत्र सिद्धान्त को परिपूर्ण सिद्धान्त मानना उचित नहीं है।

### 15.5.3 शिक्षण सिद्धान्त -

राष्ट्रीय चरित्र का यह सिद्धान्त व्यवहारवादियों के प्रयासों का परिणाम है व्यवहारवाद के संस्थापक जान बी वाटसन है लेकिन व्यवहारवाद को आगे बढ़ाने में क्लार्क, एल हल, बी एफ स्किनर, सी, टालमैन आदि मनोवैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इस सिद्धान्त के अनुसार सामान्य वातावरण तथा उसमें प्राप्त प्रशिक्षण, सीखे गये कौशल तथा आदत आदि के आधार पर ही व्यक्ति के राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिकरण के साधन जैसे माता-पिता, परिवार, स्कूल, शिक्षक, पासपड़ोस आदि से व्यक्तियों के जो सीखने का अवसर मिलता है उसकी भूमिका राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में सर्वाधिक रहती है।

इस सम्बन्ध में प्रमुख व्यवहारवादी एलवर्ट पी0बीस0 ने कहा है-“ नवजात शिशु केवल जैविक प्राणी होता है और ज्यौ-ज्यों उसका विकास होता है उसका व्यवहार बदलता जाता है मनोविज्ञान का प्रमुख कार्य यह है कि वह अध्ययन करे मानवीय व्यवहार पर समाज का क्या प्रभाव पड़ता है।” व्यवहार हमेशा जैविक तथा सामाजिक होता है और सामाजीकरण के प्रशिक्षण से ही राष्ट्रीय चरित्र में विभिन्न प्रकार के शीलगुण विकसित होते हैं।

उदाहरणार्थ- एक अमेरिकन के राष्ट्रीय चरित्र में प्रतियोगिता की भावना अधिक होती है इसका प्रमुख कारण यह है कि वहाँ का सामाजिक वातावरण ऐसा होता है जहाँ प्रत्येक क्षेत्र में कार्य प्रतियोगिता की भावना से कराये जाते हैं।

शिक्षण सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में अनुबन्धन की भूमिका भी प्रधान होती है अर्थात् राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में पुरस्कार एवं दण्ड भी महत्वपूर्ण होते हैं इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में काफी अध्ययन किये हैं।

काडीर्नर 1932 ने अपने अध्ययन में बतलाया कि यदि संस्कृति ऐसी है जिसमें बच्चों के व्यवहारों को दण्डित कर उसे सुधारने में विश्वास किया जाता है तो उसके राष्ट्रीय चरित्र में आक्रामकता, उदण्डता, उत्तरदायित्व, हीनता आदि शीलगुण अधिक पाये जाते हैं। दूसरी तरह जब संस्कृति में बच्चों के व्यवहारों को पुरूष्कृत करके उसके प्रति स्नेह एवं प्रेम भाव दिखा कर उनके व्यवहारों को उन्नत बनाने की कोशिश की जाती है तो उनके राष्ट्रीय चरित्र में आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, उदारता जैसे शीलगुण विकसित होते हैं।

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट कि कि सामाजीकरण की प्रक्रिया में पुरस्कार एवं दण्ड किसी राष्ट्र के राष्ट्रीय चरित्र में परिवर्तन करने में कितने सक्षम होते हैं यही कारण है कि आधुनिक युग में शिक्षण सिद्धान्त के अनुसार ही छोटे बच्चों के विद्यालयों में दण्ड का प्रावधान समाप्त कर उन्हें पुरस्कार देकर उनकी सीखने की क्षमता को बढ़ाया जा रहा है तांकि राष्ट्र को अच्छे नागरिक प्राप्त हों।

कुछ विद्वानों का मत है कि शिक्षण सिद्धान्त में राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या मात्र सामाजिक कारकों के आधार पर की गई है लेकिन वास्तविकता यह है कि राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में जैविक कारक भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं इस सिद्धान्त में जैविक कारकों की उपेक्षा कर उसे एक पक्षीय बना दिया गया है।

#### 15.5.4 प्रेरणात्मक सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त का आधार प्रेरणा के क्षेत्र में किये गये अध्ययन हैं इन अध्ययनों को जानने से पूर्व अभिप्रेरणा को जानें।

अभिप्रेरणा क्या है- अभिप्रेरणामानक वह जन्मजात एवं अर्जित प्रवृत्ति है जिससे वह किसी जन्मजात एवं अर्जित उद्देश्य के लिए कार्यशील रहता है और लक्ष्य को प्राप्त करने पर ही सन्तुष्ट होता है।

वुडवर्थ - “अभिप्रेरक व्यक्ति की वह अवस्था है जो उसे किसी प्रकार का व्यवहार करने के लिए तथा किन्हीं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निर्देशित करती है।”

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अभिप्रेरणा किसी मानव में किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कोई क्रिया उत्पन्न करती है क्रिया को किसी दिशा विशेष में प्रभावित करती है और जब तक लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता तब तक उसे जारी रखती है। इस प्रकार अभिप्रेरणा जैविक व सामाजिक दोनों ही होती है।

अभिप्रेरणा के क्षेत्र में किये गये अध्ययनों में मैकक्लिन्ड 1961 - 1972 एवं एटकिन्सन द्वारा किये गये अध्ययन काफी लोकप्रिय हैं इन लोगों ने अपने अध्ययनों में यह स्पष्ट किया है कि व्यक्ति में प्रेरणा विशेषकर उपलब्धि प्रेरणा तथा आर्थिक क्रियाओं में गहरा सम्बन्ध है। प्रायः यह देखा है कि उपलब्धि प्रेरणा अधिक होने से आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि होती है। मैकक्लिन्ड ने यह भी अपने अध्ययनों में पाया कि अमेरिकन समाज में उपलब्धि प्रसंगों में वृद्धि होने से आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि होती पाई गयी। ऐसे सम्बन्धों का राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में अधिक प्रभाव पड़ता है। आर्थिक सम्पन्नता रहने पर अन्य शीलगुणों के अतिरिक्त आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान, अहंकारित के शीलगुण की प्रधानता होती है।

बेकर तथा होमैन 1978 द्वारा किये गये अध्ययनों के अनुसार राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में संज्ञात्मक पहलुओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है उनका कहना है कि बच्चे प्रेरणात्मक शक्ति के कारण कुछ विशेष सामाजिक मूल्यों एवं विश्वासों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं इसका परिणाम यह होता है कि उनमें विशेष तरह के शीलगुण का विकास हो जाता है जो आगे चलकर राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण कर लेता है उदाहरणार्थ- भारतीय राष्ट्र चरित्र में अहिंसा, सहनशीलता, परोपकारिता, भाग्यवादिता आदि के गुण विकसित होते हैं और इन गुणों की झलक उसके राष्ट्रीय चरित्र में मिलने लगती है। इसी प्रकार एक अमेरिकन बच्चा अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही कुछ ऐसे विश्वासों एवं मूल्यों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है जिसमें आकांक्षी, बुद्धिमान, प्रगतिशील उसके राष्ट्रीय चरित्र में मिलने लगती है हालांकि इस प्रकार के जो उदाहरण हैं उनके प्रयोगात्मक अध्ययनों की अभी काफी कमी है निश्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या करने के लिए कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है परन्तु इन सिद्धान्तों की मान्यता मनोवैज्ञानिकों के मध्य अभी कम है क्योंकि इनके पक्ष में प्रयोगात्मक सबूतों की कमी है।

## 15.6 सारांश

राष्ट्रीय चरित्र एक नवीन जटिल अवधारणा है राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में राष्ट्र के विभिन्न संगठनों एवं समुदाय के लोगों के विश्वासों, विचारों मूल्यों एवं मानकों आदि का एक संयुक्त योगदान होता है। राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन होने पर राष्ट्रीय चरित्र में भी परिवर्तन के लक्षण दिखाई देते हैं। प्रत्येक देश का राष्ट्रीय चरित्र अलग-अलग होता है इस विभिन्नता के कारक एक नहीं अपितु अनेक हैं।



हर राष्ट्र की अपनी एक सीमा होती है उसका अपना भौगोलिक क्षेत्रफल राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि तमाम कारकों का प्रभाव पड़ता है यही कारण है कि अलग-अलग देशों के राष्ट्रीय चरित्र में विभिन्नता होती है। राष्ट्रीय चरित्र के सन्दर्भ में बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धान्त दिये हैं मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त शिक्षण सिद्धान्त, अभिप्रेरणात्मक सिद्धान्त एवं क्षेत्र सिद्धान्त मुख्य हैं।

### 15.7 शब्दावली

- **राष्ट्रीय चरित्र:** से तात्पर्य किसी देश के संगठनों में सामाजिक व्यवहार के विशिष्ट प्रतिमानों से होता है इस प्रकार किसी एक देश का व्यवहार प्रतिमान लोकतांत्रिक हो सकता है तो दूसरे देश का व्यवहार प्रतिमान निरंकुश हो सकता है।

### 15.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. राष्ट्रीय चरित्र का पर्यायवाची शब्द है -  
 (अ) महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व (ब) अन्तर्मुखी व्यक्तित्व  
 (स) बहिर्मुखी व्यक्तित्व (द) रूपतामक व्यक्तित्व
  2. भारत के राष्ट्रीय चरित्र में सहनशीलता, परोपकारिता, भाग्यवादिता एवं धार्मिकता के गुण अधिक हैं।  
 (अ) सत्य (ब) असत्य
  3. राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक हैं  
 (अ) भौगोलिक कारक (ब) राजनैतिक कारक  
 (स) आर्थिक कारक (द) उपरोक्त सभी
  4. शिक्षण सिद्धान्त के प्रतिपालक हैं  
 (अ) व्यवहारवादी (ब) प्रकार्यवादी  
 (स) संरचनावादी (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
  5. क्षेत्र सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है  
 (अ) मैस्लो (ब) रोजर्स  
 (स) कर्ट लेविन (द) फ्राइड
- उत्तर: 1.(द) 2.(अ) 3.(द) 4.(अ) 5.(स)

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा० सिंह ए०के०; समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा; मोतीलाल बनारसी दास ,बंग्लो रोड, नई दिल्ली।
2. डा० श्रीवास्तव डी० एन०; व्यक्तित्व मनोविज्ञान; साहित्य प्रकाशन रोड, आगरा।
3. डा० सिंह ए०के० ; व्यक्तित्व मनोविज्ञान।
4. डा० ओझा राजकुमार ; मनोविज्ञान के सिद्धान्त एवं सम्प्रदाय; विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. बी० कुप्पुस्वामी ; समाज मनोविज्ञान एवं परिचय; हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़।
6. लूनिया बी०एन०; भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय चरित्र का आशय क्या है ? इसके निर्धारकों का वर्णन कीजिये ?
2. राष्ट्रीय चरित्र का अर्थ बताते हुए इसके विभिन्नता के कारण समझाईये।
3. राष्ट्रीय चरित्र के संदर्भ में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
4. प्रेरणात्मक सिद्धान्त राष्ट्रीय चरित्र के लिए कितना उपयोगी है-समझाईये।
5. टिप्पणी लिखिये-
  - (अ) राष्ट्रीय चरित्र और क्षेत्र सिद्धान्त
  - (ब) राष्ट्रीय चरित्र और शिक्षण सिद्धान्त

---

**इकाई-16 नेतृत्व का अर्थ, स्वरूप, उत्पत्ति एवं विशेषता; सत्तावादी एवं प्रजातान्त्रिक नेतृत्व में अन्तर(Meaning, Nature, Origin and Traits of Leadership; Difference between Authoritarian and Democratic Leader)**

---

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 उद्देश्य
- 16.3 नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- 16.4 नेतृत्व की विशेषताएँ एवं गुण
- 16.5 नेतृत्व एवं प्रभुत्व में अन्तर
- 16.6 नेतृत्व के कार्य
- 16.7 नेता के प्रकार
  - 16.7.1 बोगार्डस का वर्गीकरण
  - 16.7.2 किम्बल यंग का वर्गीकरण
  - 16.7.3 लिपिट एवं व्हाईट का वर्गीकरण
- 16.8 प्रजातान्त्रिक एवं निरंकुश नेता में अन्तर
- 16.9 सारांश
- 16.10 शब्दावली
- 16.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 16.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 16.13 निबन्धात्मक प्रश्न

---

**16.1 प्रस्तावना**

---

नेतृत्व एक प्रचलित शब्द है जब भी कोई समूह या समाज का व्यक्ति बढ़-चढ़ कर समूह के कार्यों में पहल करता है तो लोग उसे नेता कहने लगते हैं। उसके निर्देश पर चलते हैं उसके विचारों का अनुसरण करते हैं और वह भी अपने समूह का समाज की भलाई के लिए लगातार प्रयत्नशील रहते हैं।

मानव सभ्यता के इतिहास में ऐसा कोई समय नहीं मिलता जिसमें कुछ व्यक्ति अधिकतर व्यक्तियों के विचारों को प्रभावित नहीं करते रहे हों, सभ्यता के द्वितीय चरण अथवा मध्यम युग में कबिलाई संस्कृति देखने को मिलती है। प्रत्येक कबीलों में कुछ लोग अपने कबीले को व्यवस्थित करने व दूसरे कबीले पर प्रभुत्व के लिए जाने जाते रहे है। आधुनिक युग में समाज का स्वरूप जटिल है। एक ही व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक,

राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि तमाम क्षेत्रों में कई प्रकार की भूमिका निभानी होती है। इन्हीं व्यवस्थाओं से कुछ व्यक्ति अपने समूह व समाज की परिस्थितियों का पूर्वानुमान लगाकर अधिकांश लोगों का नेतृत्व करने लगते हैं एक नेता मात्र निर्देश ही नहीं देता वरन् समाज के अन्य लोगों से भी प्रभावित होता है उनके विचारों का अनुसरण करता है लेकिन अगर समूह के अधिकांश लोग उस व्यक्ति के विचारों से प्रभावित हों और उसके निर्देशों का पालन करें तो समझो वही उस समाज का नेता है यही नेतृत्व कहलाता है। इस प्रकार सामान्य शब्दों में कहा जाता है कि किसी समूह के सदस्यों का एक सदस्य द्वारा प्रतिनिधित्व करना नेतृत्व कहलाता है।

### 16.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई में नेतृत्व के अर्थ उसकी परिभाषाओं एवं उसके स्वरूप का अध्ययन करेंगे।
- साथ ही नेता के कार्यों की चर्चा करते हुए हम प्राथमिक एवं गौण कार्यों के बारे में जान सकेंगे।
- नेतृत्व के विभिन्न प्रकार हैं इस इकाई में हम इन प्रकारों के बारे में जान सकेंगे।
- सत्ताधारी एवं लोकतान्त्रिक नेता पर चर्चा कर उसके अन्तर को सभी छात्र-छात्राओं को अवगत करायेंगे।

### 16.3 नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ

आम बोल-चाल में यह कहा जा सकता है कि नेतृत्व एक व्यवहार का ढंग है जिसमें एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के व्यवहारों से प्रभावित होने की अपेक्षा अपने व्यवहार से उन्हें प्रभावित करता है अर्थात् नेतृत्व एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति द्वारा समूह के समस्त व्यक्तियों के व्यवहारों को एक निश्चित दिशा में मोड़ा जाता है तथा उन्हें विशेष लक्ष्य प्राप्त करने की प्रेरणा दी जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण की क्रियाओं एवं व्यवहारों को प्रभावित करना और समूह का प्रतिनिधित्व करना नेतृत्व कहलाता है।

किम्बल यंग (1960) के अनुसार “ अन्य व्यक्तियों के व्यवहारों को नियन्त्रित एवं निर्धारित करने की योग्यता के आधार पर प्रभुत्व एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति प्राप्त करना नेतृत्व कहा जाता है।” “Leadership is a status of dominance and prestige acquired by ability to control, lead or set the pattern on behaviour of others.” ----Kimbal Young

रावेन एवं रूबिन (1976) के अनुसार, “किसी समूह में विशिष्ट स्थिति प्राप्त व्यक्ति नेता कहा जाता है, वह अपनी भूमिका के अनुरूप अन्यो के व्यवहारों का प्रभावित करता है तथा समूह को अपना अस्तित्व बनाये रखने और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संयोजित व निर्देशित भी करता है।”

“We may define a leader as someone who occupies a position in the group, influences others in accordance with the role of expectations for that position and coordinates and directs the group in maintaining itself and reaching its goal.” ----Reven and Rubin

क्रेच, क्रेचफील्ड एवं बैलकी (1962) के अनुसार “ नेता, किसी समूह का वह सदस्य होता है जो समूह की गतिविधियों को सर्वाधिक प्रभावित करता है और समूह के लक्ष्यों को निश्चित करने एवं समूह की विचारधारा को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।”

“Leader is a member of a group or organization who outstandingly influences the activities of the members of a group and who plays a central role in defining group goals and in determining the ideology of the group.” ---Krech, Crutchfield and Ballachey

लिण्डग्रेन(1973) के अनुसार, “ नेता समूह का वह सदस्य होता है जो अन्य लोगों से प्रभावित होने की अपेक्षा अपनी इच्छाओं के अनुसार व्यवहार करने हेतु उन्हें अधिक प्रभावित करता है।”

“A Leader is a group member who influence other members to behave in ways he prefers more than they influence him.” ----Lindgrain

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि नेतृत्व एक प्रकार का अन्तर्क्रियात्मक व्यवहार है जो नेता तथा सदस्यों के बीच होता है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, फिर भी नेता का प्रभाव सदस्य या अनुयायियों पर अधिक पड़ता है। वह लोगों के व्यवहारों को निर्देशित तथा नियंत्रित भी करता है।

नेतृत्व परिभाषाओं के विश्लेषण करने पर नेतृत्व के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु दिखाई देते हैं।

नेतृत्व के दो पक्ष होते हैं नेता- जो नेतृत्व करता है। अनुयायी - जो नेतृत्व स्वीकार करता है। ये दोनों पक्ष एक दूसरे को प्रभावित करता है और अनुयायी नेता को प्रभावित करता है अन्तर सिर्फ दोनों के प्रभाव की मात्रा का होता है नेता पर अनुयायियों का प्रभाव उतना नहीं पड़ता जितना की अनुयायियों पर नेता का पड़ता है अर्थात् नेता एवं अनुयायियों में दो तरफा सम्बन्ध होता है।

उदाहरणार्थ - यदि कोई कर्मचारी नेता अपनी मांगों को मनवाने के लिए सरकार की सभी सेवाओं को बंद करने का आवाहन करता है ऐसे में उसके अनुयायी या कर्मचारी उसे यह सुझाव देते हैं कि बंद में आवश्यक सेवाओं को खुला रखा जाय और कर्मचारी नेता उस सुझाव को मान लेता है इसका मतलब है कि दोनों में दो तरफा सम्बन्ध है।

नेतृत्व के अर्थ एवं स्वरूप की व्याख्या स्पष्ट करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि नेता एवं औपचारिक अध्यक्ष में अन्तर समझाया जाय गिबब 1969 ने कहा है नेता को अपने अनुयायियों पर स्वतः ही प्रभाव दिखाने का अवसर मिल जाता है जबकि औपचारिक अध्यक्ष को अपने पद के कारण अधिकार मिलता

है, जैसे- एक जिलाधिकारी का प्रभाव उस जिले में जहाँ वह नियुक्त होता है उसके पद के कारण होता है उसके पद के कारण ही उसके अधीनस्थ कर्मचारी उनकी मर्यादा का ध्यान रखते हैं और उसके आदेशों का पालन करते हैं, उनका अनुसरण करने की कोशिश करते हैं पर पद न रहने पर उसके अस्तित्व को नहीं मानते अर्थात औपचारिक अध्यक्ष वास्तविक नेता नहीं होते हैं।

इस प्रकार नेतृत्व शब्द को और सरलता से समझने के लिए हाउस 1977, जिल्डलर 1971, मेयर्स 1988 ने कुछ निष्कर्ष दिये-

- नेता अनुयायियों के व्यवहारों को निर्देशित एवं नियन्त्रित करता है।
- नेता अन्य लोगों को अधिक प्रभावित करता है तथा उसके द्वारा स्वयं कम प्रभावित होता है।
- समूह के सदस्य नेता के प्रति अधीनता अनुभव करते हैं।
- समूह की नीतियों का निर्धारण नेता द्वारा किया जाता है।
- नेतृत्व का गुण कुछ न कुछ हर व्यक्ति में पाया जाता है अर्थात नेतृत्व में प्रकार नेता औपचारिक या वास्तविक भी हो सकते हैं औपचारिक नेता से वास्तविक नेता अधिक प्रभावशाली होते हैं, नेता अपने समूह की विचारधारा के अनुकूल कार्य करता है जैसे लोकतांत्रिक नेता लोकतंत्र को महत्व देता है तथा निरंकुश नेता लक्ष्य को अधिक महत्व देता है। हाउस, फिल्डर एवं मेयर्स के निष्कर्षों के बाद हम यह कह सकते हैं कि -

“नेता किसी समूह का सदस्य होते हुए अधिकांशतः समूहवासियों की प्रतिविधियों को प्रभावित करता है और समूह के लक्ष्य नीतियों निश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।“

सामान्यतः या आम बोलचाल की भाषा में नेतृत्व एवं प्रभुत्व शब्द का प्रयोग लगभग समान अर्थ में किया जाता है। नेतृत्व के स्वरूप को जानने के लिए इन दोनों के अर्थों को जानना आवश्यक है।

#### 16.4 नेतृत्व की विशेषताएँ एवं गुण

नेतृत्व को पहचानने के लिए उसके गुणों को पहचानना आवश्यक है प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ गुण होते हैं परन्तु जब हम नेतृत्व की बात करते हैं तो उनमें इन गुणों/विशेषताओं की अधिकता होती है नेतृत्व की सफलता मात्र व्यक्ति विशेषके परिस्थिति में उसके अनुयायियों का प्रभाव भी उसमें पड़ता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने नेतृत्व की संख्या अलग-अलग बताई है आलपोर्ट के अनुसार नेतृत्व में 18 गुण होते हैं। वर्नाड के अनुसार नेतृत्व में 28 गुण होते हैं। बोगार्डस के अनुसार नेतृत्व में 8 गुण होते हैं, इन सभी समाज में मनोवैज्ञानिक का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि नेतृत्व की अपनी विशेषताएँ होती हैं जो निम्न हैं-

##### 1. शारीरिक गुण(Physical Attributes) -

कुछ मनोवैज्ञानिक ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया कि नेताओं में कुछ शारीरिक गुण होते हैं। जैसे- ऊँचाई, 2- वजन, 5- अच्छा स्वास्थ्य एवं स्फूर्ति। टर्मन 1904, स्टागडिल 1956 एवं पैट्रिज 1961 ने अध्ययनों के आधार पर बताया कि प्रायः नेता की ऊँचाई सामान्य व्यक्ति से ज्यादा होती है अधिक लम्बाई व्यक्ति में असाधारणता का गुण लाती है जिससे उसे नेतृत्व में सुविधा होती है परन्तु आज के परिपेक्ष्य में यह अध्ययन सत्य नहीं बैठता है क्योंकि यदि हम महात्मा गाँधी एवं लालबहादुर शास्त्री को देखें तो देखते हैं कि विश्व में नेतृत्व का परचम लहराने वाले गाँधी की लम्बाई एवं लालबहादुर शास्त्री की लम्बाई औसत व्यक्ति के बराबर एवं उससे भी कम थी।

जहाँ तक वजन का सवाल है पैट्रिज (Putridge, 1961) एवं स्टागडिल (Stogdils, 1966) ने अपने अध्ययन में यह बताया कि नेता भारी शरीर वाले होते हैं जबकि यह गुण भी अपर्याप्त है आधुनिक युग में शारीरिक गुण बहुत मायने नहीं रखता हर व्यक्ति अपने फिगर के प्रति चेतन्यशील हो रहा है इसलिए आज के दौर में इस तरह के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को अपना नेता चुनना लोग पसन्द नहीं करते हैं।

तीसरा शारीरिक गुण स्फूर्ति एवं स्वास्थ्य माना गया है मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि जो व्यक्ति अधिक स्वस्थ रूप रंग में आकर्षक एवं फूर्तीला होता है वो अन्य व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं लेकिन अगर व्यक्ति के अन्दर अपने समूह के प्रति प्रतिबद्धता एवं समर्पण न हो तो शारीरिक आकर्षण मात्र ढकोसला हो जाता है।

## 2. बुद्धि-बौद्धिक योग्यता -

सामान्यतः यह माना जाता है कि नेता अपने अनुयायियों की अपेक्षा ज्यादा बुद्धिमान होता है। बौद्धिक योग्यता से तात्पर्य अपने अनुयायियों को समझने परखने की क्षमता उनकी समस्याओं को हल करने की विधियाँ उन्हें दिये जाने वाले सुझावों की योग्यता दूरदर्शिता एवं वाक चातुर्यता से हैं, बुद्धि ही वह प्रतिमान है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह को प्रभावित कर पाता है इस संबंध में मनोवैज्ञानिकों ने अनेक अध्ययन किये हैं स्टागडिल (Stogdill 1940) ने अपने अध्ययन में पाया कि नेतृत्व एवं बुद्धि में धनात्मक सहसम्बन्ध है अर्थात् बुद्धिमान व्यक्ति में नेतृत्व की क्षमता अधिक होती है। लेकिन यह सह संबंध न्यून अर्थात् 25 के आस-पास पाया गया है।

फिडलर 1964 ने अपने अध्ययनों के आधार पर कहा है कि यदि बुद्धिमान नेता उचित कार्यशैली का उपयोग, करे तो वह अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है।

उपरोक्त अध्ययनों के विपरीत गिब, होलिंगवर्थ एवं करोल आदि मनोवैज्ञानिक का मानना है कि अगर नेता एवं अनुयायियों की बुद्धि लब्धि में बहुत ज्यादा अन्तर होगा तो दोनों (नेता एवं अनुयायी) में सामंजस्य मुश्किल हो जाता है क्योंकि बौद्धिक अन्तर ज्यादा हो जाने पर नेता एवं अनुयायियों ने रूचियों, मूल्यों, क्रियाकलापों तथा व्यवहार के तरीकों में इतना अन्तर हो जाता है जिसके फलस्वरूप पारस्परिक सहयोग एवं

सामाजिक में बांधा उत्पन्न होती है इन मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बुद्धि लब्धि में नेता एवं अनुयायी के मध्य 30 अंकों से अधिक अन्तर उपयुक्त नहीं होता। नेतृत्व एवं बौद्धिक योग्यता के संदर्भ में सभी मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि नेता बुद्धिमान होना चाहिए परन्तु अपने अनुयायियों से अत्यधिक बुद्धिमान होने पर उसका सहयोजन कम हो सकता है लेकिन बौद्धिक होना महत्वपूर्ण गुण है।

### 3. आत्मविश्वास (Self Confidence) -

नेता का अहम् गुण आत्मविश्वास अर्थात् स्वयं के उपर विश्वास है जिस व्यक्ति में आत्मविश्वास की कमी होती है वह नेता नहीं बन सकता नेता को सदैव कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है ओर अपने अनुयायियों को हमेशा प्रोत्साहित करना होता है। स्टागडिल 1948, मान 1959- ने अपने अध्ययनों में पाया कि नेतृत्व तथा आत्मविश्वास सार्थक रूप से सहसम्बन्धित होते हैं- अर्थात् आत्मविश्वास होता तभी नेतृत्व के गुण होंगे और अगर नेतृत्व होगा तो आत्मविश्वास अवश्य पाया जायेगा।

यदि नेता में आत्मविश्वास की कमी आ जाती है तो उसके समर्थकों का नेता से विश्वास उठ जाता है और उसका नेतृत्व समाप्त हो जाता है इसलिए अगर नेता के आत्मविश्वास के साथ आचरण करता है तभी उसका नेतृत्व सफल रहता है।

### 4. वाकपटुता (Verbal aptitude) -

व्यवहारिक रूप से देखा गया है कि समूह में नेतृत्व ग्रहण करने के लिए व्यक्ति में वाक चातुर्य का होना आवश्यक है। किसी भी देश-काल परिस्थिति में अपना वक्तव्य रखना, लोगों को सुझाव देना उनको आदेशित करना आदि सभी गुण वाक पटुता के हैं। इस संबंध में भी बहुत से मनोवैज्ञानिक अध्ययन हुए हैं।

मैकग्रेथ एवं जुलियन (Mcgrath & Julian 1968) ने अपने अध्ययनों में इस बात की पुष्टि की समूह का सबसे अधिक बोलने वाला सदस्य ही नेता के रूप में देखा जाता है।

यहाँ यह बताना भी जरूरी है कि अधिक बोलने का मतलब निरर्थक बोलने से नहीं है बल्कि अधिक बात करने का अर्थ वाक पटुता एवं परिस्थितियों के संदर्भ में सार्थक विचार रखने से है।“

### 5. सामाजिकता (Sociability) –

सामाजिकता का अर्थ समाज में सभी व्यक्तियों से घुल-मिल कर रहने की प्रवृत्ति से है जो व्यक्ति मिलनसार होते हैं और सरलता से लोगों में घुलमिल जाते हैं वह शीघ्र ही लोकप्रिय हो जाते हैं वह अपने समूह के अन्य लोगों में सहायोग सहानभूति संवेदनशीलता एवं मित्रता के सभी गुण रहते हैं नेतृत्व में सामाजिकता का गुण एक महत्वपूर्ण कसौटी है। गुड एवं एनॉफ (good & Enough) ने अपने अध्ययन में पाया कि नेतृत्व एवं सामाजिकता में घनिष्ठ सम्बन्ध है।



कैटेल तथा स्टार्स (Catile & Stice 1957) ने अपने अध्ययनों में बतलाया कि जब नेता में सामाजिकता का षील गुण होता है तो इससे उनमें एव अनुयायियों में पारस्परिक सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ एवं दृढ़ होता है और नेतृत्व की सफलता चरम पर होती है।

वास्तव में सामाजिकता एक ऐसा कारक है जब व्यक्ति अपने समूह के लोगों से आत्मीयता से मिलता है तो उनके दुःख दर्द से भी रूबरू होता है जो उसके अन्दर की संवेदशीलता को जगाये रहती है ओर नेता अपने लोगों के लिए ज्यादा जीवटता से कार्य करता है ओर लम्बे समय तक नेतृत्व से स्थायितत्व बनाये रखता है।

#### 6. प्रभुत्व (Dominance) -

सफल नेतृत्व में प्रभुत्व का गुण होना आवश्यक है यदि उसमें यह गुण है तो सदस्यों के व्यवहारों एवं निर्णयों पर आवश्यकता पड़ने पर रोक लगा सकता है, यदि प्रमुख का गुण का अभाव होता है तो वह अपने समूह को व्यवस्थित करने में असफल हो जाता है और समूह में अराजकता फैलने में देर नहीं लगती।

मान (Mann1959) ने अपने अध्ययनों में नेतृत्व तथा प्रभुत्व में धनात्मक सह सम्बन्ध पाया अर्थात् नेतृत्व के गुण बढ़ने के साथ व्यक्ति में प्रभुत्व के गुण बढ़ते हैं।

गिब ने अपने अध्ययन के द्वारा यह पाया कि एक नेता में आर्थिक लाभ की अपेक्षा प्रभुत्व को प्राप्त करने की ईच्छा प्रबल होती है अतः हम कह सकते हैं कि प्रभुत्व एक ऐसी विशेषता है जो प्रत्येक नेत्त्व करने वाले व्यक्ति में पायी जाती है।

#### 7. समायोजनशीलता (Adjustment) -

नेतृत्व का एक प्रधान गुण समायोजन है जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं कि नेता को विभिन्न परिस्थितियों का समना करना पड़ता है चाहे वह सरल हो या कठिन, हर परिस्थिति में स्वयं से तथा समूह से अपना तारतम्य बनाये रखना उसका गुण होता है। नेता में अगर अच्छी समझ होगी या धैर्य होगा तो अपने समूह द्वारा किये गये नकारात्मक व्यवहार पर भी वह साहस व सामंजस्य द्वारा उनके व्यवहार को सकारात्मक दिशा में ले जा सकता है।

मान 1959 (Mann1959) ने बताया कि 30 प्रतिशत अध्ययनों में समायोजन एवं नेतृत्व की क्षमता एक दूसरे से धनात्मक रूप से सम्बन्धित पायी गयी है।

मोवर्ग (Moberg 1953) ने भी अपने अध्ययनों में नेतृत्व तथा समायोजन में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया। अर्थात् यह कहना समीचीन होगा कि अच्छे नेतृत्व में अच्छे समायोजन की विशेषता पायी जाती है।

#### 8. संकल्पशक्ति (Will Power) -

संकल्पशक्ति नेतृत्व का प्रमुख लक्षण है कठिन परिस्थितियों में भी अपनी समूह की मांग पर अडिग रहना और मांग मनवाने के लिए किसी भी परिस्थिति से गुजरना संकल्प शक्ति का परिचायक होता है। उदाहरणार्थ- नेल्सन

मंडेला द्वारा रंगभेद नीति के विरोध में पूरी मानव जाति के लिए तेईस साल जेल में बिताना और पूरी दुनिया में काले गोरे के रंग के कारण सामाजिक भेदभाव के लिए संघर्ष करना दृढ़ संकल्प शक्ति का परिचायक है।

9. परिश्रम प्रियता (Industriousness) -

इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि साधनहीन एवं गरीब होने के उपरान्त भी अगर व्यक्ति परिश्रमी है आलस व कामचोरी को अपने स्वभाव में नहीं आने देता है तो नेतृत्व प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ- लालबहादुर शास्त्री एक गरीब परिवार से ताल्लुक रखते थे परन्तु अपने लगन एवं परिश्रम से उन्होंने भारत के प्रधानमंत्री का पद प्राप्त किया और जय जवान-जय किसान का नारा देकर पूरी दुनिया में अपना लोहा मनवाया।

10. निर्णय लेने की तत्परता (Promptness of decision) -

नेता से यह आशा की जाती है कि विपरीत परिस्थितियों में भी शीघ्र निर्णय लेने की तत्परता होनी चाहिए चूंकि एक नेता समूह का आदर्श होता है ओर उसमें यह गुण दिखाई देना चाहिए कि जटिल व गम्भीर परिस्थितियों में समूह के हित में तुरन्त निर्णय ले ओर लोगों का मार्गदर्शन कर सके।

11. पुर्वानुमान की क्षमता एवं दूरदर्शिता (Imagination and foresightedness) -

एक सफल नेता वही व्यक्ति होगा जो आगे आने वाली परिस्थितियों का पहले से पुर्वानुमान करके अपने समूह को उसके प्रति सजग कर दे इसके लिए अच्छी कल्पनाशक्ति का होना अनिवार्य है ताकि नेता अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके, अच्छी कल्पनाशक्ति के साथ-साथ दूरदर्शिता का गुण भी जरूरी है ताकि वह समूह की प्रतिक्रिया समझ कर कुछ पूर्वकथन कर सके।

जैसे- राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी में पुर्वानुमान एवं दूरदर्शिता का गजब का संजोग था। जब पूरी दुनिया हिंसा से अपनी आजादी देने की पक्षधर थी उन्होंने अहिंसा को अपनी स्वतंत्रता का हथियार बनाया और अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया।

12. नैतिकता की भावना (Moral sensibility) -

कौफिन ने नेतृत्व के लिए नैतिकता की भावना को एक आवश्यक गुण के रूप में स्वीकार किया है। नैतिकता से तात्पर्य सच्चाई, उदार, दृष्टिकोण दूसरों के कल्याण की भावना के प्रति समर्पण एवं चरित्र की श्रेष्ठता से है। व्यक्ति में अगर नेतृत्व के सारे गुण जैसे कार्यकुशलता, साहस, निर्णय लेने की तत्परता, संकल्पशक्ति आदि सब कुछ है परन्तु नैतिकता का अभाव है तो जन सामान्य ऐसे लोगों के नेतृत्व को अस्वीकार कर देता है इसलिए नेतृत्वकारी को जन सामान्य को यह विश्वास दिलाना होता है कि वह एक आदर्शवान व्यक्ति है और जो कार्य भी कर रहा है वह दूसरों के कल्याण एवं हित के लिए कर रहा है।

13. सरलता (Simplicity) -

जो व्यक्ति स्वयं को रहन-सहन विचारों एवं जीवन शैली में जितना अधिक साधारण होता है जनता का विश्वास उस पर बढ़ जाता है नेता की सादगी अनुयायियों के लिए प्रेरणा की स्रोत होती है। अगर नेता सादा जीवन उच्च विचार की जीवन शैली को अपनाता है तो उसके समर्थकों का विश्वास नेता पर और गहरा हो जाता है।

14. जोखिम उठाने की क्षमता (Risk Bearing Capacity) -

सामान्यतः अधिकांश व्यक्ति परम्परागत व्यवहारों में ही जीवन व्यतीत कर देते हैं लेकिन अपने समूह से ही जो व्यक्ति नवीनता का जोखिम उठाता है और उसमें सफलता प्राप्त कर समूह के लिए नये क्षेत्रों में, विचारों में परिवर्तन की राह दिखाता है वही बेहतर नतृत्व कर पाता है जोखिम उठाने की क्षमता के कारण ही समाज में समय-समय पर परिवर्तन होते हैं जैसे- विवेकानन्द जी ने महिलाओं की सोचनीय स्थिति को देखते हुए, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने की बात की और उसके लिए बढ़-चढ़ कर भागेदारी निभाई। उन्होंने हर जगह अपने भाषणों में स्त्री शिक्षा की बात कर समाज को एक नई दिशा दी।

15. व्यवहार में लचीलापन (Elexibility in behaviour) -

नेतृत्वकर्ता अगर देशकाल परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं करता है तो समयानुसार वे समूह या समाज से पीछे रह जाता है ऐसे व्यक्तियों को रूढ़िवादी कहा जाता है इसलिए समूह की भावनाओं से सामंजस्य बनाये रखते हुए नेता को अपने व्यवहार में लचीलापन रखना चाहिए।

कार्टर (Carter) एवं उनके सहयोगियों ने पाया कि नेताओं का व्यवहार परिस्थितियों के अनुसार सदैव परिवर्तित होता रहता है।

उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त धैर्य, दूसरों के मनोभावों को समझने सहयोगी लक्षण हैं जो नेतृत्व के लिए महत्वपूर्ण हैं यह माना जाता है कि जिस व्यक्ति में जितने अधिक गुण या विशेषताएँ होंगी वह उतना ही शीघ्र नेतृत्व करेगा।

16.5 नेतृत्व एवं प्रभुत्व में अन्तर

कुछ विद्वान नेतृत्व का अर्थ प्रभुत्व के रूप में करने लगते हैं जो कि उचित नहीं है स्वयं रेबर जैसे विद्वान ने नेतृत्व के संन्दर्भ में लिखा है, “नेता कोई भी वह व्यक्ति है जिसके पास प्रभुत्व एवं सत्ता होती है अथवा जिसका समूह पर प्रभाव होता है।”

किम्बल यंग (Kimbell Young) के शब्दों में, “प्रभुत्व को शक्ति के साधन के रूप में देखा जा सकता है जिसका प्रयोग एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्तियों की मनोवृत्तियों एवं क्रियाओं को नियन्त्रित करने और उन्हें परिवर्तित करने के लिए किया जाता है।”

उपर्युक्त परिभाषा में नेतृत्व एवं प्रभुत्व को एक ही अवधारणा माना है अर्थात् जिसमें प्रभुत्व है वहीं नेता है। लेकिन प्रभुत्व एवं नेतृत्व दोनों अलग-अलग अवधारणा हैं- प्रभुत्व की परिभाषा देते हुए किम्बल यंग ने लिखा है किम्बल यंग की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि प्रभुत्व के द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों में जो परिवर्तन किया जाता है वह साधारण तथा दबाव के कारण जाता है क्योंकि प्रभुत्व में सत्ता या शक्ति का स्वरूप होता है अर्थात् इसमें एक व्यक्ति प्रभुता सम्पन्न होता है और दूसरा उसके अधीन होता है जबकि नेतृत्व को व्यक्ति ऐच्छिक रूप से स्वीकार करता है अर्थात् नेतृत्व तभी स्वीकार होता है जब कुछ व्यक्ति नेता के कार्यों से प्रभावित और उसके निर्देशों को उपयोगी समझते हैं और उसके निर्देशों को ऐच्छिक रूप से स्वीकार करते हैं। उदाहरणार्थ-एक अधिकारी अपने कर्मचारियों पर प्रभुत्व बनाये रखता है और कर्मचारी अपने चपरासी पर। यहाँ दोनों के विचारों में सहमति का कोई भाव हो यह आवश्यक नहीं है चूंकि अधिकारी के निर्देशों का पालन कर्मचारी व कर्मचारी के निर्देशों का पालन चपरासी इसलिए करता है क्योंकि दोनों के पास कुछ वैधानिक अधिकारी होते हैं जो उनकी सत्ता या प्रभुत्व को बरकरार रखती है।

इस प्रकार नेतृत्व व प्रभुत्व में कुछ अन्तर दिखाई देते हैं जो निम्न हैं -

- नेतृत्व में अनुयायियों के विचारों को ध्यान में रखा जाता है साथ ही उनके विचारों से सहमत होकर नेता प्रभावित भी होते हैं जबकि प्रभुत्व में रहने वाले व्यक्तियों पर शक्ति से दबाव डाला जाता है उनके विचारों से सहमति का सवाल ही नहीं उठता।
- नेतृत्व साधारणतया स्वेच्छा से स्वीकारा जाता है नेतृत्व में अगर कभी कभार कुछ दबाव होता भी है तो उसे नैतिक दबाव कहा जाता है जबकि प्रभुत्व में शक्ति एवं दबाव का अधिक महत्त्व होता है।
- पीयर्स को कथन है कि नेतृत्व पारस्परिक उत्तेजना की एक प्रक्रिया है अर्थात् जिसमें नेता पर अनुयायियों के व्यवहारों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है जबकि प्रभुत्व मूलतः एक नियन्त्रण की प्रक्रिया है जिसमें प्रभुत्वशाली व्यक्ति अपनी ईच्छा से चुने हुए उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दूसरों के व्यवहारों को एक खास दिशा में नियन्त्रित करता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नेतृत्व एवं प्रभुत्व में पर्याप्त अन्तर है।

## 16.6 नेतृत्व के कार्य

नेतृत्व के स्वरूप एवं प्रकृति को पूर्णतः समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम नेता के कार्य को भी समझें, नेता के क्या कार्य होते हैं उसकी कार्य पद्धति कैसी होती है आदि। इस सन्दर्भ में क्रच एवं क्रेचफील्ड (Krech and crutchfield) ने कहा है प्रत्येक नेता को किसी न किसी मात्रा में अधिशासक, नियोजक, नीति निर्धारक, विशेषज्ञ समूह का बाह्य प्रतिनिधि, आन्तरिक सम्बन्धों का नियन्त्रक, दण्ड एवं पुरस्कार का निर्धारक तथा पंच

मध्यस्थ एवं आदर्श के रूप में कार्य करना होता है। क्रच एवं क्रेवफील्ड ने नेता के कार्यों को दो भागों में बाँटा है।

1-प्रधान कार्य 2- सहायक कार्य

इस दृष्टिकोण से नेता द्वारा किये जाने वाले कार्यों का उल्लेख करके हम नेतृत्व का महत्त्व समझ सकते हैं।

- 1) **प्रधान कार्य-** प्रधान कार्यों से मतलब उन कार्यों से है जिन्हें करना नेतृत्व पद पर बने रहने के लिए आवश्यक हो जाता है ये कार्य निम्न हैं।

कार्यकारिणी के रूप में नेता (Leadership as Executive) –

- नेता को अपने समूह को व्यवस्थित रखना होता है जिसमें समूह के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। कार्यकारिणी के रूप में नेता समूह का संचालक होता है उसे अपने समूह के कार्यों का इस प्रकार बटवारा करना पड़ना है कि समूह की भलाई के लिए बनाये गये लक्ष्यों की पूर्ति भी हो जाये ओर कार्यकारिणी के बंटवारे से समूह में असन्तोष भी न फैले। कभी-कभी नेता कार्यकारिणी के कुछ कार्यों का भार समूह के अन्य लोगों को भी दे देता है।
- योजना बनाना- नेता का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए योजनाओं का निर्माण करना होता है यह योजनायें दीर्घकालिक भी हो सकती है ओर अल्पकालिक भी। इन योजनाओं के लिए जो भी संसाधन की जरूरत होती है उन्हें जुटाना भी नेता का कार्य होता है।
- नीति निर्धारण करना (Policy Maker) - नेता समूह के लक्ष्यों एवं नीतियों का निर्माता भी होता है। किसी भी समूह में दो तरह की नीतियाँ होती है- 1- आन्तरिक नीति, 2- बाह्य नीति। नीतियों का निर्धारण तीन प्रकार से किया जाता है।

कभी-कभी उच्चस्तरीय नेताओं द्वारा नीति निर्धारण का कार्य अपने अधीन कार्य कर रहे नेताओं को सौंप दिया जाता है इस प्रकार नीतियाँ बनाने में अधीनस्थ नेताओं के विचारों को सम्मिलित किया जाता है। कई बार समूह में उपस्थित लोगों से चर्चा कर नीतियों का निर्धारण किया जाता है इसमें भी नेता नीतियों के सन्दर्भ में समर्थन एवं निर्देशन करता है जब नेता नीतियाँ बनाने को स्वतंत्र होता है और स्वयं ही नीतियों का निर्माण कर देता है। नीतियों का निर्माण किसी प्रकार क्यों न हो परन्तु जबाबदेही मात्र नेता की होती है।

- i. विशेषज्ञ का कार्य करना (Role of an expert)- समूह के तमाम लोग नेता को एक विशेषज्ञ के रूप में देखते हैं जो प्रत्येक क्षेत्र में लोगों या समूह को सर्वोत्तम सलाह दे सकता है। जैसे- यदि समूह में तनाव है या निचले स्तर के नेताओं में अनबन है तो समस्या समाधान का कार्य उपर वाला नेता करता है इस प्रकार एक विशेषज्ञ के रूप में वह समूह के लोगों को इस प्रकार निर्देशित करता है कि उनका मनोबल ऊँचा रहे। नेतृत्व के इस कार्य से सामूहिक जीवन स्वयं ही संगठित बना रहता है।

- ii. आन्तरिक संबंधों के नियंत्रक के रूप में नेता- नेता अपने समूह के प्रति हर सम्भव प्रयासरत् रहता है कि सभी सदस्यों में आपसी संबंध सौहार्दपूर्ण बने रहें उनके मतभेदों को दूर करना, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा समय-समय पर निर्देश देकर उन्हें समूह की भलाई के लिए प्रेरित करना आदि उसका प्रमुख कार्य है इस प्रकार नेता अपने समूह के आन्तरिक मामलों में एक नियंत्रक के रूप में कार्य करता है।
- iii. बाह्य समूहों में प्रतिनिधित्व करना- नेता बाहर के समूहों में प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है वह अपने समूहों की भावनाओं को दूसरे समूह तक पहुँचाता है दूसरे समूहों के सदस्यों से सम्बन्ध स्थापित करने की सकारात्मक एवं नकारात्मक स्वीकृति देता है इस प्रकार नेता को समूह का द्वार-पाल कहा है।  
क्रेचफील्ड ने नेता के सम्बन्ध में कहा है कि नेता “एक मान्य अधिवक्ता होता है जिसका कार्य समूह की प्रतिबद्धता बढ़ाना है।
- iv. पुरस्कार एवं दण्ड का निर्धारण- नेता अपने समूह के सदस्यों को दण्ड एवं पुरस्कार भी देता है अगर समूह के सदस्य समूह के मानकों का पूर्णपालन करते हैं समूह के लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं तो वह उन्हें पुष्कार से सम्मानित करता है पुरस्कार पदोन्नति भी हो सकती है अथवा नगद पुरस्कार भी हो सकता है। इसी प्रकार अगर समूह के सदस्य मानकों में बाँधा डालते हैं या समूह को नुकसान पहुँचाते हैं तो नेतृत्व में दण्ड का प्रावधान भी होता है नेता समूह के सदस्य के पद से हटा भी सकता है और समूह से निष्कासित भी कर सकता है।
- v. पंच एवं मध्यस्थ का कार्य- जब समूह के सदस्यों में मनमुटाव व संघर्ष की स्थिति आ जाती है और समूह की स्थिति खराब होने लगती है ऐसी स्थिति में एक नेता समूह के मध्य पंच बनकर या मध्यस्था कर समूहों के सदस्यों के मनमुटाव या संघर्ष को समाप्त कर उनके मध्य समझौता करता है, समझौते में प्रत्येक सदस्य की बातों को सुनता है और अपना निर्णय देकर सौहार्दपूर्ण परिवेश तैयार करता है।

#### 2) सहायक या गौण कार्य (Secondary Functions) -

सहायक कार्यों से तात्पर्य वैसे कार्यों से होता है जिसे नेता या तो स्वयं करने की ठान लेता है या समूह के सदस्यों के आग्रह पर इन कार्यों को करने का निश्चय करता है। इन कार्यों को नहीं करने पर नेता को कोई पद से नहीं हटा सकता लेकिन करने पर स्वयं नेता की प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा बढ़ जाती है।

जैसे नेता समूह में आदर्श व्यक्ति की भूमिका निभाता है वह स्वयं उचित अनुचित का निर्धारण करते हुए औरों को वैसे ही चलने की प्रेरणा देता है वह अपने समूह के उत्तरदायित्वों को भी निभाना पड़ता है अनुयायियों के बीच मतभेद को निपटाना उनके सुख-दुख का ख्याल करना आदि वह सिर्फ इतना ही नहीं करता साथ ही समूह के लिए आदर्श मानक आदि का निर्धारण करता है।

### 16.7 नेता के प्रकार

समाज में नेतृत्व की अनेक शैलियाँ या प्रकार देखने को मिलते हैं क्योंकि न तो सभी नेताओं की विशेषताएँ एक जैसी होती है और न ही नेतृत्व की परिस्थितियाँ सदैव समान होती है। यहाँ हम कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों द्वारा बताये गये नेतृत्व के प्रकारों का वर्णन कर रहे हैं।

#### 16.7.1 बोगार्डस का वर्गीकरण - 1940 में बोगार्डस ने नेतृत्व के पाँच प्रकार बताये-

##### i) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष नेता (Direct and Indirect Leadership) -

प्रत्यक्ष नेतृत्व में नेता का सम्बन्ध अपने अनुयायियों से सीधा होता है वह प्रत्यक्ष बातचीत के द्वारा उनकी समस्याओं को सुनता है और समाधान के लिए सुझाव देता है आपसी झगड़ों को विचार-विमर्श द्वारा निपटाता है इस प्रकार समूह के सदस्य नेता को देख भी सकते हैं और सुन भी सकते हैं।

अप्रत्यक्ष नेतृत्व में नेता व अनुयायियों का सम्बन्ध सीधा नहीं होता है ऐसे नेता अप्रत्यक्ष रूप से अपने अनुयायियों के विचारों को प्रभावित करते हैं और उन पर नियन्त्रण रखते हैं। जैसे महान वैज्ञानिक, लेखक, दार्शनिक आदि अप्रत्यक्ष नेता की श्रेणी में आते हैं।

##### ii) सपक्षीय तथा वैज्ञानिक नेता (Partisan and Scientific Leadership) -

पक्षपातपूर्ण को सपक्षीय नेता भी कहते हैं यह नेता हमेशा अपने समूह का पक्ष लेते हैं दूसरे समूह के सम्मुख ये नेता अपने समूह की प्रशंसा एवं अच्छाईयों का ही गुणगान करते हैं और अवगुणों को छिपा देते हैं इन्हें एक पक्षीय नेता भी कहा जाता है। जैसे-आजकल की राजनैतिक पार्टियाँ ज्यादातर सपक्षीय होती है वह सिर्फ अपनी पार्टी का गुणगान करते हैं।

वैज्ञानिक नेता सत्य एवं न्यायप्रिय होता है और अपने समूह की अच्छाई एवं बुराई दोनों पक्षों की चर्चा करता है वैज्ञानिक नेता की किसी धर्म जाति प्रजाति या सम्प्रदाय में विशेष रुचि नहीं होती है यह सभी के सन्दर्भ में समान दृष्टिकोण रखते हैं, अधिकांशतः इस प्रकार के नेतृत्वकारी विज्ञान के क्षेत्र से जुड़े रहते हैं।

##### iii) सामाजिक, मानसिक एवं कार्यकारिणी नेता (Social, Mental & Executive Leadership)

सामाजिक नेता सामाजिक कार्यों के द्वारा समूह में लोकप्रियता प्राप्त करते हैं इनमें समाजसेवी गुणों की प्रधानता होती है इनमें और जनसाधारण में प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है।

मानसिक नेता अपने विचारों एवं क्रियाओं के द्वारा समूह की मनोवृत्तियों में परिवर्तन करते हैं यह नेता अपने कार्यों को करने के लिए एकांत एवं शान्तिपूर्ण वातावरण चाहते हैं।

कार्यकारिणी नेता में सामाजिक, बौद्धिक तथा प्रबन्धकीय गुणों का समावेश होता है, ये अच्छे वक्ता अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता होते हैं कई बार इनकी अच्छी कार्य प्रणाली को देखते हुए राज्य द्वारा इन्हें कुछ अधिकार मिले होते हैं जिनका वो जनहित में उपयोग करते हैं।

### 16.7.2 किम्बल यंग का वर्गीकरण (kimbul Young's Classification)

किम्बल यंग ने नेतृत्व को छः भागों में बाँटा है।

- i) राजनैतिक नेता ( Political Leader)- इस प्रकार के नेता राजनैतिक पार्टी से सम्बन्धित होते हैं इनका अपना एक दल होता है उस दल के नियम संविधान एवं नीतियां होती हैं उन्हीं के अनुसार ये कार्य करते हैं ऐसे नेता अपने दल या पार्टी के सांगठनिक ढाँचे पर निगरानी बनाये रहते हैं और उसे सुचारू रूप से चलाये रहते हैं क्योंकि दल के टूटने पर इनका नेतृत्व भी समाप्त होने की संभावना रहती है। इन नेताओं का मुख्य उद्देश्य सत्ता को प्राप्त करना होता है और सत्ता को प्राप्त करने के लिए कई बार ये गुटबन्दी एवं संघर्ष को तेज कर देते हैं।
- ii) नौकरशाह नेता (Bureaucratic leader)- नेतृत्व की यह शैली प्रशासनिक नेतृत्व में मिलती है नागरिक सेवाओं, सरकारी कार्यालयों, संगठनों, उद्योगों एवं सेना आदि विभागों में कार्यरत अधिकारियों एवं कर्मचारी इसी श्रेणी में आते हैं इनके पास कुछ अधिकार होते हैं और जो दूसरों को आदेश दे सकते हैं नीतियों के क्रियान्वयन में इनका मुख्य योगदान होता है इन्हें नौकरशाह कहते हैं।
- iii) कूटनीतिज्ञ (Diplomate)- वर्तमान समय में प्रत्येक देश अपने कूटनीतिज्ञ रखते हैं जो सरकार के प्रतिनिधि दूसरे देश में काम करते हैं कूटनीतिज्ञ अपनी सरकार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए शब्दों का प्रयोग काफी चतुराई से करते हैं।
- iv) प्रजातांत्रिक नेता(Democratic leader)- जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि इस तरह के नेता अपने समूह के साथ विचार-विमर्श कर नीतियों का निर्धारण करते हैं और समूह की भलाई के लिए बढ़-चढ़ कर भागीदारी तथा लोकतांत्रिक रूप से समूह के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।
- v) सुधारक (Reformar)- समाज में कुछ ऐसे नेता भी होते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य समाज में सुधार करना होता है या समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करना होता है इन्हें सुधारक या आन्दोलनकारी भी कहा जाता है। जैसे राजा राममोहन राय, महात्मा गाँधी, अन्ना हजारे आदि।
- vi) सिद्धान्तवादी (Theorist)- इन नेतृत्वकारी का सम्बन्ध मात्र सिद्धान्तों से होता है वह अपने विचारों से तर्क का सहारा लेता है तर्क के संसार में रहता है तथा तर्क द्वारा ही अपने समूह को प्रभावित करता है।

### 16.7.3 लिपिट एवं व्हाईट का वर्गीकरण (Lippitt & White's Classification)

लिपिट एवं व्हाईट ने 1939 में एक अध्ययन किया जिसके आधार पर नेतृत्व के तीन प्रकार बताये।

- अस्तक्षेपी नेतृत्व-



इस तरह के नेतृत्व से तात्पर्य वैसे नेतृत्व से होता है जहाँ नेता अपने समूह के सदस्यों पर नाममात्र का नियन्त्रण रखता है इस प्रकार के नेतृत्व में नेता या तो अपने समूह का मार्गदर्शन करता है न ही अपने तरह से कुछ निर्देश देता है, सदस्य पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं कि समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कौन सा कार्य करें और कौन सा न करें। इस तरह का नेतृत्व का प्रतिपादन 18 वीं शताब्दी में फ्रान्स में हुआ था।

इसके अतिरिक्त लिपिट एवं व्हाईट ने सत्तात्मक एवं प्रजातंत्रात्मक नेतृत्व के प्रकार भी बताये हैं हम अभी तक देख रहे हैं कि तमाम समाज मनोवैज्ञानिकों ने इस दो प्रकार के बताये- निरंकुश व प्रजातंत्रात्मक का उल्लेख किया है। इस प्रकार का नेतृत्व संसार के अधिकांश देशों में देखने को मिलता है इन प्रकारों का विस्तृत रूप से चर्चा कर रहे हैं।

- **सत्ताधारी या निरंकुश नेतृत्व (Authoritarian Leadership)**

सत्ताधारी नेतृत्व में नेता समस्त अधिकारों को अपने पास रखता है अपने अनुयायियों को अपने अधिकारों से वंचित रखता है और कभी-कभी थोड़ा सा अधिकार उन्हें दे देता है वह सम्पूर्ण सत्ता को अपने पास रखता है वह सिर्फ अपने अनुयायियों को आदेश देता है। किसी भी विषय निर्णय वह स्वयं करता है। अपने आदेशों का पालन करने के लिए चाहे उसे कोई भी रास्ता क्यों न अपनाना पड़े व अपनाता है। वह अकेले ही न्यायाधीश बन जाता है तथा समूह के सदस्यों दण्ड एवं पुरस्कार देता है उसके लिए सत्ताधारी नेता को किसी को तर्क देने की आवश्यकता नहीं पड़ती वह निरंकुश होता है।

क्रच एवं क्रेचफील्ड ने निरंकुश नेताओं की विशेषताओं को वर्णन किया है जो निम्न है-

“निरंकुश नेता प्रजातंत्रिक नेता की अपेक्षा पूर्ण शक्ति रखने में विश्वास करता है, वह अकेले ही समूह की नीतियों का निर्धारण करता है, अकेले ही मुख्य योजनाएँ बनाता है तथा भविष्य में समूह द्वारा किये जाने वाले कार्यों और उनके सम्बन्धों के तरीके आदि का निर्धारण करता है, वह अकेले ही व्यक्तिगत सदस्यों को दण्ड या पुरस्कार देने वाला न्यायाधीश और मध्यस्थ होता है तथा इस प्रकार सम्पूर्ण समूह में वहीं सदस्यों के भाग्य का अन्तिम निर्णायक होता है।

- **प्रजातंत्रिक नेता (Democratic leadership)**

प्रजातंत्रिक नेता निरंकुश नेता के बिल्कुल विपरीत होता है यह सबसे अधिक लोकप्रिय प्रकार है इसे लोकतंत्रिक नेतृत्व भी कहते हैं। लोकतंत्रिक नेता समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बनाये जाने वाले नीतियों एवं योजनाओं का निर्धारण करने के लिए सभी प्रमुख सदस्यों से विचार विमर्श करता है और जो बहुमत से सहमति होते हैं उन योजनाओं एवं नीतियों को लागू करता है इस प्रकार के नेतृत्व में अधिकांशतः समूह द्वारा नियुक्त होता है प्रजातंत्रिक नेता का उद्देश्य अपने स्वार्थों की पूर्ति करना नहीं बल्कि समूह का अधिकतम कल्याण करना होता है।

16.8 प्रजातान्त्रिक एवं निरंकुश नेता में अन्तर

नेतृत्व की विधियों और प्रकृति तथा उद्देश्यों के आधार पर निरंकुश तथा प्रजातान्त्रिक नेतृत्व के अन्तर को निम्न रूप में समझा जा सकता है।

निरंकुश नेतृत्व	प्रजातान्त्रिक नेतृत्व
<p>1. निरंकुश नेतृत्व में नेता स्वेच्छाचारी होता है। वह समूह की सभी नीतियों का निर्धारण स्वयं ही करता है जिसमें वह अपने हितों को सर्वोच्च स्थान देता है</p> <p>2. निरंकुश नेता कार्य की सम्पूर्ण योजना एक बार में नहीं बनाता बल्कि एक-एक कार्य का आदेश देता है। इस प्रकार यह अनिश्चित नेतृत्व है।</p> <p>3. निरंकुश नेतृत्व में सत्ता का केन्द्रीकरण किसी एक व्यक्ति या समूह में ही हो जाता है तथा वह प्रयत्न किया जाता है कि सत्ता का दूसरे समूह में हस्तान्तरण न हो।</p> <p>4. परिणाम के दृष्टिकोण से निरंकुश नेतृत्व समूह में चापलूसी, आलस्य, तनाव, भय और संकीर्णता को बढ़ावा देता है।</p> <p>5. निरंकुश नेतृत्व एक पंगु ओर पराश्रित समाज का निर्माण करता है, जिसमें नेता के निर्देशों के बिना समूह एक कदम भी आगे नहीं गए सकता।</p>	<p>1. प्रजातान्त्रिक नेतृत्व में नीतियों का निर्धारण समूह द्वारा होता है। नेता तो केवल एक प्रतिनिधि के रूप में इन नीतियों की रूपरेखा मात्र बनाता है।</p> <p>2. प्रजातान्त्रिक नेतृत्व में विचार विमर्श के द्वारा जो नीति निर्धारित होती है उसके आधार पर भविष्य में किये जाने वाले कार्य की सम्पूर्ण योजना पहले की बना ली जाती है। इससे नेतृत्व में निष्चितता आ जाती है।</p> <p>3. प्रजातान्त्रिक नेतृत्व में वास्तविक सत्ता सम्पूर्ण समूह के हाथों में होती है। साथ ही कार्यकुशल और परिश्रमी व्यक्तियों के बीच सत्ता सदैव हस्तान्तरित होती रहती है।</p> <p>4. प्रजातान्त्रिक नेतृत्व में तत्परता, साहस, आत्मनिर्भरता, कार्यशीलता तथा मित्रता जैसे गुणों की वृद्धि होती है।</p> <p>5. प्रजातान्त्रिक नेतृत्व एक आत्मनिर्भर और चेतन समाज का निर्माण करता है। इसमें कुछ समय के लिए नेता की अनुपस्थिति में भी समाज के संगठन को बनाये रखा जा सकता है।</p>

यद्यपि देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि निरंकुश और प्रजातान्त्रिक नेतृत्व का उपर्युक्त भेद उनके स्रोत पर आधारित होता है। निरंकुश नेतृत्व किसी बाहरी समूह से शक्ति ग्रहण करता है ओर इसलिए उसे उस समूह की अधिक

चिन्ता नहीं होती है। जबकि प्रजातान्त्रिक नेतृत्व में शक्ति का वास्तविक स्रोत वह समूह स्वयं होता है जिसमें एक नेता अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करता है। ऐसी स्थिति में उस समूह को आत्म-चेतन तथा संगठित बनाना प्रजातान्त्रिक नेता का पहला दायित्व होता है।

### 16.9 सारांश

नेता अपने समूह के सदस्यों को अपने व्यवहार एवं कार्यकलापों से प्रभावित करते हुए समूह के लक्ष्य एवं नीतियों को निश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा स्वयं भी समूह के व्यवहार से प्रभावित होता है।

कई बार नेतृत्व एवं प्रभुत्व को समान अर्थों में प्रयोग किया जात है पर प्रस्तुत इकाई में इनके अन्तर को सुस्पष्ट करते हुए नेतृत्व की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन किया है।

यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि अगर नेतृत्व की प्रकृति को पूर्णतः समझने के लिए नेता के कार्यों का वर्णन किया है तांकि छात्र-छात्राएँ नेतृत्व की प्रकृति को समझें। नेतृत्व के मुख्यतः दो प्रकार के कार्य होते हैं-1- प्रधान कार्य 2- गौण कार्य

विभिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों ने नेता के कई प्रकार एवं शैलियों का वर्णन किया है प्रस्तुत इकाई में हमने बोगार्डस, किम्बल्यंग एवं लिपिट एवं व्हाइट के वर्गीकरण का वर्णन करते हुए प्रजातान्त्रिक एवं निरंकुश नेतृत्व का विस्तृत रूप से वर्णन किया है ओर अन्त में सत्ताधारी एवं लोकतान्त्रिक नेतृत्व के अन्तर्गत का वर्णन किया है।

### 16.10 शब्दावली

- **नेता:** नेता समूह का वह सदस्य होता है जो अन्य लोगों से प्रभावित होने की अपेक्षा अपनी इच्छाओं के अनुसार व्यवहार करने हेतु उन्हें अधिक प्रभावित करता है।
- **नेतृत्व:** अन्य व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित एवं निर्धारित करने की योग्यता के आधार पर प्रभुत्व एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति प्राप्त करना नेतृत्व कहा जाता है।

### 16.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- किसी संगठन या कार्यालय में कार्यरत अधिकार को कहते हैं-

- |                   |                         |
|-------------------|-------------------------|
| (अ) नौकरशाह नेता  | (ब) निरंकुश नेता        |
| (स) विशेषज्ञ नेता | (द) प्रजातान्त्रिक नेता |

2- समूह के सदस्यों की सहमति द्वारा नियुक्त नेता होता है

- |                  |                         |
|------------------|-------------------------|
| (अ) निरंकुश नेता | (ब) प्रजातान्त्रिक नेता |
|------------------|-------------------------|

3- निरंकुश नेता समूह के अधिकार अपने पास रखता है।

(अ) सत्य (ब) असत्य

- 4- बोगार्डस ने नेतृत्व के प्रकार बताये हैं।  
(अ) 5 (ब) 6 (स) 7 (द) 4
- 5- प्रजातांत्रिक नेतृत्व सफल माना जाता है क्योंकि-  
(अ) नेता समूह के सदस्यों द्वारा नियुक्त होता है।  
(ब) समूह के कल्याण के प्रति जागरूक होता है।  
(स) विचार विमर्श के पश्चात् निर्णयों को लागू करता है।  
(द) उपरोक्त सभी।
- 6- नेतृत्व एवं प्रभुत्व में कोई अन्तर नहीं है-  
(अ) सत्य (ब) असत्य

उत्तर: 1.(अ) 2.(ब) 3.(अ) 4.(अ) 5.(द) 6.(ब)

### 16.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- डा० सिंह ए०के०; समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा; मोतीलाल बनारसी दास ,बंग्लो रोड, नई दिल्ली।
- डा० श्रीवास्तव डी० एन०; व्यक्तित्व मनोविज्ञान; साहित्य प्रकाशन रोड, आगरा ।
- डा० सिंह ए०के० ; व्यक्तित्व मनोविज्ञान।
- डा० ओझा राजकुमार ; मनोविज्ञान के सिद्धान्त एवं सम्प्रदाय; विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- बी० कुप्पुस्वामी ; समाज मनोविज्ञान एवं परिचय; हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़।
- लूनिया बी०एन०; भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास।

### 16.13 निबन्धात्मक प्रश्न

- नेतृत्व से आप क्या समझते हैं ? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
- नेतृत्व की परिभाषा देते हुए उसके कार्यों को बताइये?
- प्रजातांत्रिक एवं सत्ताधारी नेतृत्व के बारे में बताते हुए दोनों में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
- नेतृत्व के विभिन्न प्रकारों अथवा शैलियों का उल्लेख कीजिये।
- टिप्पणियाँ लिखिये-
  - प्रभुत्व एवं नेतृत्व
  - निरंकुश एवं प्रजातांत्रिक नेतृत्व

---

**इकाई-17 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ, विशेषताएँ एवं प्रकार (Meaning, Characteristics and Types of Social Problems)**


---

- 17.1 प्रस्तावना
- 17.2 उद्देश्य
- 17.3 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ
- 17.4 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ
- 17.5 सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया
- 17.6 सामाजिक परिवर्तन के प्रकार
- 17.7 सारांश
- 17.8 शब्दावली
- 17.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 17.11 निबंधात्मक प्रश्न

---

**17.1 प्रस्तावना**


---

समय बीतने के साथ-साथ व्यक्ति और समाज दोनों में ही परिवर्तन होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। व्यक्ति और समाज दोनों में ही परिवर्तन होते रहे हैं और होते रहेंगे। व्यक्ति और उसके द्वारा बनाई गई वस्तुओं एवं मान्यताओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, फलस्वरूप व्यक्ति के विचार, मूल्यों, रहन-सहन, जीवन-शैली, आदत, फैशन, खान-पान आदि में भी परिवर्तन होते रहते हैं, परिवर्तन प्रकृति का नियम है, और सामाजिक व्यवस्था को गतिशील बनाए रखने के लिए सामाजिक परिवर्तन भी आवश्यक है। अनेकों सामाजिक परिस्थितियों के कारण व्यक्ति में तथा व्यक्ति के कारण सामाजिक अवस्थाओं में परिवर्तन होते रहते हैं।

आज से यदि हम लगभग 50 वर्ष पूर्व भारतीय समाज के लोगों का अध्ययन करें, तो यह स्पष्ट हो जायेगा, कि 50 वर्ष पूर्व व्यक्तियों की अपेक्षा आज के व्यक्तियों के रहन-सहन, खान-पान, आदत, फैशन, आदि में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं आज समाज में आध्यापक की उतनी प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं है। जितना कि आज से पचास वर्ष पूर्व हुआ करता था। यू तो सामाजिक परिवर्तन समाजशास्त्र का मुख्य विषय है लेकिन आधुनिक युग में इस महत्वपूर्ण समस्या के अध्ययन की ओर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित

हुआ है। सामाजिक परिवर्तन प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक अथवा आधुनिक सभी प्रकार के समाजों की विशेषता रही है, इस परिवर्तन की गति कभी तीव्र हाती है तो कभी मन्द समूह के आकार में वृद्धि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन, सामाजिक संरचना में परिवर्तन धार्मिक विश्वासों एवं क्रियाओं का नवीन महत्व, विज्ञान का विकास, युद्ध और आपदा कुछ ऐसे तत्व हैं जो परिवर्तन सम्बन्धित हैं।

### 17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- सामाजिक परिवर्तन के अर्थ को समझ सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप सामाजिक संरचना में परिवर्तन को समझ सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों के बारे में जान सकेंगे।

### 17.3 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ

सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज में होने वाले परिवर्तनों से होता है और इन परिवर्तनों में केवल उन परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाता है, जो महत्वपूर्ण और विस्तृत प्रकृति के होते हैं एवं जो पूरे समाज में हाते हैं जैसे - यदि ज्यादातर तो परिवारों में पुत्र या पुत्री की शादी बिना दहेज के होने लगे, ओर लोग इसे सहर्ष स्वीकार कर ले तो इसे सामाजिक परिवर्तन माना जायेगा।

फिशर (1983) ने सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित करते हुए कहा है कि -

“ सामाजिक परिवर्तन में यानी समाज के प्रचलित मूल्यों, मानकों, भूमिकाओं तथा अन्य इसी तरह के तत्वों जिनसे होकर रहन-सहन के मूल अवस्था की अभिव्यक्ति हाती है परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

अतः सामाजिक परिवर्तनों का अर्थ सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन अथवा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तनों के फलस्वरूप समाज में रहने वाले व्यक्तियों का व्यवहार परिवर्तित हो जाता है निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं।

- (1) सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप सामाजिक संरचना में परिवर्तन होता है।
- (2) सामाजिक परिवर्तन से सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन होता है।
- (3) सामाजिक परिवर्तन में सामाजिक प्रक्रियाओं, अन्तर्क्रियाओं तथा संगठन में परिवर्तन प्रदर्शित होता है।
- (4) सामाजिक परिवर्तन से लोगों की कार्य- शैली, एवं विचारों में परिवर्तन आता है।
- (5) सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप जीवन के मूल्यों तथा भूमिकाओं में परिवर्तन होता है।

परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया है समाज के किसी भी क्षेत्र में विचलन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक, आदि सभी क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है परिवर्तन एक सर्वकालिक घटना है यह किसी न किसी रूप में हमेशा चलने वाली प्रक्रिया है।

#### 17.4 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ

सामाजिक परिवर्तन प्रायः समाज के मूल्यों भूमिकाओं तथा मानकों में परिवर्तन से हाता है और समाज के ज्यादातर व्यक्तियों को मान्य होते हैं, अतः सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित प्रमुख विशेषताएँ निम्न है।

- (1) सामाजिक परिवर्तन एक सर्वभौमिक प्रक्रिया है- सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया संसार के सभी समाजों में देखी गई है सामाजिक परिवर्तन की ये गति किसी समाज में तीव्र होती है और किसी समाज में धीमी होती है। भौतिकता के विकास के साथ-साथ संसार के सभी समाजों में ये परिवर्तन तीव्र गति से हुए है ग्रामीण जीवन हो या शहरी लोगों के मूल्यों विचारों अभिवृत्तियों, परम्पराओं, सम्बन्धों आदि में भी परिवर्तन हो रहे है
- (2) सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है- प्रायः समाज भौतिक और अभौतिक दोनों प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं, भौतिक परिवर्तन प्रत्यक्ष होते हैं जो हमें दिखाई देते हैं और अभौतिक परिवर्तन अप्रत्यक्ष होते हैं जो हमें दिखाई नहीं देते हैं सामाजिक परिवर्तन का अर्थ अभौतिक परिवर्तन से होता है जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देता है, समाज में रहने वाले लोगों के विचारों भावों अभिवृत्तियों, मान्यताओं तथा मूल्यों में परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप से होता है, उसका आभास नहीं हो पाता है।
- (3) सामाजिक परिवर्तन एक निश्चित प्रक्रिया है- कोई भी ऐसा समाज या क्षेत्र नहीं है, जिसमें अभी तक किसी भी प्रकार का कोई सामाजिक परिवर्तन न हुआ हापे समाज में होने वाले परिवर्तनों से न तो बचा जा सकता है और न ही उसे रोका जा सकता है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ लोगों के विचारों, मूल्यों, भावों, परम्पराओं अभिवृत्तियों में परिवर्तन आना एक स्वभाविक एवं निश्चित प्रक्रिया है।
- (4) सामाजिक परिवर्तन अपूर्वनुमेय होता है- सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कभी रूकती नहीं है लेकिन इस सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना कि सामाजिक परिवर्तन किस दिशा में होता व किस मात्रा में होगा, असम्भव है ज्यादा से ज्यादा हम ये कह सकते हैं, कि आने वाले समय में इस क्षेत्र में इस तरह का परिवर्तन निश्चित होगा, लेकिन ये परिवर्तन कब और कितनी मात्रा में होगा यह कहना मुश्किल होगा, जैसे भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा में काफी परिवर्तन हुए है और हो रहे है। परन्तु निश्चित रूप से हम ये नहीं कह सकते हैं कि इस तरह के परिवर्तन का स्वरूप आगे आने वाले समय में क्या होगा ?
- (5) सामाजिक परिवर्तनों की गति अनियमित होती है- सामाजिक परिवर्तन की गति नियमित न होकर अनियमित होती है कभी इनकी गति तीव्र हो जाती है तो कभी मन्द / किसी समाज में परिवर्तन की गति का अनुमान हम

तुलना के आधार पर करते हैं विभिन्न समयों पर हुए परिवर्तन की तुलना करके इसकी गति का मापन करते हैं। जैसे - भारत में स्वतंत्रता से पूर्व स्त्री शिक्षा व तकनीकी विकास के परिवर्तन की गतिको धीमी थी लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात इनमें स्त्री शिक्षा व तकनीकी परिवर्तन में काफी तीव्र गति से हुए हैं।

(6) सामाजिक परिवर्तन में क्रमिक प्रतिक्रिया श्रृंखला होती है- किसी भी समाज में कोई सामाजिक परिवर्तन अचानक नहीं होते हैं बल्कि प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन का कोई न कोई परिप्रेक्ष्य होता है और ये परिवर्तन एक क्रमबद्ध श्रृंखला में होते हैं। समाज के मूल्यों मानको भूमिकाओं आदि के अनेक अंश होते हैं किसी एक अंश में परिवर्तन होने वह दूसरे अंश को परिवर्तित कर देता है। और ये प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि सामाजिक सम्बन्ध में पूर्ण रूप से परिवर्तन न हो जाए जैसे सरकार द्वारा स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के फलस्वरूप उनको अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है, रोजगार के प्रति जागरूक हुई है फल स्वरूप उनमें आर्थिक स्वतंत्रता आई है अतः सामाजिक परिवर्तन में एक क्रमिक प्रतिक्रिया श्रृंखला होती है।

(7) सामाजिक परिवर्तनों से समूह में महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है - प्रसिद्ध समाजशास्त्री मूरें (1974) ने अपनी पुस्तक सामाजिक परिवर्तन में लिखा है कि सामाजिक परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था का अंग है और सामाजिक परिवर्तनों के कारण सामाजिक व्यवस्था के प्रत्येक पहलू में परिवर्तन हो सकता है। सामाजिक परिवर्तन समूह के लिए इसलिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं क्योंकि सामाजिक परिवर्तनों के कारण न केवल सामाजिक सम्बन्धों व सामाजिक संरचना में परिवर्तन होते हैं, बल्कि लोगों की जीवन शैली कार्य-प्रणाली, सामाजिक संगठन, सामाजिक अन्तः क्रियाओं में भी परिवर्तन होते हैं। इसीलिए सामाजिक परिवर्तनों को सामाजिक विरासत के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

(8) सामाजिक परिवर्तन में प्रतिरोध भी होता है - जब-जब सामाजिक परिवर्तन की आग समाज में सुलगती है कुछ लोग उस आग पर पानी फेकने के लिए तत्पर हो जाते हैं परिणाम स्वरूप सामाजिक परिवर्तन की गति धीमी हो जाती है उदाहरण के लिए भारत सरकार द्वारा दलितों को सामाजिक न्याय एवं बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए मंडल कमीशन की सिफारिशें लागू करके महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन लाना चाहती थी, जिसका व्यापक प्रतिरोध हुआ था। अतः सामाजिक परिवर्तन में प्रतिरोध का भी गुण पाया जाता है।

(9) कभी-कभी सामाजिक परिवर्तन में आकस्मिकता का गुण पाया जाता है - प्रायः कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि सामाजिक परिवर्तन बहुत ही आकस्मिक ढंग से हो जाता है अर्थात् कुछ सामाजिक परिवर्तन बहुत कम समय के प्रयास में हो जाते हैं। प्रायः ऐसे परिवर्तनों का सम्बन्ध उन मानको या मूल्यों के परिवर्तनों के लिए तत्पर रहते हैं और ऐसे स्थिति में लोगों को सिर्फ एक प्रभावशाली नेतृत्व का मात्र इन्तजार रहता है। जैसे पहले भारतीय समाज में सती प्रथा का चलन था और इस प्रथा के प्रति जनता में भी एक तरह की व्यग्रता और बेचैनी थी और राजा राम मोहन राय का नेतृत्व मिलते ही भारतीय समाज से सती प्रथा का प्रचलन समाप्त हो गया। और



शायद यही कारण था कि इस तरह का सामाजिक परिवर्तन अन्य सामाजिक परिवर्तनों की तुलना में काफी आसानी से और बहुत जल्दी हो गया।

विलवर्ट मूरे के अनुसार “सामाजिक परिवर्तन यद्यपि एक अनिवार्य नियम है लेकिन अतीत में होने वाले परिवर्तन की तुलना में वर्तमान से सम्बन्धित सामाजिक परिवर्तन कहीं अधिक स्पष्ट होते हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध हमारे निजी अनुभवों से होता है, दूसरे जो परिवर्तन सामान्य गति से होते हैं वे हमारे सामाजिक जीवन को कहीं अधिक गहराई से प्रभावित करते हैं क्योंकि उनकी उपयोगिता को समझकर उन्हें जीवन के एक सामान्य ढंग के रूप में ग्रहण कर लिया जाता है”।

### 17.5 सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति से यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न समाजों में सामाजिक परिवर्तन का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता है, यद्यपि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कई अवस्थाओं से होकर गुजरती है अधिकांश तीन अवस्थाओं को महत्वपूर्ण बताया है।

- पिघलने की अवस्था
  - परिवर्तन की अवस्था
  - पुनः ठोस करने की अवस्था
- (i) पिघलने की अवस्था- सामाजिक परिवर्तन की यह पहली अवस्था है इस अवस्था में व्यक्तियों को पुराने धिसे-पिटे सामाजिक सम्बन्धों का त्याग करके उनकी जगह पर नये सम्बन्धों को विकसित करने के लिए एक तरह से पिघलाया जाता है उस अवस्था में वास्तव में नये मूल्यों एवं मानकों की आवश्यकताओं की पहचान लोगों में करायी जाती है ताकि वे उसकी आवश्यकताओं को समझें और उसके प्रति स्वयं भी आकर्षित हो महात्मा गाँधी ने छुआछूत जैसी सामाजिक समस्या को दूर करके एक क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन लाने के उद्देश्य से पहले लोगों को इसके दुष्कर एवं हानिकारक प्रभाव के प्रति जागरूक किया और फिर उसका परित्याग करने की आवश्यकता उत्पन्न की।
- (ii) सामाजिक परिवर्तन की इस अवस्था में लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन्हें अपने पुराने मूल्यों एवं मानकों का परित्याग कर देना चाहिए और उसकी जगह पर नये मूल्यों एवं मानकों के अनुरूप व्यवहार करना चाहिए। इस तरह की अवस्था में लोग जैसे- बाल - विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, छूआछूत जैसी सामाजिक बुराई को हटाने का निश्चित रूप से निर्णय ले लेते हैं। और इस अवस्था में सामाजिक परिवर्तन का जन्म होता है।

- (iii) पुनः ठोस करने की अवस्था- इस आन्तिम अवस्था में लोगों द्वारा स्वीकृत किये गये नये मूल्यों एवं मानकों को सुदृढ़ किया जाता है जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग उसे व्यवहार में लाये और अमल करें। सती प्रथा, बाल-विवाह, हुआ-छूत जैसी सामाजिक बुराईयाँ अब ना के बराबर मिलती है। प्रायः सामाजिक परिवर्तन की पहली अवस्था में सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जाती है दूसरी अवस्था में सामाजिक परिवर्तन का जन्म होता है और तीसरी अवस्था में सामाजिक परिवर्तन का संपोषण कर उसे सुदृढ़ बनाया जाता है। डाल्टन के अनुसार सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में निहित चरण निम्न है।
- आत्मा सम्मान के प्रति प्रारंभिक खतरा- इस अवस्था में समाज में प्रचालित मूल्यों तथा मानकों के प्रति लोगों के मन में एक ओर तो खतरा उत्पन्न हो जाता है परन्तु वही दूसरी ओर वो उसे छोड़ने का साहस नहीं कर पाते हैं क्योंकि इससे उनके आत्मा - सम्मान एवं प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है जिस समय बाल- विवाह का चलन था उस समय जनता में इस प्रथा के प्रति असंतोष व्याप्त था क्योंकि विवाह के बाद उनका बचपन छिन जाता था कभी-कभी पति की मृत्यु के बाद उन्हें अनेक सामाजिक परेशानियों का सामना करना पड़ता था लेकिन इस प्रथा का विरोध करने का साहस कोई नहीं करता था क्योंकि इस प्रथा से सम्बन्धित सामाजिक मूल्यों के प्रति उनके आत्म सम्मान को ठेस पहुँचती थी। और धीरे-धीरे लोगों ने इसका विरोध करना शुरू किया।
  - पुराने सामाजिक सम्बन्धों को तोड़ना- इस अवस्था में लोग पुराने सामाजिक मूल्यों मानकों, आदि को तोड़ने का हठ निश्चय कर लेते हैं, और समाज उसकी जगह पर नए मूल्यों एवं मानकों को पूर्ण सहमति दे देते हैं और इस अवस्था में सामाजिक परिवर्तन का जन्म हो जाता है जैसे - समाज सती प्रथा को बन्द करने की पूर्ण स्वीकृत दे देता है।
  - परिवर्तन की सुदृढ़ता- इस अवस्था में परिवर्तन की सुदृढ़ता को और मजबूत किया जाता है और लोग समय हुए परिवर्तन के अनुरूप सामाजिक मूल्यों एवं मानकों का निर्माण करते हैं जिससे लोग उन नियमों मूल्यों एवं मानकों के अनुरूप चिन्तन कर सकें और इसके अनुरूप व्यवहार कर सकें, उदाहरण के लिए भारतीय समाज में बाल- विवाह की जगह पर वयस्क विवाह का सामाजिक परिवर्तन सुदृढ़ हो चुका है। और अब हमारा चिन्तन भी उसी के अनुरूप है।
  - आत्म-विश्वास का निर्माण- सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप उससे सम्बन्धित मूल्यों, मानकों, निर्माणों के प्रति विश्वास का निर्माण होता है और उसी के अनुरूप कार्य करना वे अपना मान- सम्मान समझते हैं उदाहरण के लिए, भारतीय समाज में वयस्क विवाह के प्रति लोगों की पूर्ण आस्था हो गई है।

स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कई अवस्थाओं से होकर गुजरती है और सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए इन प्रक्रियाओं को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

### 17.6 सामाजिक परिवर्तन के प्रकार

सामाजिक परिवर्तन के प्रकार प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक काज (1974) ने सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या सामाजिक मनोवैज्ञानिक आधार पर की है:-

- (1) अनुक्रमिक सामाजिक परिवर्तन
- (2) आमूल सामाजिक परिवर्तन
- (3) सांस्कृतिक परिवर्तन

**(1) अनुक्रमिक सामाजिक परिवर्तन-** अनुक्रमिक सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य जिसमें मौजूदा सामाजिक संरचना में तो परिवर्तन हो जाता है परन्तु समाज के मूल सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक प्रबन्धों को कोई क्षति नहीं होती है इस ढंग का परिवर्तन मौजूदा सामाजिक संरचना को आर्थिक विस्तृत कर देता है या उसे एक नई दिशा में परिवर्तित कर देता है। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रकार के सामाजिक कल्याण सम्बन्धी नीतियों से आने वाले सामाजिक परिवर्तन इस श्रेणी के परिवर्तन के अन्तर्गत आते हैं। भारतीय समाज में बाल-विवाह, सती प्रथा आदि के समाप्त हो जाने से उत्पन्न सामाजिक परिवर्तन इस श्रेणी के परिवर्तन के अन्तर्गत आते हैं।

**(2) आमूल सामाजिक परिवर्तन-** आमूल सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य ऐसे परिवर्तनों से है जिसमें सामाजिक संरचना में व्यवस्था ही बदल जाती है तथा जिसके परिणाम स्वरूप समाज के राजनैतिक एवं आर्थिक तन्त्र पहले से बिल्कुल परिवर्तित हो जाते हैं और परिणाम स्वरूप सामाजिक संरचना के कुछ तत्वों का नाश हो जाता है और उसकी जगह पर नये तत्वों का निर्माण हो जाता है अर्थात् नई व्यवस्था लागू कर राजनैतिक कारक व भारतीय समाज में अंग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन उत्पन्न सामाजिक परिवर्तन इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

**(3) सांस्कृतिक परिवर्तन-** ऐसे परिवर्तन को कहा जाता है जिसमें समाज के व्यक्तियों के व्यवहारों, विचारों, मूल्यों, मनोवृत्तियों मान्यताओं आदि में परिवर्तन कहते हैं। इस तरह के सामाजिक परिवर्तन में सामाजिक संरचना परिवर्तन नहीं आता है परन्तु लोगों के सामान्य रहन सहन एवं उनके मूल्यों में एक पूर्वग्रहित बदलाव आता है। भारतीय समाज पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव का प्रभाव इसका उत्तम उदाहरण है।

तीन मुख्य परिवर्तनों के अतिरिक्त सामाजिक परिवर्तन को उसके विमा एवं दिशा के आधार पर निम्न चार वर्गों में भी विभाजित किया जा सकता है।

- a. चेतन सामाजिक परिवर्तन
- b. अचेतन सामाजिक परिवर्तन
- c. उर्ध्वगामी सामाजिक परिवर्तन

## d. अधोगामी सामाजिक परिवर्तन

(a) **चेतन सामाजिक परिवर्तन:-** इस श्रेणी में ऐसे परिवर्तनों को रखा जाता है जिसमें समाज के मूल्यों एवं मानकों के लिए व्यक्तियों को तथा नेतृत्व करने वाले को काफी संघर्ष करना पड़ता है इस तरह का परिवर्तन योजनावद्ध होता है इसके लिए समाज में रहने वाले लोगों को आन्दोलन तथा क्रान्ति करके अपनी आवाज को बुलन्द करना पड़ता है भारतीय समाज में गॉंधी जी ने अंग्रजों द्वारा बनाए गए नमक कानून को तोड़ने के लिए नमक सत्याग्रह आन्दोलन चलाकर एक सामाजिक परिवर्तन लाना चेतन सामाजिक परिवर्तन का उदाहरण है।

(b) **अचेतन सामाजिक परिवर्तन:-** कुछ सामाजिक परिवर्तन ऐसे होते हैं जो सहज और स्वाभाविक रूप से अपने आप हो जाते हैं इसके लिए समाज के व्यक्तियों या नेताओं को कोई विशेष कोशिश नहीं करनी पड़ती है और न ही किसी विशेष आन्दोलन या अभियान का सहारा लेना पड़ता है जैसे - बाढ़, भूकम्प, महामारी, सूखा (अकाल) आदि के समय अपने आप ही सामाजिक संरचना में काफी परिवर्तन आ जाते हैं।

(c) **उर्ध्वगामी सामाजिक परिवर्तन:-** इसके अन्तर्गत ऐसे सामाजिक परिवर्तनों को रखा जाता जिसकी दिशा धनात्मक होती है तथा जिससे सामाजिक संरचना पहले से अधिक उन्नत हो जाती है इसमें सामाजिक मूल्यों एवं मानकों में परिपक्वता तथा वास्तविकता काफी बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रकार की सरकारी समाज, कल्याण नीतियों से शिक्षा पर बल, जनसंख्या की वृद्धि पर रोक, पल्स पोलियों टीकाकरण अभियान से भारतीय समाज जो धनात्मक परिवर्तन आये है वे उर्ध्वगामी सामाजिक परिवर्तन के मुख्य उदाहरण हैं।

(d) **अद्योगामी सामाजिक परिवर्तन:-** अद्योगामी सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत ऐसे परिवर्तनों को रखा जाता है जिससे वास्तव में समाज में उन्नति न होकर अवनति होती है और वर्तमान सामाजिक मूल्यों एवं मानकों को टेस पहुँचती है सिसे वर्तमान सामाजिक संरचना अस्त व्यस्त हो जाती है।

---

### 17.7 सारांश

सामाजिक परिवर्तन का क्षेत्र बहुत व्यापक है। समाज में हमारे सभी व्यवहार किसी न किसी सामाजिक नियम से प्रभावित होते हैं हम अपने सामाजिक मूल्यों के अनुसार कुछ चीजों को अच्छा समझते हैं और कुछ को बुरा विभिन्न आयु लिंग और प्रतिष्ठा वाले व्यक्तियों से हमारे सम्बन्ध अलग-अलग तरह के होते हैं इस प्रकार जब कभी भी इन सामाजिक नियमों, मूल्यों अथवा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन के तत्व स्पष्ट होने लगते हैं तब सामाजिक व्यवस्था का रूप भी बदलने लगता है परिवर्तन की इसी दशा को हम सामाजिक परिवर्तन की संज्ञा देते हैं।

---

### 17.8 शब्दावली

- **सार्वभौमिक:** सभी में (सर्वव्याप्त)

- अपूर्वानुमेय: जिसका पहले से कोई अनुमान
- मूल्य: भावनाओं क्रियाओं या अभिवृत्ति की उपत्ति है
- अभिवृत्ति: विचारों की अभिव्यक्ति
- प्रतिरोध: रूकावट

### 17.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

सत्य / असत्य बताइये -

- 1) सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समाज में बदलाव से है (सत्य/ असत्य)
- 2) सामाजिक परिवर्तन का पारिवारिक व्यवस्था पर काफी कुप्रभाव पड़ा है। (सत्य / असत्य)
- 3) सामाजिक परिवर्तन के नाकारात्मक परिणाम भी है जैसे सामाजिक तनाव। (सत्य / असत्य)
- 4) सामाजिक परिवर्तनों के कारण लोगों में अधिकार के प्रति चेतना बढ़ी है। (सत्य / असत्य)
- 5) सामाजिक परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। (सत्य / असत्य)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (किसी एक पर सही का निशान लगाइये) -

- (1) किसी समाज की सामाजिक संरचना में परिवर्तन को कहते हैं ?
  - (i) विकास
  - (ii) सामाजिक परिवर्तन
  - (iii) सामाजिक क्रान्ति
  - (iv) सामाजिक विघटन
- (2) निम्न में से किसे सामाजिक परिवर्तन कहा जायेगा
  - (i) वेस-भूषा में परिवर्तन
  - (ii) पति द्वारा अपनी पत्नी का शोषण करना
  - (iii) आर्थिक नीतियों में परिवर्तन
  - (iv) केन्द्रक परिवारों की संख्या में वृद्धि
- (3) निम्न में से कौन सी एक दशा सामाजिक परिवर्तन का स्रोत नहीं है-
  - (i) परम्परा
  - (ii) शिक्षा
  - (iii) सामाजिक कानून
  - (iv) औद्योगीकरण
- (4) सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है ?
  - (i) समाज में बदलाव
  - (ii) समाज में अवनति होती है
  - (iii) जीवन पद्धतियों में परिवर्तन
  - (iv) उपर्युक्त सभी
- (5) अद्योगामी सामाजिक परिवर्तन में
  - (i) समाज में उन्नति होती है
  - (ii) समाज में अवनति होती है
  - (iii) उन्नति और अवनति दोनों होती है
  - (iv) इनमें से कोई नहीं

---

17.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

- डा० अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
  - डा० आर० एन० सिंह: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
  - डा० रणजीत सिंह: सामाजिक मनोविज्ञान।
- 

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. अनुक्रमिक सामाजिक परिवर्तन से आप क्या समझते हैं?
2. अद्योगामी सामाजिक परिवर्तन क्या है ?
3. सांस्कृतिक परिवर्तन किसे कहते हैं ?
4. सामाजिक परिवर्तन की पहली अवस्था क्या है ?
5. डॉल्टन के अनुसार सामाजिक परिवर्तन प्रक्रिया के कितने चरण होते हैं ?
6. सामाजिक परिवर्तन के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

---

**इकाई-18 निरक्षरता, गरीबी एवं बेरोजगारी  
(Illiteracy, Poverty and Unemployment)**

---

- 18.1 प्रस्तावना
- 18.2 उद्देश्य
- 18.3 निरक्षरता
  - 18.3.1 निरक्षरता का कारण
  - 18.3.2 निरक्षरता दूर करने के उपाय
- 18.4 गरीबी
  - 18.4.1 गरीबी का कारण
  - 18.4.2 गरीबी के कारण उत्पन्न समस्याएँ
  - 18.4.3 गरीबी को दूर करने के उपाय
  - 18.4.4 गरीबी अन्मूलन हेतु कुछ योजनाएँ
- 18.5 बेरोजगारी
  - 18.5.1 बेरोजगारी के प्रकार
  - 18.5.2 भारत में बेरोजगारी की स्थिति
  - 18.5.3 भारत में बेरोजगारी के कारण
  - 18.5.4 बेरोजगारी दूर करने हेतु सुझाव
  - 18.5.5 बेरोजगारी दूर करने हेतु सरकारी प्रयास
  - 18.5.6 बेरोजगारी के परिणाम
- 18.6 सारांश
- 18.7 शब्दावली
- 18.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 18.10 निबंधात्मक प्रश्न

---

**18.1 प्रस्तावना**

प्रत्येक समाज कुछ ऐसे नियमों और मूल्यों पर आधारित होता है, जिसकी सहायता से समाज में रहने वाले व्यक्ति एक दूसरे से सीख सकें और अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। कभी-कभी सामाजिक परिवर्तन की स्थिति

में एक समाज के सदस्यों की आवश्यकताएं और आकांक्षाएँ तो बदल जाती है। लेकिन सामाजिक ढांचे में इसके अनुरूप परिवर्तन नहीं हो पाता है फलस्वरूप कुछ अवरोध या तनाव उत्पन्न हो जाते हैं और सामाजिक असन्तुलन पैदा करते हैं। सामाजिक अनुकूलन में बाधा डालने वाली दशाओं या सामाजिक जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाली स्थित को हम सामाजिक समस्याओं की संज्ञा देते हैं।

सामाजिक समस्या में सामूहिकता का तत्व विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, यदि कोई बाधा सम्पूर्ण समूह के जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने के बाद भी यदि सामाजिक संरचना से सम्बन्धित नहीं होती है तो उसे हम सामाजिक समस्या नहीं कहेंगे उदाहरण के लिए- भूकम्प, बाढ़, सूखा, आदि सामाजिक समस्याएँ होकर प्राकृतिक समस्याएँ हैं जबकि शिक्षावृत्ति भ्रष्टाचार, बेकारी, निर्धनता, वेश्यावृत्ति, आशीक्षा, का सम्बंध एक विशेष सामाजिक संरचना से होने के कारण हम इन्हें सामाजिक समस्या की संज्ञा देते हैं।

सामाजिक समस्या का अर्थ उन परिस्थितियों से है, जिन्हें समुदाय के अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अपने स्थापित नियमों सामाजिक मूल्यों, तथा समूह कल्याण के विरुद्ध माना जाता है और इसलिये इनको दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। कभी समाज के कुछ न कुछ सामाजिक समस्याएँ पाई जाती है। कही इसका स्वरूप सामान्य होता है तो कही गम्भीर अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी और हमारे समाज में कुछ ऐसे गम्भीर समस्याएँ है जिनका समाधान आवश्यक है क्योंकि इनका सम्बन्ध हमारे देश की प्रगति से होता है इस इकाई में हम ऐसी ही कुछ सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

## 18.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- विभिन्न सामाजिक समस्याओं आशिक्षा, गरीबी एवं बेरोजगारी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अशिक्षा, गरीबी व बेरोजगारी के क्या कारण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इन सामाजिक समस्याओं के निवारण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इन सामाजिक समस्याओं हेतु सरकार द्वारा क्या प्रयास किये जा रहे हैं। के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

## 18.3 निरक्षरता

किसी भी समाज की प्रगति के लिए शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति सर्वशिक्षा विकास होता है। और उस देश की प्रगति शिक्षा पर ही निर्भर करती है। शिक्षा के अभाव में कोई भी समाज प्रगति नहीं कर सकता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। और यहा की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और गाँवों में अभी भी पढ़ाई की जगह काम को प्रधानता दी जाती है।



अशिक्षा को दूर करने के लिए हर जनपद में राजीव गांधी नवोदय विद्यालयों की स्थापना की गई है, प्राथमिक शिक्षा शत-प्रतिशत नामांकन, ठहराव व लिंग भेद समाप्त करने के लिए 'मध्याह्न भोजन योजना' भी संचालित है। और इस योजना से कई लाख बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं। महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कस्तूरबा गाँधी आवासीय बालिका विद्यालयों की स्थापना की गई है इन विद्यालयों में निःशुल्क शिक्षा, व निःशुल्क आवासीय सुविधा प्रदान की जा रही है। शिक्षा ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम अच्छे - बुरे, उचित- अनुचित, लगत-सही का निर्णय कर पाते हैं। उचित शिक्षा व ज्ञान के अभाव में आज भी लोग दूसरों से ठगें जाते हैं।

### 18.3.1 निरक्षरता का कारण -

सरकार द्वारा अनेकों कार्यक्रम चलाये जाने के बावजूद भारत में अशिक्षा के कई कारण निम्न हैं -

- लोगों की आर्थिक स्थिति- जिसके कारण घर के बच्चे भी काम करके पैसे कमाने को मजबूर हो जाते हैं। भारत की अधिकांश जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन यापन करती है, इसलिए ऐसी स्थिति में परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी रोजी- रोटी व दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काम करने की सोचता है जिसके कारण ये विद्यालय से दूर होते जाते हैं।
- सामाजिक कारण- घर से विद्यालय की दूरी अधिक होने के कारण सुरक्षा आदि की दृष्टि से लोग लड़कियों को विद्यालय भेजना कम पसन्द करते हैं यही कारण है कि हमारे यहाँ लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की साक्षरता दर कम है।
- राजनैतिक कारण- सरकार द्वारा अशिक्षा को दूर करने के लिए अनेक योजनाएँ चलायी जा रही हैं, जैसे - निःशुल्क पाठ्य सामग्री, मिड डे मील, (मध्याह्न भोजन व्यवस्था) आदि चलाई जा रही हैं, लेकिन भ्रष्टाचार व गलत मानसिकता के चलते इन योजनाओं का लाभ उन तक नहीं पहुँच पा रहा है।
- मनोवैज्ञानिक कारण- स्कूल जाकर ये क्या करेंगे, अगर काम करेंगे तो दो पैसे मिलेंगे इस तरह की सोच भी अशिक्षा का एक मुख्य कारण है।
- गाँवों में अभी भी शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम ठीक तरह से लागू नहीं हो पाए हैं जिसके कारण अधिकांश लोग अभी भी शिक्षित नहीं हो पाए हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में अभी पढ़ाई की जगह काम को अधिक महत्व देते हैं। खासकर लड़कियों को वे पढ़ाई की जगह घर के काम काज व अपने छोटे भाई बहनों की देखरेखा में लगा देते हैं।
- समुदाय या कमेटी ज्ञान को बांटने के लिए प्रोत्साहन का अभाव।

भारत में साक्षरता / निरक्षरता दर (प्रतिशत में)

वर्ष	पुरुष		महिला		योग	
	साक्षर प्रतिशत	निरक्षर प्रतिशत	साक्षर	निरक्षर	साक्षर	निरक्षर
1991	64.4	35.87	39.29	60.71	52.38	34.62
2001	75.65	24.35	54.16	45.84	65.38	34.62
2011	82.14	17.86	65.46	34.54	74.04	25.96

18.3.2 निरक्षरता दूर करने के उपाय -

अशिक्षा के कारण व्यक्ति का भविष्य अन्धकार मय हो जाता है, इसे दूर करने के लिए निम्न उपाय अपनाये जाने चाहिए-

- सभी के शिक्षा अनिवार्य:- सभी बच्चों के प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए इनके गरीब बच्चों के छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाए जिससे गरीबी इनकी पढ़ाई में बाधा न बने।
- निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था:- गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले बच्चों के निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था लागू की जाए।
- लोगों की अभिवृत्ति में परिवर्तन करके - लोगों को ये बताना कि शिक्षा उन्हें क्या - क्या लाभ है उनकी सोच में परिवर्तन लाना क्यों कि आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में पढ़ाई की जगह कार्य की ज्यादा महत्व देते हैं।
- व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहन - भारत में अशिक्षा का मुख्य कारण गरीबी है, इसलिए प्राथमिक स्तर पर ही पढ़ाई के साथ व्यावसायिक शिक्षा भी दी जाए सिसे ही पढ़ाई के साथ वे व्यवसाय करने योग्य भी बन सकें।
- ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु अनेक आकर्षक योजनाएँ चलाई जाए सिसे लोग विद्यालय के प्रति आकर्षित हो।
- काम करने वालों के लिए सायंकालीन कक्षाएँ चलाकर उन्हें शिक्षित किया जा सकता है।
- भ्रष्टाचार को दूर करके - भ्रष्टाचार की वजह से थे प्रोग्राम ठीक से स्कूलों तक नहीं पहुँच पाते है, इन स्कीमों का आधा बजट तो घोटालों की वजह से बेकार हो जाता है जैसे मध्याह्न भोजन व्यवस्था, गरीब बच्चों को ध्यान में रखकर बनाई गई योजना कि बच्चों को पढ़ाई के साथ भोजन भी मिले और निर्धनता उनकी पढ़ाई में बाधक न बने। फिर भी आए दिन मिड डे मील खाकर बच्चों के बीमार होने की घटनाएँ हमें सुनाई देती है। क्योंकि लोग घटिया समान इस्तेमाल कर पैसा खाने से बाज नहीं आते है।

- पिछले एक दशक में साक्षरता के दर में सिर्फ 990 की वृद्धि दर्ज है लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में निरक्षरता का प्रतिशत अधिक देखा गया है लड़कियों में साक्षरता दर में वृद्धि हेतु सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ चलाई जा रही है जैसे महिला समाख्या योजना (1989) ग्रामीण महिलाओं को समानता और सजगता के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था, किशोरी बालिका योजना (1992) गरीब परिवार की बालिकाओं को समुचित स्वास्थ्य, पोषण तथा शिक्षा की व्यवस्था, बालिका समृद्धि योजना (1997) उस योजना में गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों में जन्म लेने वाली बालिका की माता को पौष्टिक आहार एवं बालिका की कक्षा 10 तक की पढ़ाई हेतु नगद राशि दी जाती है।

#### 18.4 गरीबी

“ सामान्य शब्दों में धन के अभाव को गरीबी की संज्ञा दी जाती है लेकिन वैज्ञानिक शब्दों में गरीबी का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा, और मकान) को संतुष्ट करने में असमर्थ रहता है गरीबी रेखा की अवधारणा सर्वप्रथम सन् 1945 में खाद्य एवं कृषि संगठन के महानिदेशक जार्ज लायर्ड और यारा द्वारा प्रस्तुत की गई। गरीबी रेखा का आशय उपयोग की वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हो पाती है। तीन चौथाई भाग उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, तामिलनाडु व महाराष्ट्र में निवास करते हैं। गरीबी या निर्धनता एक ऐसा प्रत्यय है जिसके लिए व्यक्ति की सामाजिक - सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है हर देश में गरीबी का आधार भिन्न-भिन्न है उदाहरण के लिए अमेरिकन परिवार में धर में कार या टेलीविजन न होना गरीबी का सूचक हो सकता है परन्तु हमारे देश में इन सूचकों के आधार पर गरीबी को ही समझा जा सकता है। अनेक अध्ययनों द्वारा ये ज्ञात होता है कि ज्यों - ज्यों समाज का स्तर घटता जाता है ज्यों - ज्यों गरीबी निर्धारित करने वाली रेखा भी परिवर्तित होती जाती है। सामान्यतः आर्थिक दृष्टिकोण से समाज के लोगों को निम्न चार अवस्थाओं में बांटा जा सकता है।

- (1) वे लोग जो न्यूनतम निर्वाह स्तर पर अथवा उससे नीचे है।
- (2) वे लोग जो जीवन की आवश्यकताओं को आसानी से जुटा पा रहे हैं
- (3) वे लोग जो आराम की अर्थव्यवस्था में जीवन व्यतीत करते हैं।
- (4) वे लोग जो विलासिता के स्तर पर है जिनके पास आर्थिक स्थिति इतनी मजबूत है कि वे जिस ढंग से चाहें अपनी जिन्दगी व्यतीत कर सकते हैं।

हमारे यहाँ अधिकांश व्यक्ति पहले प्रकार की अवस्था में आते है अर्थात् न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर है, या उससे नीचे है गरीबी के कारण कई महत्वपूर्ण समस्याएँ उत्पन्न होती है जैसे –

- पारिवारिक असन्तोष एवं कलह- गरीबी के कारण परिवार में कई कारणों (दैनिक आवश्यकताओं, भोजन वस्त्र आदि) से असन्तोष कहता है और धीरे-धीरे ये कलह का रूप धारण कर लेते हैं और परिवार के

सदस्यगण सीमित साधनों का अपनी - आनी ओर खींचने में लगे रहते हैं जिससे एक - दूसरे के प्रति स्नेह व प्रेम में कमी आने लगती है आपस में अविश्वास एवं असन्तोष की भावना उत्पन्न हो जाती है और परिवारिक विघटन की समस्या उत्पन्न होती है।

- उन्नति के मार्ग में बाधाएँ- गरीबी व्यक्ति तथा उसके परिवार के सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक एवं आर्थिक उन्नति में बाधा उत्पन्न करती है इतनी ही सामाजिक क्षेत्र में भी वह पिछड़ने लगता है क्योंकि गरीब व्यक्ति के सामने धनाभाव के कारण कई तरह की समस्याएं उत्पन्न हो जाती है कि उनके बोझ व वह दबने लगता है।
- आकांक्षा स्तर में कमी- हेरिंगटन एवं पार्क (1980) ने अपने सह - सम्बन्धात्मक अध्ययनों के आधार पर बताया कि गरीब परिवार के बच्चों का आकांक्षा स्तर काफी कम था। गरीबी बच्चों के आकांक्षा स्तर को कम कर देती है। वे रोजी रोटी के अलावा कुछ और सोच ही नहीं पाते है।
- हीनता की भाव में तीव्रता- गरीब परिवार के बच्चें अपने आप को देखकर तथा अवस्था को समझकर एक ऐसा सम्प्रत्यय विकसित कर लेते हैं जिसे नकारात्मक आत्म प्रत्यय कहा जाता है इस तरह के सम्प्रत्यय के फल स्वरूप वे अपने आप को हर तरह से हीन व कामजोर समझते है और इस भावना के चलते वे स्कूल में पिछड़ने लगते है।
- असामाजिक व्यवहारों के प्रति झुकाव- निर्धनता के कारण कभी-कभी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वे असामाजिक व्यवहारों को करने की ओर प्रेरित होते हैं। निर्धनता को व्यक्ति को चोरी पाकेटमारी, वेश्वातृत्ति जैसे व्यवहारों को करने की प्रेरणा देती है।
- आर्थिक प्रतियोगिता एवं अन्तर्सर्ममूह प्रतिद्वन्दिता- निर्धनता के कारण आर्थिक प्रतियोगिता एवं अन्तर्सर्ममूह प्रतिद्वन्दिता में वृद्धि होती है। गरीबों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए सरकार तरह-तरह की स्कीमें (जैसे आरक्षण बीपीएल कार्ड ) चलाती परिणाम स्वरूप आर्थिक रूप से सबल व्यक्ति यह सोचने लगता कि सरकार व्यक्ति यह सोचने लगता कि सरकार उनके हिस्से को छीनकर निर्धन लोगों को दे रही है। फलतः वे गरीब व्यक्तियों को अपना प्रतिद्वन्दी समझने लगते हैं और उनके प्रति विद्वेष भाव रखना प्रारम्भ कर देते हैं। ऐसी सरकारी सुविधा को लाभ उठाकर यदि कुछ निर्धन अपनी आर्थिक स्थिति सुधार लेते हैं तो उनकी प्रतियोगिता समाज के आर्थिक रूप से सबल व्यक्तियों से होने लगती है परिणाम स्वरूप आर्थिक प्रतियोगिता तीव्र होती है जो सामाजिक दृष्टिकोण से हानिकारक होती है।
- सामाजिक उपेक्षा- गरीबी के कारण व्यक्ति में समाज के प्रति अरूचि भाव उत्पन्न हो जाती है गरीब व्यक्ति को समाज में उसकी आर्थिक तंगी के कारण लोग उसकी उपेक्षा करते है तथा अपने आपको उससे दूर रखने का प्रयास करते है। समाज धनी व्यक्ति अपने बच्चों को निर्धन बच्चों के साथ साथ खेलने व मिलने - जुलने

की इजाजत नहीं देते हैं परिणामस्वरूप ऐसे बच्चों का सामाजिक तिरसकार होता है उनमें असामाजिक प्रवृत्तियाँ आर्थिक तेजी से भरने लगती है।

#### 18.4.1 गरीबी का कारण -

- (i) आर्थिक कारण:-
- (1) महंगाई के कारण खाद्यान्न संकट
  - (2) त्रुटिपूर्ण आर्थिक नीतियाँ
  - (3) कृषि क्षेत्र की उपेक्षा
  - (4) बुनियादी उद्योगों की पिछड़ी दशा
  - (5) परिवहन एवं संचार के उन्नत साधनों का अभाव
- (ii) सामाजिक कारक:-
- (1) संयुक्त परिवार प्रणाली
  - (2) जाति प्रथा
  - (3) गन्दी बस्तियों में रहने के कारण
  - (4) अशिक्षा
  - (5) बीमारी स्वास्थ्य स्तर
- (iii) राजनैतिक कारण:-
- (1) राजनैतिक भ्रष्टाचार
  - (2) राजनैतिक अस्थिरता व चुनाव के बाद बढ़ती महंगाई
  - (3) राजनैतिक घुसपैठ।
- (iv) व्यक्ति कारक:-
- (1) बीमारी, कुपोषण का शिकार
  - (2) मानसिक रोग
  - (3) बुरी आदतें - नशा, जुआ, लौटरी, सट्टेवाजी आदि
  - (4) दुर्घटनाएं
- (v) जनसंख्यात्मक कारण :-
- (1) परिवार का बड़ा आकार

#### 18.4.2 गरीबी के कारण उत्पन्न समस्याएँ -

निर्धनता के कारण उत्पन्न होने वाली महत्वपूर्ण समस्याएँ निम्न है।

- पारिवारिक असन्तोष एवं कलह।
- उन्नति के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न होती है।
- गरीबी के कारण हीनता की भावना की उत्पत्ति होती है।

- आकांक्षा स्तर में कमी आती है।
- असामाजिक व्यवहारों के प्रति झुकाव बढ़ता है जैसे चोरी डकैती आदि।
- सामाजिक परिवर्तन के प्रति अनभिज्ञता।
- शारीरिक एवं मानसिक रोगों से सम्बन्धित समस्याएँ।
- निर्धनता के कारण सामाजिक उपेक्षा बुराईयों को जन्म देती है।

### 18.4.3 गरीबी को दूर करने के उपाय -

मनोवैज्ञानिकों समाजशास्त्रियों, बुद्धिजीवियों एवं पूँजीपतियों द्वारा गरीबी को दूर करने के लिए निम्न उपाय बताएँ गए हैं।

- कृषि तथा उद्योग में अधिकाधिक रोजगार उत्पन्न करना हमारे यहाँ निर्धनता का मुख्य कारण बेरोजगारी है अतः देश में नये-नये उद्योग धन्धों की स्थापना ही एवं कृषि उत्पादन पर बल दिया जिससे लोगों को रोजगार उपलब्ध हो सकें जिसके फलस्वरूप लोगों की आय में वृद्धि और गरीबी में कमी आयेगी वर्तमान समय में सरकार द्वारा रोजगार गारन्टी योजना के तहत गरीबों को 100 दिन कि लिए रोजगार उपलब्ध कराया जा रहा है।
- जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करके - किसी भी देश में वहाँ की जनसंख्या वृद्धि से उसका सीधा असर उस देश के विकास पर पड़ता है अतः जनसंख्या को कम करने के लिए उसके उपायों जैसे नसबन्दी, गर्भ निरोधक गोलियों आदि) पर ध्यान देना होगा। जनसंख्या नियंत्रण हो जाने पर विकासात्मक उपायों से लोगों की आमदनी में वृद्धि होगी, और गरीबी में कभी आने की उम्मीद हो जाती है।
- धनी और गरीब लोगों के बीच की खाई समाप्त करने के लिए वितरणात्मक प्रयास - के लिए आवश्यक है कि सरकार ऐसा कानून बनाए, जिसके अनुसार धनी बर्गों को कर देना आवश्यक हो और उससे प्राप्त आय को गरीबों के कल्याण एवं उत्थान के लिए लगाया जा सकें।
- भ्रष्टाचार को समाप्त करके - हमारे देश फैला भ्रष्टाचार निर्धनता का एक बहुत बड़ा कारण है शासक वर्ग जनता, के अरबों की हेरा- फेरी करता है और निर्धारित योजनाएं गरीब तबकों तक नहीं पहुँच पाती है आजकल हमारे देश में विदेशों में जमा काले धन को देश में लाने व लोगों को बेनकाब करने की कवायद चल रही है। काले धन के समाप्त होने लोगों में उचित काम के लिये उचित पैसा धन की प्राप्ति में मदद मिलेगी, लोगों की आमदनी बढ़ेगी और निर्धनता में कमी आयेगी।
- योजना का विकेंद्रीकरण और उसका कार्यान्वयन - सरकार द्वारा ग्रामीणों के उत्थान एवं जनता की गरीबी दूर करने के लिए कई तरह की योजनाएं जैसे ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना, ग्रामीण

युवकों के लिए स्व रोजगार प्रशिक्षण ग्रामीण मजदूर रोजगार गारन्टी योजना, जवाहर रोजगार योजना आदि चलाई जा रही है। जब तक इन योजनाओं का लाभ गरीबों तक नहीं पहुँचेगा तब तक गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम सफल नहीं होगा।

- ग्रामीण बैंकों द्वारा कम व्याज की दरों पर ऋण उपलब्ध कराकर इनकी आवश्यकताओं को कुछ हद तक पूरा किया जा सकता है।
- रोजगार आधारित कार्यक्रमों को सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर बढ़ावा देकर।
- गरीब युवाओं को विभिन्न तरह के आधुनिक प्रशिक्षण (जैसे - कम्प्यूटर, टाइपिंग आदि का ) देकर उन्हें स्वरोजगार योग्य बनाना।
- किसी कार्य विशेष को करने के प्रति नाकारात्मक मानसिकता को दूर करना।
- समाज के हर व्यक्ति को साक्षर करके गरीबी को दूर किया जा सकता है साक्षर होने से उसे अपने अधिकारों का ज्ञान होगा और कोई भी अन्याय शोषण नहीं कर पायेगा।

#### 18.4.4 गरीबी अन्मूलन हेतु कुछ योजनाएँ –

क्रसं0	योजनाएँ	वर्ष	मुख्य लक्ष्य
1	सांसदों की स्थानीय निकाय योजना	1993	प्रत्येक सांसद अपने स्थानीय निर्वाचन क्षेत्र में प्रतिवर्ष 2 करोड़ रुपये विभिन्न कार्यों को सम्पन्न कराने में समर्थ
2	कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना	1997	निम्न महिला साक्षरता दर वाले जिलों में बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालयों की स्थापना।
3	स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना	1997	स्वतंत्रता की 50 वीं वर्षगांठ पर नेहरू रोजगार योजना समाप्त कर शहरी बेरोजगारी दूर करने के लिए लागू की गई।
4	बालिका समृद्ध योजना	1997	गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली परिवारों में जन्म लेने वाली बालिका की माता को 15 दिन के भीतर 500 रुपये नगद व बालिका की कक्षा 10 तक की पढ़ाई हेतु नकद राशि दी जायेगी।
5	राज -राजेश्वरी एवं भाग्यश्री योजना	1998	राष्ट्रीय स्तर पर राज राजेश्वरी योजनाओं तथा भाग्य श्री नाम से लड़कियों के लिए 1998 दीपावली पर शुरू की गई योजना इस योजना के तहत रूपया प्रतिमाह के प्रीमियम भुगतान से आवश्यकता पड़ने पर 25,000.00 रुपये तक

			उपलब्ध हो सकेंगे।
6	अन्नपूर्णा योजना	1999	गाँवों के गरीबों व असहाय वृद्धों के लिये जो इस समय वृधावस्था लिये जो पेंशन प्राप्त नहीं कर रहे है हर महीने 10 किग्रा तक अनाज निःशुल्क प्रदान किया जायेगा।
7	जनश्री बीमा योजना	2001	गरीबी रेखा से नीचे तथा थोड़ा ऊपर के निर्धन व्यक्तियों (18-60) के व्यक्तियों की मृत्यु या विकलांग होने पर 50 हजार रू० देने का प्रावधान है इसके लिये व्यक्ति को 200 रूपये का वार्षिक प्रीमियम देना होगा।
8	नरेगा मनरेगा	2005	गरीब व्यक्ति जिनको रोजगार की जरूरत है 100 दिन का रोजगार और यदि सरकार उनको 100 रू० दिन का काम नहीं दे पाती है तो उन्हें इसके पैसे दिये जायेगे।

- गरीब लोगों के लिए ससती चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराई जाए साथ ही गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों का स्वास्थ्य बीमा कराया जाए।
- जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद जैसी संकुचित भावना है सामाजिक आर्थिक, विकास में सबसे बड़ी बाधा है। इन भावनाओं से परे हट कर व्यक्ति को योग्यतानुसार रोजगार से जोड़कर आर्थिक सहायता प्रदान।
- केन्द्र के वजट का बड़ा हिस्सा गरीबों के लिए (विभिन्न योजनाओं पर) खर्च किया जाना चाहिए।
- जमींदारी प्रथा को समाप्त कर वो जमीन गरीबों में बाँट दी जाए।

### 18.5 बेरोजगारी

बेरोजगारी निर्धनता का बड़ा कारण है तो निर्धनता बेरोजगारी का एक बड़ा दुष्परिणाम दोनों को एक दूसरे से झलगत नहीं किया जा सकता है। सामान्य शब्दों में बेरोजगारी का अर्थ - रोजगार न मिलना है। आज हम औद्योगिक विकास को उन्नति का आधार मानते है। शिक्षा के विसतार द्वारा अज्ञानता को दूर करने का प्रयास करते है वही बेरोजगारी के सामने हम सिर झुका देते हैं एक सफल सक्षम और स्वस्थ व्यक्ति के लिए एक बहुत बड़ा अभिशाप है। कि किसी काम को करने की योग्यता व इच्छा रखते हुए उसे काम करने का अवसर नहीं मिलता है।

अतः बेरोजगारी वह स्थिति होती है जब कोई व्यक्ति प्रचलित मजदूरी या उससे कम पर कार्य करने के लिए तैयार होता है लेकिन उसे कार्य करने का अवसर नहीं मिल रहा है। बेरोजगारी हमारे देश की एक प्रमुख सामाजिक आर्थिक समस्या है किसी समाज में जब बहुत से व्यक्तियों को आवश्यक योग्यता और कार्य की इच्छा पड़े बाद भी जीविका के ऐसे साधन प्राप्त नहीं हो पाते है सिसे वे अपनी न्यूनतम कार्य - कुशलता को बनाए रख



सकें। तब इस स्थिति को हम बेरोजगारी की संज्ञा देते हैं। बेरोजगारी की स्थिति किसी न किसी मात्रा में सभी समाजों में पाई जाती है चाहे वह कितना भी धनी क्यों न हो लेकिन किसी समाज में जब व्यक्तियों का बहुत बड़ा भाग बेरोजगार हो जाता है तब बेरोजगारी एक गंभीर समस्या का रूप ले लेती है।

### 18.5.1 बेरोजगारी के प्रकार -

सामान्य रूप से हम बेरोजगारी को निम्न रूपों में देख सकते हैं

- (1) संरचनात्मक बेरोजगारी - औद्योगिक क्षेत्रों में संरचनात्मक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली बेरोजगारी को संरचनात्मक बेरोजगारी कहते हैं यह कालीन होती है।
- (2) अल्प बेरोजगारी:- में ऐसे व्यक्ति आते हैं जिन्हें थोड़ा काम बहुत काम मिलता है और जिनके द्वारा वे कुछ अंशों तक उत्पादन में योगदान देते हैं किन्तु इनको अपनी क्षमतानुसार काम नहीं मिलता या पूरे समय के लिए काम नहीं मिलता है इसमें कृषि क्षेत्र में लगे श्रमिक भी आते हैं।
- (3) बेरोजगारी - कुछ उद्योगों या व्यापार की प्रकृति इस प्रकार की होती है कि वे साल के कुछ महीने ही चलते हैं जैसे-चीनी मिले जहाँ लोगों को 6-7 महीने ही काम मिल पाता है बाकी समय वे बेकार रहते हैं।
- (4) आकस्मिक बेरोजगारी - आर्थिक मन्दी व युद्धकाल के बाद प्रायः इस प्रकार की बेरोजगारी उत्पन्न होती है।
- (5) अदृश्य बेरोजगारी - इसमें श्रमिक बाहर से तो काम पर लगे प्रतीत होते हैं लेकिन वास्तव में उन श्रमिकों की उस कार्य विशेष के लिए आवश्यकता नहीं होती है। अर्थात् यदि उन श्रमिकों को उस कार्य से निकाल दिया जाए तो कुछ उत्पादन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है जैसे - किसी परिवार में सिर्फ खेती ही आय का एक मात्र साधन है उस परिवार में 3 वयस्क पुरुष हैं इस खेती के काम को 2 पुरुष पूरा कर सकते हैं किन्तु उचित संसाधन के अभाव में वे तीनों सदस्य इसी जमीन पर कार्य करते हैं इसे छिपी या अदृश्य बेरोजगारी कहते हैं। इसके अतिरिक्त खुली बेरोजगारी, साप्ताहिक बेरोजगारी शिक्षित बेरोजगारी, औद्योगिक बेरोजगारी आदि इसके अन्य प्रकार हैं।

### 18.5.2 भारत में बेरोजगारी की स्थिति (2009-2010)-

ग्रामीण क्षेत्रों में - 10.1 प्रतिशत

शहरी क्षेत्रों में - 7.3 प्रतिशत

पुरुष बेरोजगारी - 8 प्रतिशत

महिला बेरोजगारी - 14.6 प्रतिशत

सम्पूर्ण जनसंख्या में - लगभग 4 करोड़ लोग बेरोजगार हैं जिनके पास कोई काम नहीं है।

### 18.5.3 भारत में बेरोजगारी के कारण -

भारत में बेरोजगारी के एक नहीं बल्कि कई कारण हैं -

- जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि - भारत में जिस तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि हुई है उस अनुपात में रोजगार की सुविधाओं में वृद्धि नहीं हो पाई है। फलतः देश में बेरोजगारी काफी तीव्र गति से बढ़ी है।
- दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली - शिक्षा व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है भारतीय शिक्षा प्रणाली व्यक्तित्व का विकास तो कर रही है लेकिन रोजगारपरक शिक्षा का अभाव है व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के शुल्क इतना ज्यादा है जो सामान्य छात्र की पहुँच दूर है शिक्षा में गुणवन्ता न होने से स्नातक और परास्नातकों की भीड़ बढ़ती जा रही है ऐसे डिग्री धारकों की भीड़ ज्यादा है जिनके पास डिग्री तो है पर ज्ञान के नाम पर कुछ भी नहीं है। डा० राजेन्द्र प्रसाद का कहना है कि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि देश की शिक्षा प्रणाली में कुछ कमियाँ हैं विश्वविद्यालयों से बहुत से छात्र प्रतिवर्ष निकलते हैं उनको काम ही नहीं मिलता बल्कि वे काम के अयोग्य भी हैं यह स्थिति बेरोजगारी से भी अधिक भयंकर है आज बेरोजगारी इसलिए बढ़ रही है क्योंकि नौकरियों की संख्या में वृद्धि नहीं हो रही है पर लोग इसलिए भी बेकार हैं कि जो स्थान खाली है उसके लिए योग्य नहीं मिलते हैं।
- कृषि क्षेत्र की अनुत्पादकता - भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक उद्योग धंधों की स्थापना तो हुई लेकिन इन कारखानों ने निकला कचरा व गन्दा पानी जिसके लिए उचित व्यवस्था नहीं की गई इसकी वजह से हमारी नदियों का पानी भी दूषित हो गया है ये कचरा और गन्दा पानी हमारी कृषि भूमि को भी प्रभावित कर रहा है और कृषि में अनुत्पादकता के चलते बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो रही है। न तो इतने पड़े लिखे होते हैं और नहीं पैसा होता है कि शहरों में जाकर रोजगार ढूँढ सकें।
- लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन - कुछ दशक पहले भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा अपने परिवार को भरण पोषण करते थे आज मशीनों के आ जाने से बड़े-बड़े कारखाने खुल जाने की वजह से हजारों व्यक्ति भुखमरी की कगार पर पहुँच गए हैं।
- तकनीकी शिक्षा का अभाव - भारत में तकनीकी शिक्षा का अभाव बेरोजगारी का एक मुख्य कारण है तकनीकी शिक्षा महंगी होने के कारण भी गरीब व्यक्ति इनका लाभ नहीं उठा पाते हैं।
- शारीरिक श्रम के प्रति उदासीनता - शिक्षित लोगों में शारीरिक श्रम के प्रति उदासीनता पाई जाती है। अधिकांश व्यक्ति ऐसा काम करना चाहते हैं जिसमें शारीरिक श्रम ना के बराबर हो। आज लोगों की सोच कम मेहनत, कम काम और ज्यादा पैसे में बदलती जा रही है।
- श्रम की माँग में पूर्ति में असन्तुलन - श्रम की पूर्ति के अनुपात में उत्पादन के अन्य साधनों में वृद्धि न होना भी बेरोजगारी का एक मुख्य कारण है अगर श्रमिकों की माँग कम है और काम करने के इच्छुक योग्य व्यक्तियों की संख्या ज्यादा है तब सभी लोगों को रोजगार नहीं मिल पाता है और बेरोजगारी फैलने लगती है।

- गलत तकनीक का चुनाव तथा दोषपूर्ण विनियोजन नीति - भारत की उत्पादन तकनीक पूँजी बाहुल है न कि श्रम बाहुल जो देश में बढ़ती बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी है। हमारे यहाँ योजनाओं में बड़े एवं मध्यम उद्योगों को ही प्राथमिकता दी गई है जो रोजगार सृजन क्षमता में बहुत कम है।

#### 18.5.4 बेरोजगारी दूर करने हेतु सुझाव -

भारत में बेरोजगारी एक गम्भीर समस्या है और देश की सम्पूर्ण व्यवस्था में सुधार लाए बिना बेरोजगारी को दूर नहीं किया जा सकता है इसे कम करने के लिए निम्न उपायों को अपनाया जाना चाहिए।

- बेरोजगारी दूर करने के लिए सबसे पहले जनसंख्या वृद्धि को रोकना आवश्यक है। लोगों को जनसंख्या वृद्धि द्वारा होने वाले भयावह परिणाम से अवगत कराना तथा परिवार नियोजन के उपायों को अपनाने पर बल दिया जाना आवश्यक है।
- शिक्षा प्रणाली में सुधार द्वारा भी बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है तकनीकी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।
- शिक्षा के साथ शारीरिक श्रम को अनिवार्य कर दिया जाए। विद्यार्थियों को शारीरिक श्रम की महत्ता के बारे में अवगत कराना।
- शिक्षित महिलाओं को अधिक से अधिक संख्या में रोजगार उपलब्ध कराना।
- लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास करके।
- कृषि क्षेत्रों में सुधार करके कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराके।
- उत्पादक रोजगार के अतिरिक्त अवसरों को सृजन करना।
- श्रम बाजार के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण की विश्वसनीयता को बढ़ाना।
- नये उद्योगों को स्थापित करके कुछ लोगों को रोजगार पर लगाया जा सकता है।
- बेरोजगारी दूर करने हेतु सरकार द्वारा उचित एवं ठोस कदम उठाए जाएं भारत की अर्थव्यवस्था गाँवों पर निर्भर करती है इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों के लिए बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर उपलब्ध है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में परस्पर सहायता कार्य को भारतीय परम्पर के अनुरूप एक परोपकारी या पवित्र कार्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए अपने ही गाँव के लोगों या अन्य जाति वर्ग के लोगों के सेवा आवश्यकताओं की पूरा करना एवं सामाजिक सरोकारों से सम्बन्ध स्थापित करना मानवीय गुणों को विकसित करने में सहायक होगा।
- शिक्षित व्यक्ति अपने देश को छोड़कर दूसरे देशों की प्रगति में लग जाते हैं जिससे अपने देश की प्रगति नहीं हो पाती है। सरकार को इस दिशा में भी कुछ करम उठाया जाना आवश्यक है।

18.5.5 बेरोजगारी दूर करने हेतु सरकारी प्रयास -

क्र सं०	योजना	वर्ष	उद्देश्य
1	समान्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम	1980	ग्रामीण परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने में सक्षम बनाया।
2	ग्रामीण क्षेत्रों महिला तथा बाल विकास कार्यक्रम	1982	ग्रामीण महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराते हुये उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषक आहार ,स्वच्छता तथा शिशुओं की देखभाल करने जैसे मूलभूत सेवाएं प्रदान करना।
3	कृषि विकास केन्द्र	1992	किसानों) महिलाओं एवं पुरुष (के लिए रोजगार परक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना।
4	जवाहर रोजगार योजना	1989	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (लाभकारी रोजगार उपलब्ध कराना)
5	इन्दिरा आवास योजना	1985-86	अनुसूचित जाति जनजाति के सबसे गरीब लोगों के लिए मकानों को निर्माण कराना।
6	राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम	1995	राष्ट्रीय बृद्धावस्था पेंशन योजना राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना राष्ट्रीय प्रसव लाभ - योजना
7	खेतिहर मजदूर बीमा योजना	2001	भूमिहीन खेतिहार मजदूरों के लिए योजनान्तर्गत बीमा कवच लाभ 60 वर्ष की आयु पूरी करने वाले को 100 रू० मासिक पेंशन प्रदान करने का प्रावधान।
8	सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना	2001	10,000 करोड़ रूपये की योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर प्रदान करना।
9	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना	2005	ग्रामीण क्षेत्रों में 100 दिन काम देने का प्रावधान है।

**18.5.6 बेरोजगारी के परिणाम -**

बेरोजगारी किसी भी समुदाय या देश के विकास में सबसे बड़ी बाधा है एक बेरोजगार व्यक्ति नह केवल स्वयं के लिए अनेक समस्याएँ उत्पन्न करता है बल्कि इसका नुकासान पुरे समाज व देश को उठाना पड़ना है बेरोजगारी का व्यक्ति और समाज दोनों को ही उठाना पड़ता है।

- बेरोजगारी अनेक मानसिक रोगों का जन्म देती है और कभी-कभी मानसिक तनाव या दबाव इतना बढ़ जाता है कि व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है।
- बेरोजगारी की अवस्था व्यक्ति के नैतिक सतर को गिरा देता है ऐसी स्थिति में व्यक्ति जब अपने परिवार के सदस्यों को अनेक कष्ट सहने सहते हुए देखता है तो कभी वह गलत रास्ता पकड़ लेता है जैसे वेश्यावृत्ति, चोरी, डकैती, धोखा धड़ी आदि।
- बेरोजगारी की सबसे गम्भीर दुष्परिणाम अपरोधों में वृद्धि होना है। व्यक्ति अपने जीवन की रोजी रोटी - चलाने के लिए अनेक आपराधिक कार्य करता है जैसे अपहरण, चोरी हत्या या समाज के नियमों के विरुद्ध कार्य करना अपनी जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु।
- बेरोजगारी के कारण कभी-कभी ये ऋण लेते हैं और उसे पूरा न पाने पर ये उसके बोझ तले दबते चले जाते हैं और इनकी स्थिति बद से बदतर होती चली जाती है।
- बेरोजगारी देश की प्रगति में बाधक है, क्योंकि बेकार व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ समाज नहीं उठा पाता है। किसी देश के लिए बहुत बड़ी सामाजिक एवं आर्थिक हानि है।
- बेरोजगारी व निर्धनता के कारण माता-पिता अपने बच्चों का लालन-पालन उचित ढंग से नहीं कर पाते है फलतः भावी पीढ़ी दुर्बल, बीमार या किसी रोग का शिकार हो जाती है।
- बेरोजगारी व्यक्ति हर तरफ से हताश व निराश हो जा जाता है अपनी निराशा व हताशा निराशा व हताशा को दूर करने के लिए ये कभी-कभी शराब, नशा, आदि का सहारा लेते हैं अतः बेरोजगारी अन्य अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है।
- बेरोजगारी एक ऐसी समस्या है जिसके लिए सरकार द्वारा अनेक प्रयास किये गए है और आगे भी निरन्तर किये जा रहे है। सरकार द्वारा किये गये प्रयत्नों के कवजूद भी जनसंख्या वृद्धि के कारण इसमें कोई खास सफलता नहीं मिल पा रही है क्योंकि देश में भ्रष्टाचार के चलते इन योजनाओं का सही- सही लाभ उन व्यक्तियों तक नहीं पहुँच पा रहा है तो वास्तव में इसके असली हकदार है।

**18.6 सारांश**

विभिन्न सामाजिक समस्याओं में निरक्षरता, गरीबी, बेरोजगारी आदि अनेक ऐसी समस्याएँ है, जिनका समाधान अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि किसी भी देश की प्रगति तभी सम्भव है जब वहाँ के लाग साक्षर हो लोगों के पास

रोजगार हो आज सूचना तंत्र के प्रयास से गांवों में भी रोजगार की अपार सम्भावनाएँ प्रकट हो रही हैं रोजगार की सम्भावनाएँ बढ़ाकर कृषि उत्पादन पर निर्भरता को कम किया जा सकता है।

पिछड़े हुए क्षेत्रों को विकास की प्रक्रिया से जोड़ने के लिए इन क्षेत्रों में साक्षरता गरीबी और रोजगार से सम्बन्धित कार्यक्रमों का निर्माण किया जाए बेरोजगारी की समस्या का समाधान निश्चय ही शिक्षा-प्रणाली के जीर्णोद्धार में निहित है जिससे युवाओं के बाजार द्वारा अपेक्षित ज्ञान और कौशल प्रदान किया जा सके।

### 18.7 शब्दावली

- बुनियादी: जरूरी, आवश्यक
- विलासिता: ऐशोआराम
- अनभिज्ञता: अज्ञानता
- दशक: दस वर्ष
- मध्याह्न: दोपहर
- अनुत्पादकता: उत्पादन न होना है
- पतन: या उत्पादन में गिरावट
- पतन: खत्म होना (समाप्त होना )

### 18.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- सत्य / असत्य बताइये-
  - (1) निरक्षरता देश की प्रगति में सहायक है। (सत्य / असत्य)
  - (2) नवोदय विद्यालयों की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर बढ़ाने के लिए स्थापित की गई है। (सत्य / असत्य)
  - (3) निरक्षरता का मुख्य कारण गरीबी है। (सत्य / असत्य)
  - (4) प्राथमिक विद्यालयों में मिड डे मील की व्यवस्था बच्चों की मौज मस्ती के लिए की गई है। (सत्य / असत्य)
  - (5) लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में साक्षरता दर अधिक है। (सत्य / असत्य)
  - (6) निर्धनता एक सापेक्षिक अवधारणा है। (सत्य / असत्य)
  - (7) भारत में निर्धनता का मुख्या कारण अशिक्षा है। (सत्य / असत्य)
  - (8) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना 2 फरवरी 2002 में लागू हुई। (सत्य / असत्य)
  - (9) निर्धनता विवाह-विच्छेद का परिणाम है। (सत्य / असत्य)

- (10) लिर्धनता का मुख्य कारण जनसंख्या की अधिकता है (सत्य / असत्य)
- (11) भ्रष्टाचार का निर्धनता से कोई सम्बन्ध नहीं है। (सत्य / असत्य)
- (12) बेरोजगारी की स्थिति केवल निर्णन समाजों में पाई जाती है। (सत्य / असत्य)
- (13) मौसमी बेरोजगारी बेरोजगारी का एक प्रकार है। (सत्य / असत्य)
- (14) भारत में महिला के अपेक्षा पुरुष बेरोजगारी ज्यादा है। (सत्य / असत्य)
- (15) बीर चन्द्र सिंह गढ़वाली पर्यटन स्वरोजगार योजना का सम्बन्ध उत्तराखण्ड से है। (सत्य / असत्य)

• वस्तुनिष्ठ प्रश्न (किसी एक पर सही का निशान लगाइये)

- (1) गरीबी की माप का आधार क्या हैं?
- (i) व्यक्तिगत आय (ii) राष्ट्रीय आय
- (iii) उपभोग खर्च (iv) उपर्युक्त सभी
- (2) निम्न में से कौन सा निर्धनता का कारक नहीं है।
- (i) खेती की पिछड़ी दशा (ii) शिक्षातृत्ति
- (iii) भाषायी संघर्ष (iv) बेकारी
- (3) गरीबी की अवधारण किस सन् में प्रस्तुत की गई:
- (i) 1947 (ii) 1945
- (iii) 1960 (iv) 1952
- (4) निर्धनता का सामाजिक कारक है -
- (i) जाति व्यवस्था (ii) संयुक्त परिवार प्रणाली
- (iii) दोनों ही (iv) दोनों में से कोई नहीं
- (5) निर्धनता के बैयक्तिक कारक है-
- (i) आशिक्षा (ii) रोगग्रस्तता
- (iii) नैतिक (iv) उपर्युक्त सभी

• रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

- (1) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना ..... से लागू हुई है।
- (2) भारत में लगभग ..... लोग बेराजगार है।
- (3) भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी का प्रतिशत ..... है।
- (4) आर्थिक मंदी एवं युद्धकाल के बाद ..... बेरोजगारी उत्पन्न हैं।

(5) बेरोजगारी देश की प्रगति में ..... है।

### 18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डा० अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन मातीलाल बनारसी दस दिल्ली।
- रविन्द्र नाथ मुखर्जी: सामाजिक समस्याएँ विवेक प्रकाशन दिल्ली।

### 18.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. गरीबी की अवधारण को स्पष्ट कीजिए ? एवं इसके क्या कारण है।
2. गरीबी दूर करने हेतु सरकार द्वारा क्या - क्या प्रयास किये जा रहे हैं ?
3. आर्थिक दृष्टिकोण से समाज के लोगों को कितनी अवस्थाओं में बाँटा गया है ?
4. गरीबी का क्या अर्थ है ?
5. निर्धनता की अवधारण सर्वप्रथम किसने व्यक्त की ?
6. निर्धनता का कोई दो मुख्य कारण बताइयें।
7. भ्रष्टाचार का गरीबी से क्या सम्बन्ध है।
8. निरक्षरता या अशिक्षा से आप क्या समझते हैं ?
9. अशिक्षा के चार मुख्य कारण बताइयें ?
10. अशिक्षा दूर करने के लिए कोई चार उपाय बताइये ?
11. निरक्षरता दूर करने हेतु सरकार द्वारा क्या प्रयास किये जा रहे हैं ?
12. निरक्षरता दूर करने हेतु आप अपने कुछ सुझाव दीजिए।
13. गरीबी की अवधारण को स्पष्ट कीजिए ? एवं इसके क्या कारण है।
14. गरीबी दूर करने हेतु सरकार द्वारा क्या-क्या प्रयास किये जा रहे हैं ?
15. बेरोजगारी से आप क्या समझते हैं।
16. बेरोजगारी कितने प्रकार की होती है।
17. भारत में बेरोजगारी की क्या स्थिति है।
18. बेरोजगारी के चार मुख्य कारण बताइये।
19. बेरोजगारी के दुष्परिणाम क्या है ?
20. बेरोजगारी दूर करने हेतु आप अपने सुझाव दीजिए।
21. बेरोजगारी दूर करने हेतु सरकार द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं।



---

## इकाई-19 जनसंख्या विस्फोट, लैंगिक पक्षपात, आधुनिकीकरण एवं शहरीकरण

### (Population Explosion, Gender Biasness, Modernization and Urbanization)

---

- 19.1 प्रस्तावना
- 19.2 उद्देश्य
- 19.3 जनसंख्या विस्फोट
  - 19.3.1 जनसंख्या वृद्धि के कारण
  - 19.3.2 जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने के उपाय
  - 19.3.3 जनसंख्या विस्फोट के दुष्परिणाम
  - 19.3.4 जनसंख्या विस्फोट में मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका
- 19.4 लिंग भेद
  - 19.4.1 विकास में लिंग का महत्व
  - 19.4.2 लिंग भेद समाप्त करने हेतु कुछ प्रयास
- 19.5 आधुनिकीकरण
  - 19.5.1 आधुनिकीकरण की विशेषताएँ
  - 19.5.2 आधुनिकीकरण के कारक
  - 19.5.3 भारत में आधुनिकीकरण का प्रभाव
- 19.6 नगरीकरण
  - 19.6.1 भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया
  - 19.6.2 नगरीकरण की प्रक्रिया में सहायक कारक
  - 19.6.3 सामाजिक परिवर्तन में नगरीकरण की भूमिका
  - 19.6.4 नगरों की ज्वलंत समस्याएँ
- 19.7 सारांश
- 19.8 शब्दावली
- 19.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 19.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 19.11 निबन्धात्मक प्रश्न

---

## 19.1 प्रस्तावना

---

सामाजिक समस्या से तात्पर्य ऐसी स्थिति से है, जिससे समाज का एक बड़ा भाग प्रभावित होता है। तथा जिसका समाधान मात्र सामूहिक रूप से सम्भव हो पाता है जैसे भारत में व्याप्त निर्धनता, अशिक्षा, बेरोजगारी, की समस्या को ही लिया जाए तो यह एक सामाजिक समस्या है क्योंकि इससे समाज का एक बड़ा भाग प्रभावित है तथा अनेक व्यक्तियों, सरकार तथा अन्य सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं के संयुक्त प्रयास से ही सम्भव है।

समाज मनोवैज्ञानिकों ने सामाजिक समस्याओं का अध्ययन तीन प्रमुख श्रेणियों में बाँट कर किया है।

- 1) प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न सामाजिक समस्याएँ जैसे बाढ़, अकाल, भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत आते हैं।
- 2) सुधारात्मक समस्याएँ कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं जिनके कुप्रभावों के बारे में आम सहमति होती है परन्तु समाधान के बारे में आम सहमति नहीं होती है। जैसे गरीबी, अपराध, मादक पदार्थों का सेवन आदि।
- 3) नैतिक समस्या कुछ सामाजिक समस्याएँ ऐसी होती हैं जिनकी प्रकृति एवं कारणों के बारे में आम सहमति नहीं होती है जैसे बालक, विधवा, विवाह, बाल, विवाह आदि। अतः सामाजिक समस्या है के समाधान के लिए जागरूकता, नीति, निर्धारण और सुधार इन तीनों का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस ईकाई में हम ऐसी सामाजिक समस्याओं, जनसंख्या विस्फोट, लिंग भेद, आधुनिकीकरण, शहरीकरण, आदि का अध्ययन करेंगे।

---

## 19.2 उद्देश्य

---

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- जनसंख्या विस्फोट के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- लिंग भेद के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- नगरीकरण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

---

## 19.3 जनसंख्या विस्फोट

---

हमारे यहां की सबसे प्रमुख सामाजिक समस्या जनसंख्या विस्फोट की समस्या है। विश्व जनसंख्या का लगभग 17 प्रतिशत हिस्सा आज धरती के 2.4 प्रतिशत क्षेत्र पर निवास कर रहा है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी 1,210,193,422 है, जिसका अर्थ है कि भारत ने एक अरब के आंकड़े को पार कर लिया है। यह चीन के बाद दुनिया का सबसे ज्यादा आबादी वाला देश है और विभिन्न अध्ययनों से यह पता चला है कि सन् 2025 तक भारत चीन को भी पछाड़ देगा और विश्व का सबसे ज्यादा आबादी वाला देश बन जाएगा। इस तथ्य के बावजूद कि यहां जनसंख्या नीतियां, परिवार नियोजन और कल्याण कार्यक्रम सरकार ने शुरू किए हैं और प्रजनन दर में लगातार कमी आई है पर आबादी का वास्तविक स्थिरीकरण केवल 2050 तक ही हो जाएगा।

जनसंख्या विस्फोट का सामान्य अर्थ देश के संसाधनों की तुलना में जनसंख्या या व्यक्तियों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि से होता है। और अनेकों अन्य समस्याएँ जैसे गरीबी, अशिक्षा रहन सहन के स्तर आदि उत्पन्न हो जाती है। पूरे विश्व में

सर्वाधिक जनसंख्या चीन, भारत अमेरिका, और रूस की है। चारों देशों को मिलाकर विश्व की लगभग आधी जनसंख्या होती है। भारत के चार बड़े राज्यों उत्तर प्रदेश बिहार, मध्यप्रदेश, और राजस्थान में जनसंख्या की वृद्धि बहुत ऊँची है। प्रतिवर्ष जनसंख्या वृद्धि दर ने प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण संरक्षण के हमारे सारे प्रयास को विफल कर दिया है।

जनसंख्या विस्फोट की स्थिति आज हमारे समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में खड़ी है जो मानव के पतन का कारण बनती जा रही है। षट् करोड़ की वर्तमान वार्षिक जनसंख्या वृद्धि ने प्राकृतिक संसाधनों तथा प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण के हमारे सारे प्रयासों को विफल कर दिया है। बढ़ती जनसंख्या भोजन पानी की कमी तो पैदा कर ही रही है। साथ साथ स्वास्थ्य आवास एवं पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को भी बढ़ावा दे रहा है।

### 19.3.1 जनसंख्या वृद्धि के कारण-

जनसंख्या वृद्धि के कई कारण हैं। जैसे -

- जन्म दर तथा मृत्यु दर में अन्तर पिछले कई दशकों में भारत में जन्म दर तथा मृत्यु दर में कमी आई है। परन्तु जन्म दर में मृत्यु दर की तुलना में कम गिरावट आई है जन्म दर में वृद्धि होने के कारण जनसंख्या में लगातार वृद्धि होती जाती है।
- कम आयु में शादी महिलाओं तथा पुरुषों द्वारा कम उम्र में शादी करना भी जनसंख्या वृद्धि का एक मुख्य कारण है। अशिक्षा कम पढ़े लिखे होने के कारण वे परिवार नियोजन के महत्व को नहीं समझ पाते हैं क्योंकि कम पढ़ लिखे होने के कारण उनमें नए विचारों को ग्रहण करने एवं तार्किक चिन्तन करने की क्षमता नहीं होती है।
- गरीबी प्रायः देखा गया है कि गरीब परिवारों में बच्चों की संख्या अधिक होती है। गरीब परिवारों में बच्चों की संख्या अधिक होती है। गरीब परिवारों का मानना होता है कि बच्चे ज्यादा होंगे तो वो थोड़े समय बाद कुछ न कुछ काम करने लायक हो जायेंगे तो उनकी पारिवारिक आमदनी अधिक से अधिक होगी और उनका भरण पोषण आराम से हो जायेगा। इस तरह की मानसिकता के चलते धीरे-धीरे जनसंख्या में भी वृद्धि होती रहती है। परिवार नियोजन के प्रतिरुद्धिवादी विचार बच्चे भगवान की देन है। ज्यादातर लोग ऐसे रुद्धिवादी विचारों पर विश्वास करते हैं और वे परिवार नियोजन के साधनों को अपनाना पाप समझती हैं।
- अपर्याप्त प्रेरणा भारतीय परिवार में परिवार नियोजन के साधनों के प्रति उदासीनता एवं परिवार को सीमित जनसंख्या के प्रति सचेष्ट नहीं रहते हैं।
- राजनैतिक इच्छाशक्ति तथा वचनबद्धता का अभाव है। रखने की अभिप्रेरणा की कमी पायी गई है।
- प्राकृतिक कारण भारत गर्म जलवायु वाला देश है अतः यहाँ बच्चों में कम आयु में ही प्रजनन की परिपक्वता आ जाती है जो जनसंख्या वृद्धि में सहायक होती है।
- मनोरंजन के साधनों की कमी भी जनसंख्या वृद्धि का एक मुख्य कारण है। स्वस्थ मनोरंजन के साधनों के अभाव में वे यौन व्यवहार ही मनोरंजन का एक साधन बना लेते हैं जो जनसंख्या वृद्धि में सहायक होता है।
- संयुक्त परिवार का आर्थिक उत्तरदायित्व सम्मिलित रूप में सभी सदस्यों पर रहता है। इसलिये लोगों में उत्तरदायित्व की भावना कम रहती है।

### जनसंख्या सम्बन्धी महत्वपूर्ण आंकड़े

वर्ष	कुल जनसंख्या	पुरुष जनसंख्या	स्त्री जनसंख्या	जनसंख्या घनत्व (प्रतिवर्ग किमी)
2001	1027015247	531277078	495738169	324
2011	1210193422	623724248	586469174	359

### 19.3.2 जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने के उपाय -

जनसंख्या विस्फोट की समस्या देश की एक मुख्य समस्या है इस समस्या से निपटने के लिए सरकार ने तरह-तरह के कई कार्यक्रम चलाये हैं। जिससे जनसंख्या को नियन्त्रित किया जा सके।

- कम आयु में लड़की विवाह पर नियंत्रण लड़कियों के लिए 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष की आयु विवाह के लिए सरकार द्वारा निर्धारित की गई है। इससे कम उम्र से पहले विवाह करना एक कानूनी अपराध है। विवाह की आयु अधिक निर्धारित होने से जनसंख्या वृद्धि पर कुछ हद तक काबू पाया जा सकता है।
- परिवार नियोजन के साधनों को अपनाना परिवार नियोजन के साधनों को उपलब्ध कराना एवं इनके उपयोग का सही प्रशिक्षण देना एक महत्वपूर्ण कार्य है। परिवार नियोजन के प्रति लोगों को जागरूक करने की आवश्यकता है। परिवार नियोजन सम्बन्धी सभी साधनों को निःशुल्क, या बहुत कम दामों पर सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर उपलब्ध कराना सरकार की नैतिक जिम्मेदारी है।
- जनसंख्या शिक्षा का प्रचार प्रसार करके जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण किया जा सकता है।
- उन राज्यों संस्थानों या व्यक्तियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना जो परिवार नियोजन के क्षेत्र में अच्छा कार्य करते हो।
- मनोरंजन के स्वस्थ साधनों का विकास करके जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण किया जा सकता है।
- दूरसंचार के माध्यमों जैसे रेडियो दूरदर्शन, टेली फिल्म के अतिरिक्त नुक्कड़ नाटक, प्रेरक गीतों आदि के माध्यम से लोगों को इसके प्रति जागरूक करना।
- गर्भ निरोध विषयों में शोध के लिए पुनर्बलन देना।
- जनसंख्या का आर्थिक विकास से सीधा सम्बन्ध है लोगों के सामने इस बात को स्पष्ट किया जाए।
- महिलाओं को स्वावलम्बी बनाना।
- बच्चे ईश्वर की देन है इस मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है अर्थात धार्मिक अंधविश्वास को समाप्त करना।
- साक्षरता एवं स्वास्थ्य सुविधाओं में होते व्यय में बढ़ोत्तरी की जानी चाहिये। तभी भारत में जनसंख्या वृद्धि से होने वाली समस्याओं का दीर्घकालीन समाधान सम्भव है।

### 19.3.3 जनसंख्या विस्फोट के दुष्परिणाम -

- अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है।

- पूँजी निर्माण आवश्यक मात्रा में नहीं हो पाता है क्योंकि भारत एक विकासशील देश है। जहाँ प्रति व्यक्ति आय कम है अतः लोगों की बचत क्षमता कम होती है। और पूँजी का संचय आवश्यक मात्रा में नहीं हो पाता है।
- अधिक जनसंख्या के कारण देश को खाद्य समस्या का भी सामना करना पड़ता है।
- जनसंख्या अधिक बढ़ने से बेरोजगारी की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है।
- जनसंख्या अधिक होने से कृषि योग्य भूमि का उप विभाजन तेजी से बढ़ जाता है।
- औद्योगीकरण की समस्या उत्पन्न हो जाती है अधिक जनसंख्या के कारण गरीबी बढ़ती है और बचत, आय, जीवन स्तर व कार्यक्षमता को कम करके इस क्षेत्र के विकास में बाधा उत्पन्न करती है।
- स्वास्थ्य, शिक्षा रहन सहन भरण पोषण, की समस्या उत्पन्न होती है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास की सबसे बड़ी बाधा है।
- पारिवारिक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है।
- जनसंख्या की अधिकता के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या।

### 19.3.4 जनसंख्या विस्फोट में मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका -

मनोवैज्ञानिक कारकों का सम्बन्ध व्यक्तियों के विचारों विश्वासों मनोवृत्तियों धारणाओं आदि से होता है। इस क्षेत्र में हुए अनेक अध्ययनों में पाया गया है कि कालेज छात्रों एवं नौकरी करने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति परिवार नियोजन के प्रति अनुकूल पाई गई इसी तरह जनजातियों पर हुए एक अध्ययन में अधिकांश लोगों ने परिवार नियोजन के प्रति अपना मत व्यक्त करने में असमर्थता दिखलाई। वहीं अशिक्षित होने से व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमता भी अविकसित रह जाती है। फलस्वरूप ऐसे व्यक्ति परिवार बढ़ा होने से दुष्परिणामों के ठीक ढंग से न तो सोच पाते हैं और न ही समझ पाते हैं। फलतः उनका योगदान जनसंख्या वृद्धि में बिना किसी तरह के रोकटोक के होते जाता है। दूसरी ओर जो लोग शिक्षित हैं उनकी मनोवैज्ञानिक समझ और सचेतना अधिक होने के कारण परिवार के आकार को सीमित रखने में वे लोग अधिक विश्वास करते हैं।

सरकार की ओर से सामाजिक सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध न होने के कारण लोग बच्चों को बुढ़ापे का सहारा मानते हैं और अधिक सन्तानोत्पत्ति में विश्वास करते हैं। वहीं कुछ भारतीय स्त्रियों को ये विश्वास नहीं होता है कि उनके सभी बच्चे जीवित रहेंगे इसलिए वे अधिक बच्चों के जन्म में विश्वास करती हैं। जनसंख्या वृद्धि के ऐसे ही अनेक मनोवैज्ञानिक कारक हैं जिनको दूर करके जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रित किया जा सकता है।

“भारत एक अरब लोगों का राष्ट्र है। इस राष्ट्र की तरक्की उसके नागरिकों की मानसिकता पर निर्भर करती है क्योंकि विचार ही अन्ततः कार्य में परिणत होते हैं भारत को एक अरब जनसंख्या वाले राष्ट्र के रूप में सोचना होगा विचारों से सम्पन्न समृद्धि के विचारों से सम्पन्न युवा को पूर्णतया विकसित होने का मौका दिया जाए।“

ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम

पूर्व राष्ट्रपति

---

### 19.4 लिंग भेद

---

जेण[र] एक ऐसी सोच है जो समाज में लिंग भेद (स्त्री व पुरुष) का विरोध करती है और एक ऐसे समाज की कल्पना करती है जिसमें काम, गुण, जिम्मेदारियाँ व्यवहार और प्रतिभा किसी लिंग, जाति, रंग और वर्ग के आधार पर न थोपे जाएं। प्रायः कुछ लोगों को इस सम्बन्ध में भ्रांति भी होती है वे जेण[र] शब्द का अर्थ महिलाओं से जोड़ देते हैं, तो कुछ लोग इसे सेक्स से जोड़ देते हैं। लोगों के मन में आने वाली इस तरह की भ्रान्तियों को दूर करना आवश्यक है। जेण[र] एक विचारधारा है जिसका अर्थ महिला पुरुषों के सामाजिक रिश्तों से है, जो प्राकृतिक नहीं बल्कि समाज द्वारा बनाये गये हैं। शुरु में इस शब्द का प्रयोग समाज में स्त्री पुरुष के बीच रिश्तों में जो भेद भावपूर्ण सम्बन्ध बन गए हैं के लिये होता था। ज्यादातर लोग ये सोचते हैं कि स्त्री कमजोर है, दीन हीन है और पुरुष ताकतवर, लोगों की इसी सोच को बदलने के लिए जेण[र] शब्द का प्रयोग किया गया। ज्यादातर देशों में सामाजिक लिंग भेद पितृसत्तात्मक है जो पुरुषों की सत्ता को दर्शाता है। सामाजिक लिंग भेद की वजह से लड़कियों पर अनेकों बन्धन होते हैं, उन पर हिंसा होती है, उनके प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया जाता है जिसके चलते न तो वे फल फूल पाती है और न ही उन्हें अपनी काविलियत दिखाने का मौका मिलता है और इस लिंग भेद का बुरा असर केवल लड़कियों पर ही नहीं पड़ता है। जेण[र] इन्सानों का बनाया है हम और आप अगर चाहे तो स्त्री पुरुष लड़के लड़की को परिभाषा दे सकते हैं। हम एक ऐसे समाज की रचना कर सकते हैं जहाँ लड़की का अर्थ कमजोर होना नहीं या लड़के का मतलब क्रूर या हिंसात्मक होना नहीं है। हम सब चाहे तो एक ऐसा समाज बना सकते हैं जिसमें कार्य व्यवहार योग्यता लिंग, जाति, आदि के आधार पर न बाँटे जाएं, बल्कि सब अपनी इच्छा अपने व्यवहार अपनी योग्यता के आधार पर काम कर सकें।

#### 19.4.1 विकास में लिंग का महत्व -

हम सभी को सामाजिक एवं सर्वांगीण विकास के लिए महिला पुरुष दोनों की आवश्यकताओं, मुद्दों और प्रभाव को समझना होगा। जेण[र] की शुरुआत किस प्रकार हुई, विकास में जेण[र] का क्या महत्व है इसको जानना हम सभी के लिए आवश्यक है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कुछ दशकों तक औरतों की तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता था और परिवार तक सीमित औरतों की भूमिका सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के लिए तो महत्वपूर्ण थी लेकिन उन्हें न तो मान्यता दी जाती थी, और न महत्वा। सत्तर के दशक में पश्चिम में महिला आन्दोलन के फलस्वरूप कुछ महिला विकास विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं के एक समूह ने विकासशील देशों की औरतों के अनुभवों पर ध्यान केन्द्रित किया। सन् 1975 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इस वर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित कर दिये जाने से औरतों के मुद्दे विश्व मंच तक जा पहुँचे। महिलाओं को विकास के कार्यों में एकीकृत करके कार्य योजना का क्रियान्वयन 1970 से 1980 तक चला। इसे विकास में महिला कहा गया। करगैलिन मोजर ने महिलाओं के विकास की कल्पना तीन आधारों पर की।

- **समानता-** लिंग असमानताओं के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण महिलाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय मंच से यह मांग की कि जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री पुरुष के बीच शिक्षा नौकरी, सम्पत्ति वेतन आदि में समानता हो। महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कानूनों में बदलाव लाया जाय।
- **गरीबी उन्मूलन-** समानता की धारा से जोड़ने के लिए गरीब महिलाओं को गरीबी से मुक्ति दिलाने के लिए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को अपनाया जाए। हमारे यहाँ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में महिलाओं के लिए अनेक योजनाएँ जैसे- बालिका समृद्ध योजना, राज राजेश्वरी एवं भाग्य श्री योजना, अन्नपूर्णा योजना। इन कार्यक्रमों व योजनाओं के चलते उनके प्रतिदिन के कार्यों में भी सुधार हुआ, लेकिन जहाँ तक संसाधनों पर उनका नियन्त्रण या उनकी अधीनता का प्रश्न है उन पर इन कार्यक्रमों को कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा।

- **कार्यकुशलता-1980** के दशक महिलाओं को मदों के द्वारा निष्क्रिय लाभ पाने वाली इकाई के रूप में न देखकर आर्थिक विकास की सक्रिय भागीदारी के रूप में देखा जाने लगा। 70 के दशक में यहाँ तक कि महिलाओं के विकास की मुख्य धारा से जोड़ना चाहिए। उसके स्थान पर अब यह तर्क दिया जाने लगा कि आर्थिक विकास के लिए महिलाओं की आवश्यकता है। 1980 से 1990 के बीच भारत में द्वाचागत समायोजन कार्यक्रम की शुरुआत हुई। जिससे महिलाओं की स्थिति में सुधार होने के बजाए और अधिक गिरावट आयी।

सन 1980 के दशक में महिलाओं को विकास की मुख्य धारा में लाने का एक प्रयास किया गया ताकि उनको उनका हक मिल सके भारत में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए मुख्यतः निम्न पर अधिक महत्व दिया गया –

- विकास में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करके।
- महिला समूह एवं इकाइयों को सशक्त करना।
- राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना करके (30 मार्च 1993 को)
- महिला अधिकारिता वर्ष घोषित करके (वर्ष 2001 में)
- महिलाओं में शिक्षा का प्रसार।
- परिवारिक अधिकारों में वृद्धि करके।
- महिलाओं के सुरक्षात्मक प्रावधान।

महिला समूह तथा महिलाओं द्वारा चलाई जा रही इकाइयों को सशक्त बनाना ताकि जेण्डर के प्रति महिलाएँ जागरूक हो सकें। महिलाओं के लिए जेण्डर प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण आयाम है। जेण्डर प्रशिक्षण नियोजकों को जेण्डर की भिन्न भिन्न भूमिकाओं को करीब से देखने का मौका मिलता है जैसे महिलाएँ अधिक काम करते हुए भी कम वेतन पाती है आदि सूचनाओं से नियोजकों को योजना बनाने में सहायकता मिलती है। अतः जेण्डर और विकास महिलाओं और पुरुषों के उत्पादन कार्यों और प्रजनन कार्यों (सेवाएं और घर परिवार) दोनों को परखने के बाद घरेलू राजनैतिक व्यक्तिगत, व आर्थिक क्षेत्रों के सन्तुलन पर ध्यान देती हैं। इसलिए आवश्यक है कि हम सभी अपने निहित स्वार्थ को छोड़कर अपने समाज की प्रगति के बारे में सोचे।

#### 19.4.2 लिंग भेद समाप्त करने हेतु कुछ प्रयास -

लिंग समाप्त करने या कम करने के लिए छोटी छोटी कोशिशों द्वारा एक बदलाव लाने का प्रयास कर सकते हैं-

- लड़के और लड़कियों को बराबर का प्यार देख रेख और सम्मान मिले।
- लड़के और लड़कियों, महिलाओं एवं पुरुषों को समान पोषण स्वास्थ्य सेवाएँ शिक्षा, रोजी, रोटी, कमाने एवं विकास के समान अवसर मिले।
- अपने स्वयं के विचारों में परिवर्तन करके।
- अपने समुदायों में लिंग पक्षपात और महिलाओं के प्रति हिंसा पर बातचीत प्रारम्भ करना व उन्हें इस विषय पर बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित करना।

- पुरुष और महिलाएं दोनों परिवार के फैसलों में बराबर की भूमिका निभाएँ।
- दोनों सामुदायिक फैसलों में भी शामिल है।
- एक सकारात्मक वातावरण तैयार करना और समुदाय के प्रभावशाली लोगों को इस अभियान में शामिल करना।
- लोगों के मन में यह सोच विकसित करना कि महिला पुरुष जीवन साथी के रूप में निजी एवं सार्वजनिक जीवन में एक समान है।
- कानूनी समानता के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न किये जाए।
- राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरुषों एवं महिलाओं के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में अवसर बढ़ाने के लिए प्रयत्न किये जाएं।

ये कुछ छोटी-छोटी कोशिशें ही किसी देश के विकास में एक बड़ा बदलाव ला सकती हैं। जब तक विश्व में महिलाओं की आधी आबादी इस त्रासदी से मुक्त होकर पुरुषों के समान अवसर मुक्त जीवन यापन नहीं करेगी विश्व विकास का सपना नितान्त अधूरा ही रहेगा। अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार हर क्षेत्र में महिलाओं को जब समान अवसर उपलब्ध होंगे तभी सही एवं श्रेष्ठ विकास होगा।

---

## 19.5 आधुनिकीकरण

---

आधुनिकीकरण को परिवर्तन की एक नई प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। विश्व के अनेक देश अपनी परम्पराओं को छोड़कर आधुनिकीकरण की दिशा में काफी आगे निकल गए हैं, वहीं भारतीय समाज में आज भी परम्परा और आधुनिकता का एक अनूठा मेल देखने को मिलता है। एक ओर जहाँ हम कर्म, पुनर्जन्म, परलोक, शुभ, अशुभ, के सांस्कृतिक मूल्यों पवित्रतावादी विचारों तथा जातियों के नियमों जैसी परम्पराओं में प्रभावित हैं। वहीं दूसरी ओर प्रौद्योगिक विकास नगरीकरण, धर्म, निरपेक्षता, तथा तर्कपूर्ण व्यवहारों का भी प्रभाव तेजी से बढ़ता जा रहा है। आज भारतीय समाज में परम्परा और आधुनिकीकरण के विचार दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। दोनों इस तरह से घुल मिल गए हैं कि उन्हें एक दूसरे से अलग करना कठिन है।

आधुनिकीकरण एक ऐसा महत्वपूर्ण सम्प्रत्यय है जिसका प्रयोग हम प्रायः सामाजिक परिवर्तन के रूप में करते हैं। आधुनिकीकरण में सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले सभी तरह के परिवर्तनों को एवं सामाजिक मूल्यों में हाने वाले परिवर्तन को सम्मिलित किया जाता है। इसमें सामाजिक राजनैतिक तथा आर्थिक संगठनों में होने वाले सभी तरह के परिवर्तन सम्मिलित होते हैं। इसमें कृषि प्रौद्योगिकी शिक्षा, स्वास्थ्य आधुनिकीकरण, में किसी संस्कृति विशेष का प्रभाव नहीं होता है बल्कि नवीनतम एवं आधुनिकतम प्राविधियों सिद्धान्तों एवं मूल्यों की प्रधानता के कारण परिवर्तन होता है। हम अपने दैनिक जीवन में आधुनिक और आधुनिकीकरण शब्द का प्रयोग बहुत ज्यादा करते हैं। आधुनिक चिन्तन, आधुनिक ज्ञान, आधुनिक शिक्षा, आधुनिक संस्कृति आदि ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग हम किसी भी उस दशा के लिए कर देते हैं जो अपने परम्परागत रूप में भिन्न होती है। आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि यह एक ऐसी अवधारणा है जिसमें कुछ परिवर्तनशील मूल्यों का समावेश होता है। और ये परिवर्तन मूल्य विकास, सार्वभौमिक तथा तार्किकता की दिशा में होते हैं। अर्थात् आधुनिकीकरण परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो किसी परम्परागत अथवना पिछड़े हुए समाज में प्रौद्योगिक विकास, धर्मनिरपेक्षता स्वतंत्रता एवं गतिशीलता जैसी विशेषताओं के प्रभाव में वृद्धि करने लगती है।



### 19.5.1 आधुनिकीकरण की विशेषताएँ-

अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए इसकी आधुनिकीकरण के आधारों को समझना आवश्यक है।

- नगरीकरण में वृद्धि- आधुनिकीकरण की स्थिति में केवल ग्रामीण क्षेत्र नगरों के रूप में ही नहीं बदलते हैं बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसमें नगर से सम्बन्धित मनोवृत्तियाँ प्रभावपूर्ण बनने लगती हैं शिक्षा के प्रति लोगों में रुचि बढ़ना, तर्क और विवेक के आधार पर काम करना, वर्तमान जीवन को अधिक महत्व देना, जीवन के प्रति अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना आदि आधुनिकीकरण की मुख्य विशेषताएँ हैं।
- प्रौद्योगिक विकास से तात्पर्य समाज में जब परिवर्तन और संचार कृषि और औद्योगिक उत्पादन तथा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित नये-नये अविष्कारों के द्वारा विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। तब इस प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा जाता है।
- बढ़ती हुई गतिशीलता- आधुनिकीकरण की स्थिति में व्यक्तियों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति जन्मजात नहीं बल्कि अर्जित होती है जिसमें व्यक्ति अपनी कुशलता और योग्यता को बढ़ाकर अपनी स्थिति को पहले से ऊँचा उठाने की कोशिश करता है। अतः विभिन्न क्षेत्रों में गतिशीलता का पड़ना आधुनिकीकरण की एक मुख्य विशेषता है।
- लोकतांत्रिक मूल्यों में वृद्धि- सामाजिक समानता धर्मनिरपेक्षता विचारों की स्वतंत्रता मताधिकार का प्रयोग सामाजिक कार्यों के प्रति जागरूकता अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहना आदि कुछ लोकतांत्रिक मूल्य हैं। और इन मूल्यों की दिशा में होना वाला परिवर्तन ही आधुनिकीकरण है।
- लौकिक मूल्यों की प्रधानता- आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में लौकिक अथवा सांसारिक मूल्यों का महत्व अधिक होता है। फलतः मोक्ष की जगह सांसारिक सफलताओं को अधिक महत्व मिलने लगता है।

### 19.5.2 आधुनिकीकरण के कारक -

- शिक्षा- शिक्षा के अभाव में कोई भी समाज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से नहीं गुजर सकता है। शिक्षा द्वारा ज्ञान बढ़ता है और ज्ञान के द्वारा प्रौद्योगिक खोज को बढ़ावा मिलता है और ये आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के लिए नितान्त आवश्यक है।
- संचार- दूरसंचार के साधन जैसे कम्प्यूटर, इंटरनेट, टेलीफोन एटी0वी0 रेडियो, ने आधुनिकीकरण को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- राष्ट्रवादी विचारधारा- आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाने के लिए राष्ट्रवादी विचारधारा आवश्यक है। कि समाज में रहने वाले लोगों के बीच में राष्ट्रवादी विचारधारा को बढ़ाया जाने वाले लोगों भाई भतीजावाद, जातिवाद, या क्षेत्रीयवाद जैसी भावनाओं से ग्रस्त रहेंगे। तो कोई भी मुल्क तरक्की नहीं कर सकता है। देश की तरक्की के लिए आवश्यक है कि लोगों में राष्ट्रहित की भावना सर्वोपरि हो।
- उत्तम नेतृत्व राष्ट्र में नेताओं की भूमिका अहम होती है। परम्परागत समाज आसानी से बदलने को तैयार नहीं होता है, उसके लिए एक नेता की आवश्यकता होती है जो लोगों को पुरानी व्यवस्था से आधुनिक

व्यवस्था की ओर ले चले। महात्मा गांधी जवाहरलाल, स्नेह- मोहम्मद अली जिन्ना ने राष्ट्र को आधुनिकीकरण की राह पर बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

### 19.5.3 भारत में आधुनिकीकरण का प्रभाव -

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जिस तरह से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, व्यवस्था का विकास हुआ। उसे आधुनिकीकरण, में होने वाली वृद्धि का सबसे मुख्य कारण माना जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में औद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण का तेजी से विकास हुआ। शिक्षा के प्रचार प्रसार से अविष्कारों और तार्किक विचारों में वृद्धि हुई सामाजिक और आर्थिक नियोजन के प्रभाव से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के विचारों और व्यवहारों में तेजी से परिवर्तन होने लगा। परिवहन एवं दूर संचार के साधनों में वृद्धि होने से सामाजिक गतिशीलता को प्रोत्साहन मिलने लगा। शहरों में रहने वाले लोगों के चिन्तन एवं मनोवृत्ति में परिवर्तन होने लगा फलस्वरूप से सभी कारकों ने आधुनिकीकरण में अपना योगदान किया। भारत में आधुनिकीकरण में अपना योगदान किया। भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया निम्न क्षेत्रों में देखी जा सकती है।

- **प्रौद्योगिक विकास-** स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में कपड़ों, खाद्य, सीमेन्ट, जूट, बिजली, के उपकरणों, दवाइयों तथा पेट्रोलियम पदार्थों के बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हो चुके हैं। बढ़ते प्रौद्योगिक विकास के चलते हमारे समाज में अनेक संरचनात्मक परिवर्तन होने लगे।
- **समाज सुधार प्रोत्साहन-** आधुनिकीकरण नई मनोवृत्तियों के फलस्वरूप अन्धविश्वासों एवं कुरीतियों का प्रभाव तेजी से कम होने लगा। सती प्रथा, बाल विवाह, विधवाओं का शोषण, पर्दाप्रथा, आदि का विरोध बढ़ने लगा आधुनिकता के प्रभाव से भारत में एक ऐसी सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई जो समानता, सामाजिक न्याय, और स्वतंत्रता, के मूल्यों पर आधारित है।
- **रहन सहन के स्तर में सुधार-** विभिन्न प्रकार के विकास कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप जीवन के सभी पक्षों में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिला। लोगों की वेशभूषा, रहन सहनएखान पान में व्यापक सुधार हुआ है साथ ही मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन हुआ जैसे पहले लोगों लड़कियों की पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते थे लेकिन आज लोगों की मनोवृत्ति बदल चुकी है अब लोग लड़कियों की (लड़कों के बराबर) पढ़ाई पर भी ध्यान देने लगे हैं।
- **कृषि का आधुनिकीकरण-** गाँवों में कृषि की नई तकनीकों जैसे पम्पिंग सेट, कल्टीवेटर, ट्रैक्टर, श्रेशर आदि का प्रयोग ज्यादातर किसान कर रहे हैं। अनेक कृषि दर्शन से सम्बन्धित प्रोग्राम दूरदर्शन पर भी रोज दिखाये जा रहे हैं। अनेक कृषि दर्शन से सम्बन्धित प्रोग्राम दूरदर्शन पर भी रोज दिखाये जा रहे हैं पहले की अपेक्षा आज का किसान अपनी फसलों और पशुओं दोनों के लिए ही जागरूक है। कृषि में आधुनिकीकरण से गाँव और शहरों की दूरी बहुत कम हो गई है।
- **शिक्षा की स्थिति-** आज शिक्षा के स्थिति के प्रति हमारी मनोवृत्तियों में परिवर्तन हुआ है आज शिक्षा के स्थिति ऋण की व्यवस्था सरकार द्वारा की गई हो आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद आज माता पिता बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना चाहते हैं।
- **लोकतान्त्रिक नेतृत्व-** आज सभी जाति के लोगों को आर्थिक स्थिति, धर्म, लिंग भेदभाव, के बिना राजनीति में हिस्सा ले रहे हैं। जिन जमींदारों के पास परम्परागत रूप से नेतृत्व के अधिकार थे उनकी

शक्ति संरचना वाले इस तरह के परिवर्तन ने लोगों की मनोवृत्तियाँ बदल दी जो आधुनिकीकरण की दिशा में एक सहायक कदम है।

- **सामाजिक मूल्यों एवं मनोवृत्तियों में परिवर्तन-** मूल्यों में परिवर्तन के साथ साथ विभिन्न वर्गों की मनोवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन हुए है। अब लोग भाग्य की अपेक्षा श्रम को अधिक महत्व देने लगे हैं।
- धार्मिक कट्टरता के स्थान पर धर्म निरपेक्षता का भाव लोगों में बढ़ा है। गतिशीलता (परिवर्तनशीलता) ही जीवन है जैसे विचारों में वृद्धि हुई है। लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं और ये परिवर्तन आधुनिकीकरण की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि कोई समाज कितना भी आधुनिक क्यों न हो कुछ न कुछ नई समस्याएँ जन्म लेती रहती हैं और हम उनका निराकरण कर या उसमें परिवर्तन करके आगे की ओर बढ़ते रहते हैं।

---

## 19.6 नगरीकरण

---

सभी तरह के सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं में नगरीकरण की प्रक्रिया सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है। अन्य देशों की तुलना में हमारे यहाँ नगरीकरण की प्रक्रिया का विकास काफी देर से शुरू हुआ पिछले कुछ दशकों में जैसे- जैसे परिवहन और दूर संचार के साधनों का विकास हुआ और शहरों में बड़े-बड़े कारखानों और उद्योग स्थापित होने लगे जैसे- जैसे लोग गाँवों से पलायन कर शहर की ओर बढ़ने लगे। लोगों को रोजगार के अवसर मिलने लगे और नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होती गई और हमारी सामाजिक संस्थाओं सामाजिक संरचना, मनोवृत्तियों अभिवृत्तियों, तथा व्यवहार के ढंग एवं जीवन स्तर में परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे। इसीलिए नगरीकरण की प्रक्रिया को सामाजिक परिवर्तन का मुख्य स्रोत माना जाता है।

नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नगरों के क्षेत्रों तथा नगरीय जीवनशैली का विस्तार होता है। नगरीकरण की प्रक्रिया का औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होती जाती है नगरीकरण की प्रक्रिया में भी वृद्धि होती जाती है। इसमें जनसंख्या का गाँवों से नगरों की ओर बढ़ना या नगरीय मनोवृत्तियों का प्रभाव अधिक होना ही नहीं है बल्कि स्थान परिवर्तन के बिना भी लोगों की आदतों और व्यवहार के तरीकों में जब नगरीय विशेषताओं का समावेश होने लगता है तो ऐसी स्थिति नगरीकरण की प्रक्रिया की ओर संकेत करती है। जब किसी समाज में नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होने लगती है। तो धीरे-धीरे नगरों से दूर स्थानों पर रहने वाले लोग भी इससे प्रभावित होने लगते हैं।

### 19.6.1 भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया -

भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया बीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुई 1951 के बाद भारत के औद्योगिक विकास में तीव्र गति से वृद्धि हुई। सिर्फ औद्योगिक विकास के कारण ही नगरों का विकास बल्कि शिक्षा के केन्द्रों, राजनीतिक कारणों, धार्मिक केन्द्रों के रूप में भी हुआ है। भारत में अंग्रेजों के शासन काल से पहले गाँवों को नगरों से जोड़ने के लिए सड़कों का अभाव होने के कारण व परिवहन सुविधाएँ उपलब्ध न होने के कारण नगरों का अधिक विस्तार नहीं हो सका। बीसवीं शताब्दी के शुरु में जब बसों, रेलों व एक स्थान से दूसरे स्थान पर जोन की सुविधाएँ मिलने लगी तो ग्रामीण जनसंख्या का नगरों से सम्पर्क बढ़ने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जब भारत में बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना शुरू हुई तो रोजगार की तलाश में लोग नगरों की ओर आकर्षित हुए। भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया बीसवीं शताब्दी में स्वतन्त्रता प्राप्ति के औद्योगिक विकास के फलस्वरूप हुई।

### 19.6.2 नगरीकरण की प्रक्रिया में सहायक कारक -

हमारे यहाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले नगरों के विकास में अनुकूल भौगोलिक स्थिति, धार्मिक विश्वास, यातायात, के साधनों की अधिक भूमिका रही और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक यातायात एवं संचार के साधन राजनीतिक दशाएँ ग्रामीण राजनीतिक आदि ऐसी स्थिति है जिनका नगरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाने विशेष योगदान है।

- **जनसंख्या का बढ़ाना-** स्वतन्त्रता से पहले भारत की लगभग 86 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती थी लेकिन स्वतन्त्रता के बाद जब हमारे देश की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई तो गाँवों में खेतों का बटवारा बढ़ने लगा और आर्थिक परेशानी से निपटने के लिए रोजगार की तलाश में लोगों ने शहरों की ओर जाना शुरू कर दिया।
- **आवागमन एवं संचार के साधनों में वृद्धि-** स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात गाँवों को नगरों से जोड़ने के लिए सड़कों का निर्माण हुआ इक्कीसवीं शताब्दी के शुरूमें आवागमन और संचार के साधनों में काफी वृद्धि हुई नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों की दूरी काफी कम हो गई यातायात की सुविधाओं के चलते कृषि क्षेत्र में काफी सुधार हुए अब किसानों को उनकी फसल से अच्छे दाम मिलने लगे।
- **औद्योगिक विकास-** औद्योगिक विकास की प्रक्रिया के होने से गाँवों के कुटीर उद्योग और हस्तशिल्प धीरे-धीरे खत्म होने की कगार पर पहुँच गए और लोगों में बेरोजगारी बढ़ गई। इधर नगरों में उद्योगों के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होने से ग्रामीण जनसंख्या का बड़ा हिस्सा नगरों की ओर जाने लगा। और नगरीय जनसंख्या में वृद्धि होने लगी।
- **राजनीतिक दशाएँ-** जो नगर राजनीतिक क्रियाओं को केन्द्र होते हैं उन नगरों में विकास के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं आज दिल्ली में नगरीकरण की प्रक्रिया काफी तेज है विभिन्न प्रदेशों की राजधानी की तुलना में नगरीकरण की प्रक्रिया काफी तेज है।
- **ग्रामीण क्षेत्रों में राजनीतिक गुटबन्दी-** ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से होने वाले फायदे के चलते गाँवों में भी काफी राजनीति होने लगी है जिसकी वजह से गाँवों में संघर्षों और तनावों में भी वृद्धि हुई है। फलस्वरूप गाँवों में रहने वाले बहुत से लोग अपने जीवन को असुरक्षित समझकर नगरों में आकर रहने लगते हैं।
- **नागरिक सुविधाएँ-** नगरों में शिक्षा पानी, बिजली, स्वास्थ्य, एवं अन्य सुविधाओं, के चलते गाँवों छोटी जगहों पर रहने वाले लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाते हैं।

नगरीकरण की प्रक्रिया में केवल राजनीतिक धार्मिक औद्योगिक शिक्षा, आदि ही नहीं सहायक होते हैं बल्कि वैयक्तिक कुशलता श्रम विभाजन आर्थिक सुरक्षा आदि कारक भी नगरीकरण की प्रक्रिया में होने वाले वृद्धि में सहायक होते हैं।

### 19.6.3 सामाजिक परिवर्तन में नगरीकरण की भूमिका -

नगरीकरण की प्रक्रिया में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई देती है नगरीकरण की प्रक्रिया ने हमारे सामाजिक जीवन यहाँ अनेक उपयोगी परिवर्तन किये हैं। वहीं अनेक समस्याओं में वृद्धि भी हुई है। सामाजिक परिवर्तन नगरीकरण की भूमिका निम्न रूपों में देखी जा सकती है।

- **सामाजिक जीवन पर प्रभाव-** नगरीकरण की प्रक्रिया से भूमि की कमी मंहगे आवास शोर गुल प्रदूषण, आदि अनेक सामाजिक समस्याएँ बढ़ गई है। परिवारिक विघटन की समस्या तेजी से बढ़ी है। मनोरंजन के नाम पर अनैतिकता, मध्यपान, नशीले पदार्थों का सेवन, आदि सामाजिक जीवन को विघटित करती है। नगरीकरण की प्रक्रिया उन अभिवृत्तियों से अधिक सम्बन्धित है जिसमें सामाजिक कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है।
- **परिवार पर प्रभाव-** पहले हमारे यहाँ संयुक्त परिवार व्यवस्था का अधिक चलन था तीन चार पीढ़ियों के सदस्य एक साथ घर में रहते थे। नगरीकरण के कारण लोग रोजगार की तलाश में शहर में बसना शुरु किया शहरों में कम जगह और मंहगाई के चलते सभी सदस्यों का एक साथ रहना सम्भव नहीं रह गया। फलतः परिवार के सदस्यों के परिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन आया। भारत की परम्परागत परिवार व्यवस्था की संरचना और कार्यों में परिवर्तन लाने में नगरीकरण का मुख्य योगदान है।
- महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने में सराहनीय योगदान दिया है। शिक्षा, चिकित्सा, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में दिया है। शिक्षा, चिकित्सा, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में महिलाओं की संख्या बढ़ रही है। जिसके फलस्वरूप दहेज प्रथा, बाल विवाह व महिलाओं, पर हो रहे शोषण, में कमी आयी आज हमारे देश में राजनीति के कई महत्वपूर्ण पदों पर महिलाएं विराजमान है।
- **ग्राम्य जीवन पर प्रभाव** नगरीकरण के फलस्वरूप गाँवों में मुद्रा का चलन बढ़ गया जजमानी प्रथा लगभग समाप्त हो गई कृषि में नये-नये उपकरण प्रयोग किये जाने लगे लोगों के रहन सहन के तरीकों में परिवर्तन आने लगा लोगों की रुचियों और अभिवृत्तियों में परिवर्तन स्पष्ट होने लगे आज गाँवों में रेडियो टेलीफोन, मोबाइल आदि सेवाओं का बोलबाला है।
- **राजनीतिक जीवन-** राजनीतिक जीवन से हम अपने सामाजिक जीवन को अलग नहीं कर सकते है। यातायात एवं संचार सुविधाओं के फलस्वरूप समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं द्वारा दिन प्रतिदिन की होने वाली घटनाओं की जानकारी प्राप्त होने लगी। लोगों में राजनीतिक चेतना इतनी जागृत हो गई कि जनसाधारण की उपेक्षा कर शासन चलाना सरकार के लिए कठिन हो गया।
- **आर्थिक जीवन पर प्रभाव-** नगरीकरण के विकास से पहले किसान को अपनी फसल का पूरा-पूरा दाम नहीं मिल पाता था नगरीकरण की प्रक्रिया के बाद बाजारों एवं यातायात की सुविधा के चलते उन्हें अपनी उपज का उचित मूल्य मिलने लगा नगरीकरण के प्रभाव से लोगों को रहन सहन का स्तर ऊंचा उठाने में मदद मिली।
- **जाति व्यवस्था का प्रभाव-** पहले गाँवों में जाति के आधार पर व्यवसाय की व्यवस्था थी लेकिन नगरीकरण की प्रक्रिया ने विभिन्न जातियों के बीच मतभेद को बहुत कम कर दिया। नगरों में एक ही व्यवसाय और एक ही स्थान पर विभिन्न जातियों के लोगों द्वारा साथ साथ काम करने पर ऊँच-नीच की भावना बहुत कम हो गई। नगरीकरण की प्रक्रिया में लोगों की योग्यता, और कुशलता को विशेष महत्व दिया है।
- **धार्मिक जीवन पर प्रभाव-** नगरीकरण की प्रक्रिया अंधविश्वासों, रुढ़ियों धार्मिक कट्टरता आदि को अधिक नहीं देती है शिक्षा के वैज्ञानिक प्रभाव से लोगों की मनोवृत्तियाँ, विश्वास मूल्य आदि बदलने लगे हैं। गाँवों की अपेक्षा नगरों में धर्म निरपेक्षता का भाव अधिक देखने को मिलता है।

#### 19.6.4 नगरों की ज्वलंत समस्याएँ -

- नगरों की सबसे बड़ी समस्या वहाँ की सघन जनसंख्या है।
- जनाधिक्य के कारण आवास की गम्भीर समस्या है।
- परिवहन की व्यस्तता व वाहनों की भीड़ के कारण अधिक दुर्घटनाएँ व आने जाने में समय अधिक लगता है।
- नगरों की लगभग 30-35 प्रतिशत जनसंख्या मलिन बस्तियों में रहती है। बस्तियाँ जुओं के अर्द्ध एवं अपराधियों की शरण स्थली बनती जा रही है एवं अपराधियों की शरण स्थली बनती जा रही है।
- नगर प्रशासन एवं प्रबन्धन में भ्रष्टाचार के चलते इनका उचित विकास नहीं हो पा रहा है।
- जनसंख्या की अधिकतम व वाहनों एवं फैक्ट्रियों से निकलते धुएँ के कारण पर्यावरण काफी दूषित रहता है। नगरों की नदियों गन्दे नाले के रूप में बदलती जा रही है। प्रदूषण के कारण लोगों में अनेक बीमारियों जैसे-अस्थमा, टीबी, कैंसर आदि फैलती जा रही है।

---

#### 19.7 सारांश

---

इस इकाई के अध्ययन के द्वारा विभिन्न सामाजिक समस्याओं जनसंख्या विस्फोट लिंग पक्षपात (भेद) नगरीकरण आधुनिकीकरण की विशेषताओं, समस्याओं तथा इन समस्याओं को दूर करने के उपायों आदि के विषय में आपने जानकारी प्राप्त की। निवारण हेतु विभिन्न उपायों को अपनाकर हम इन समस्याओं को काफी हद तक दूर कर सकते हैं। इसके लिए हमें आपको और सबको मिलकर (प्रयास) करना होगा जिससे हम अपनी आगे आने वाली पीढ़ी को एक स्वच्छ और अच्छा वातावरण दे सकें। उनके भविष्य को एक नई दिशा प्रदान कर सकें। भारत आज जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है। उससे हतोत्साहित या निराश होने की आवश्यकता नहीं है बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि नए उत्साह के साथ कुछ ठोस कदम उठाये जाए।

---

#### 19.8 शब्दावली

---

- भ्रान्तियाँ: गलत फहमी
- उन्मूलन: निवारण
- सशक्त: मजबूत
- दीर्घकालीन: लम्बे समय तक
- परिपक्वता: शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकसित
- स्वावलम्बी: आत्म निर्भरता
- आवागमन: आने जाने के लिए यातायात
- ग्राम्य: गाँव
- जनाधिक्य: अधिक जनसंख्या

---

#### 19.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

---

सत्य/असत्य बताइये -

1. नगरीकरण की प्रक्रिया के जाति नियमों को कमजोर किया है।

(सत्य/असत्य)

2. नगरीकरण की प्रक्रिया व्यक्तिगत योग्यता और कुशलता को अधिक महत्व नहीं देती है। (सत्य/असत्य)
3. औद्योगिककरण के बिना नगरीकरण सम्भव नहीं होता है। (सत्य/असत्य)
4. नगरीकरण जीवन की एक विशेष विधि है। (सत्य/असत्य)
5. प्रदूषण नगरीकरण की एक मुख्य समस्या है। (सत्य/असत्य)
6. आधुनिकीकरण की मुख्य विशेषता नगरीकरण में वृद्धि हैं। (सत्य/असत्य)
7. भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया केवल नगरों तक सीमित है। (सत्य/असत्य)
8. नगरीय समुदाय में सभी लोगों के विचार धर्म निरपेक्ष तथा तार्किक होते हैं। (सत्य/असत्य)
9. आधुनिकीकरण का प्रौद्योगिक विकास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। (सत्य/असत्य)
10. शिक्षा, संचार, उत्तम नेतृत्व आधुनिकीकरण, के मुख्य कारक है। (सत्य/असत्य)
11. पूरे विश्व में भारत की जनसंख्या सर्वाधिक है। (सत्य/असत्य)
12. भारत में मृत्यु दर का कम होना जनसंख्या विस्फोट का एक मुख्य कारण है। (सत्य/असत्य)
13. भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग किमी 359 लोग रहते हैं। (सत्य/असत्य)
14. भारत में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की जनसंख्या अधिक है। (सत्य/असत्य)
15. भारत में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य उत्तर प्रदेश है। (सत्य/असत्य)

• **बहु विकल्पीय प्रश्न** (किसी एक पर सही का निशान लगाइये)

1. भारत का जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में
 

(अ) पहला स्थान है	(ब) तीसरा स्थान है
(स) दूसरा स्थान है	(द) छठा स्थान है
2. भारत में जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किमी कितना है।
 

(अ) 324	(स) 370
(ब) 359	(द) 216
3. जनगणना कितने वर्ष बाद की जाती है।
 

(अ) 8 वर्ष बाद	(स) 10 वर्ष बाद
(ब) 11 वर्ष बाद	(द) 9 वर्ष बाद
4. भारत में जनाधिक्य का मुख्य कारण
 

(अ) अशिक्षा	(ब) मृत्यु दर में कमी
(ब) गरीबी	(द) उपयुक्त सभी
5. किसी देश में जनसंख्या की उस अवस्था को क्या कहते है जिसमें जनसंख्या की आवश्यकतानुसार खाद्य सामग्री का अभाव हो

- (अ) जनाधिक्य (स) गरीबी  
 (ब) बेरोजगारी (द) खाद्य संकट
6. निम्न में से कौन एक नगरीकरण से सम्बन्धित गंभीर समस्या है।  
 (अ) निम्न जीवन स्तर (ब) गन्दी बस्तियाँ  
 (स) गाँवों में जाति संघर्ष (द) औपचारिक सम्बन्धों में वृद्धि
7. निम्न में से किस को नगर कहा जायेगा।  
 (अ) जहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक हो (स) जहाँ आधुनिकीकरण के लक्षण हो  
 (ब) जहाँ जाति व्यवस्था कमजोर हो (द) जहाँ 75 प्रतिशत से अधिक लोग बगैर कृषि व्यवसाय करते हो
8. निम्न में से नगरीकरण का लक्षण क्या है।  
 (अ) ग्रामीण क्षेत्रों का नगरीय क्षेत्रों में बदलना (स) नगरीय मनोवृत्तियों में वृद्धि होना  
 (ब) व्यावसायिक गतिशीलता बढ़ना (द) औपचारिक सम्बन्धों में वृद्धि होना
9. निम्न में से परिवार की कौन सी विशेषता नगरीकरण से प्रभावित है।  
 (अ) मुखिया का अधिकार (स) आयु पर आधारित स्तरीकरण  
 (ब) निम्न जीवन स्तर (द) वैयक्तिक स्वतन्त्रता

---

### 19.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

- [10] अरुण कुमार सिंह; समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा; प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली।
  - [10] राजेन्द्र नाथ मुकर्जी, [10] भरत अग्रवाल; सामाजिक समस्याएँ; विवेक प्रकाशन दिल्ली।
- 

### 19.11 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. लिंग भेद से आप क्या समझते हैं।
2. विकास में लिंग का क्या महत्व है?
3. मोजर ने महिलाओं के विकास की कल्पना किस आधार पर की?
4. भारत में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए किन प्रयासों पर विशेष बल दिया।
5. लिंग भेद (पक्षपात) समाप्त करने हेतु आप अपने कुछ सुझाव दीजिए।
6. आधुनिकीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
7. प्रौद्योगिक विकास तथा आधुनिकीकरण में क्या सम्बन्ध है?
8. आधुनिकीकरण की दो मुख्य विशेषताएँ लिखिये।
9. नगरीकरण की प्रक्रिया किस प्रकार आधुनिकीकरण में वृद्धि करती है।
10. सामाजिक मनोवृत्तियों एवं मूल्यों का आधुनिकीकरण का क्या प्रभाव पड़ता है?



11. आधुनिकीकरण के मुख्य कारकों का वर्णन कीजिए।
12. भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव की विवेचना कीजिए।
13. सामाजिक जीवन में नगरीकरण की क्या भूमिका है?
14. नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप नगरों की ज्वलंत समस्याएँ क्या हैं?
15. जनसंख्या विस्फोट के क्या कारण हैं?

---

**इकाई-20 सामाजिक शोषण, बाल-श्रम, सामाजिक एवं घरेलू हिंसा, कार्यस्थलीय शोषण, सामाजिक समस्याओं के विभिन्न समाधान (Social Exploitation, Child Labor, Social and Domestic Violence, Workplace Exploitation, Various solutions of Social Problems)**

---

- 20.1 प्रस्तावना
- 20.2 उद्देश्य
- 20.3 सामाजिक शोषण
- 20.4 बाल श्रम
  - 20.4.1 बाल श्रम के कारण
  - 20.4.2 बाल श्रम का प्रभाव
  - 20.4.3 बाल श्रमिकों की संख्या में कमी लाने हेतु सुझाव
- 20.5 सामाजिक घरेलू हिंसा
  - 20.5.1 सामाजिक हिंसा
  - 20.5.2 घरेलू हिंसा
- 20.6 कार्य स्थल पर शोषण
- 20.7 सामाजिक समस्यायें एवम इनके विभिन्न समाधान
- 20.8 सारांश
- 20.9 शब्दावली
- 20.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 20.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 20.12 निबन्धात्मक प्रश्न

---

**20.1 प्रस्तावना**

---

समाज में जहाँ एक ओर नियंत्रण के अनेक साधन जैसे- कानून, प्रथा, परम्परा, तथा नैतिक नियमों के द्वारा व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन को संगठित रखने का प्रयत्न किया जाता है वहीं दूसरी ओर अनेक व्यक्ति समाज के सामने अनेक गम्भीर समस्यायें उत्पन्न करते रहते हैं।

मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है उसके समक्ष अनेक समस्यायें आती रहती हैं और वह उनका प्रभावपूर्ण समाधान खोजने की कोशिश करता रहता है समस्याओं का प्रभावपूर्ण समाधान खोजने की वैज्ञानिक वधि के रूप में हम सर्वप्रथम एक विशेष घटना या प्रकृति को समझने का प्रयत्न करते हैं। तत्पश्चात् उस घटना का अनेक दशाओं से सह सम्बन्ध स्थापित करके किसी निष्कर्ष तक पहुँचने की कोशिश करते हैं कि कोई विशेष घटना किन कारणों से घटित हुई है और फिर हम उस समस्या के समाधान का प्रयास करते हैं। समस्याओं की प्राथमिकता समय के अनुसार बदलती रहती है, जैसे कुछ दशकों पहले हमारे यहाँ पर्दा प्रथा, बाल विवाह की प्रमुख सामाजिक समस्या थी लेकिन आज भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, बाल अपराध, बाल श्रम, हिंसा आदि प्रमुख सामाजिक समस्या हैं और इन समस्याओं से निपटने के लिए व इनके समाधान के लिए विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएँ निरन्तर कार्य कर रही हैं। जब हम इन समस्याओं का समाधान करते हैं तो कुछ समय बाद फिर से नई समस्यायें जन्म लेती है और ये क्रम चलता रहता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए इनका अध्ययन करना आवश्यक है।

---

## 20.2 उद्देश्य

---

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. सामाजिक शोषण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
2. बाल श्रम के कारण एवं निवारण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
3. सामाजिक एवं घरेलू हिंसा के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
4. विभिन्न कार्यस्थलों पर हाने वाले शोषण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. समाज में व्याप्त विभिन्न सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

---

## 20.3 सामाजिक शोषण

---

आर्थिक विकास होने से हमेशा ऐसा नहीं होता है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक रूप से सम्पन्न एवं सुखी हो जाए। कुछ लोग आर्थिक रूप से सम्पन्न हो जाते हैं तो कुछ लोगों की आर्थिक स्थिति में नाममात्र का सुधार होता है। फलस्वरूप समाज दो वर्गों में बँट जाता है- आर्थिक रूप से सबल वर्ग और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग। पहला वर्ग दूसरे वर्ग पर शोषण करना प्रारम्भ कर देता है। चाहे कृषि हो, उद्योग हो, स्वास्थ्य हो या शिक्षा। आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति पर अनावश्यक रूप से दबाव डालकर उनसे मनचाहा काम कराकर उनका शोषण करते हैं एवं अपनी सम्पन्नता को और मजबूत करते हैं। इस कारण समाज में आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है।

सामाजिक शोषण की प्रक्रिया प्राचीन काल से ही चली आ रही है, कभी उच्च वर्ग द्वारा निम्न जाति का शोषण कभी पुरुषों द्वारा महिलाओं का शोषण या मालिकों द्वारा श्रमिकों का शोषण हमें देखने को मिलता है। हमारे समाज में प्रायः सामाजिक शोषण निम्न रूपों में देखने को मिलता है।

**श्रम का शोषण-** कई बार मिलों कारखानों में काम करने वाले व्यक्तियों के कार्य के घण्टे निश्चित नहीं होते हैं। किन् परिस्थितियों में काम करना है यह भी निश्चित नहीं होता है कई बार महिलाओं की मजदूरी भी पुरुषों से कम होती है जबकि वो बराबर उन्हीं के जितना काम करती है। भारतीय श्रम कानून के अर्न्तगत किसी श्रमिक से यदि आठ घण्टे से ज्यादा काम लिया जाता है और मजदूरी नहीं दी जाती है तो वह शोषण है। काम के ज्यादा घण्टे, कम मजदूरी, कार्य के बीच में विश्राम न देना, कठिन परिस्थितियों में कार्य करवाना आदि के द्वारा उनके श्रम का शोषण किया जाता है।

**यौन शोषण-** यौन शोषण का शिकार सबसे ज्यादा महिलाएँ होती है। मजबूरी, पेट की आग, अज्ञानता, लाचारी, गरीबी आदि का फायदा इनके नियोक्ताओं द्वारा पूर्ण रूप से उठाया जाता है। बहुत जल्दी सफलता की सीढ़ी चढ़ना, बहुत जल्दी ज्यादा पैसे कमाने की लालसा के कारण अधिकांश महिलाएँ यौन शोषण का शिकार बनती हैं।

**जातिगत शोषण-** उच्च जाति द्वारा निम्न जाति वर्ग का शोषण प्राचीन समय से चला आ रहा है। प्रत्येक जाति अपनी जाति के हितों की चिन्ता करती है और उन हितों की पूर्ति के लिए दूसरे जाति के हितों की बलि देने से भी नहीं हिचकिचाती है।

**बाल श्रम का शोषण-** माचिस उद्योग, चूड़ी उद्योग, कालीन उद्योग आतिशबाजी उद्योग आदि में अधिकांश बाल श्रमिक काम करते हैं। जहाँ इनसे काम ज्यादा लिया जाता है और पैसा बहुत कम दिया जाता है कानून में लचीलापन सरकारी प्रयासों में कमी के चलते बाल श्रम का सर्वाधिक शोषण होता रहा है।

**महिलाओं का शोषण-** जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं ने या तो आर्थिक मजबूरी के कारण या अपने पैर पर खड़े होने और स्वावलम्बी बनने की इच्छा के कारण रोजगार में आना शुरू किया। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मानव विकृतियाँ भी बढ़ी और उन विकृतियों का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण शिकार होती रही महिलाएँ। पुरुषों के समान काम करने पर पुरुषों से कम पारिश्रमिक देकर उनका सदियों से शोषण होता रहा है। घर हो या बाहर सबसे ज्यादा शोषण की शिकार महिलाएँ ही होती हैं। घर में भी महिलाओं द्वारा महिलाओं पर किया जाने वाला अत्याचार कोई नई बात नहीं है। अज्ञानता, संवेगात्मक भावुकता, परिवार की बदनामी का डर आदि के कारण ये शोषण का शिकार होती रही हैं। अपहरण कर लड़कियों का शोषण किसी स्थान पर सामूहिक रूप से बलात्कार की खबरें आये दिन सुनने पढ़ने को मिलती है और फिर पुलिस द्वारा ज्यादा खोजबीन होने पर उसे किसी स्थान पर ले जाकर छोड़ दिया जाता है और उसकी आगे की पूरी जिन्दगी अन्धकार मय हो जाती है और वह समाज से घृणा करने लगती है।

**जेल में कैदियों का शोषण-** कुछ विषम सामाजिक परिस्थितियाँ व्यक्ति को अपराधी बना देती हैं और वे अपराध करने को मजबूर हो जाते हैं। और सजा मिलने पर जेल में इनकी जिन्दगी और बदतर हो जाती है जहाँ इनका शारीरिक, मानसिक शोषण और यौन शोषण भी होता है। देश की पहली महिला आईपीओएस0 किरण बेदी ने तिहाड़ जेल में रह रहे कैदियों की दुर्दशा सुधारने के लिए ठोस कदम उठाये।

**बालकों का शोषण-** छोटे बच्चों को बहला फुसला उनको उठा ले जाते हैं और उन्हें डरा धमका कर अपाहिज बना कर शिक्षा या पौकेट मारी जैसे कार्य सिखाये जाते हैं और उन्हें इससे जो भी पैसा मिलता है उसे गैंग के मुखिया को सौंप देते हैं। वे जब निकल भागने की कोशिश करते हैं तो पकड़े जाने पर इन्हे घोर यातनाएँ दी जाती हैं और वापस इनसे फिर वही कार्य करवाते हैं यहा इनका शारीरिक और मानसिक दोनों ही तरह का शोषण होता है।

---

## 20.4 बाल श्रम

---

उद्योग कारखाने, होटल, ढाबे एवं घरों में काम करने वाले 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को बाल श्रमिक कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार 15 वर्ष या उससे कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1966 में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय इकरारनामा सम्मेलन में आह्वान किया कि प्रत्येक देश एक ऐसी आयु सीमा निर्धारित करें जिससे कम आयु के श्रमिकों की नियुक्ति प्रतिबंधित व दण्डनीय हो अमेरिकी कानून के मुताबिक 12 वर्ष से कम आयु तथा इंग्लैण्ड व अन्य यूरोपीय देशों में 13 वर्ष से कम आयु के श्रमिकों को बाल श्रमिकों की श्रेणी में रखा है। भारतीय संविधान के अनुसार 9 से 14 वर्ष के बीच के बालक बालिका जो वैतनिक श्रम करते हैं। बाल श्रमिक के अन्तर्गत आते हैं। पूँजीवादी वर्ग द्वारा मुनाफा अधिक कमाने के उद्देश्य से बच्चों का सामाजिक व अमानवीय शोषण किया गया तब बाल श्रम का उदभव हुआ। आज भारत में बाल श्रमिकों की संख्या घटने के बजाय, बढ़ रही है। इन श्रमिकों से ज्यादा से ज्यादा काम लिया जाता है और मजदूरी बहुत कम दी जाती है। भारत में सकल राष्ट्रीय उत्पादन में श्रमिकों का लगभग 20 प्रतिशत योगदान है जिससे लगभग 7 प्रतिशत योगदान बाल श्रमिकों का है विश्व में बाल श्रमिकों की संख्या सबसे ज्यादा भारत में है। मानव श्रम का सही मूल्य न देकर अधिक काम लेने की पूँजीवादी प्रवृत्ति की देन है। बाल श्रमिक की इस प्रवृत्ति को चार सिद्धान्तों में बाँटा गया है।

**नव पुरातनवादी सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बच्चों को उपयोग व निवेश की सामग्री मानकर उनके श्रम का उपयोग आय बढ़ाने हेतु किया जाता है।

**सामाजीकरण का सिद्धान्त-** इसके अन्तर्गत बाल श्रम का उपयोग पारिवारिक प्रक्रिया के अन्तर्गत किया जाता है कृषि कार्य घरेलू उद्योग आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।

**माक्सवादी सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार बाल श्रम पूँजीवादी व्यवस्था का अभिन्न अंग है। नई तकनीक सस्ते व अकुशल मजदूरों की माँग करती है और बेरोजगारी के कारण बच्चे भी औद्योगिक श्रमिकों के संचित दल का हिस्सा बन जाते हैं।

### 20.4.1 बाल श्रम के कारण - भारत में बाल श्रम के निम्न कारण हैं।

**I. निर्धनता-** निर्धनता बाल श्रम का सबसे मुख्य कारण है। दो समय की रोटी का जुगाड़ करने के लिए अपना बचपन बेचना पड़ता है। फलतः ये विभिन्न स्थानों पर काम करके इन्हें अपना व परिवार का पेट पालने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

**II. जनसंख्या की अधिकता-** भारत में लगातार हो रहे जनसंख्या वृद्धि बाल श्रम के लिए उत्तरदायी है। कृषि भूमि का अभाव होना और जनसंख्या में लगातार वृद्धि होने से आवश्यकताओं का पूरा करना कठिन हो रहा है और ऐसी स्थिति में अपनी जरूरी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बच्चों को भी काम पर लगाना पड़ता है।

**III. सस्ता श्रम-** श्रम का सस्ता साधन होने के कारण अधिकांश लोग बाल श्रमिकों को रखना पसन्द करते हैं क्योंकि इन्हें वेतन कम देना पड़ता है साथ ही इन पर हुकम चलाना आसान होता है। इनका अपना कोई संगठन नहीं होता है और न ही ये शोषण के खिलाफ आवाज उठा पाते हैं।

**IV. शिक्षा का अभाव-** जब बच्चा किन्ही कारणों से (सामाजिक आर्थिक आदि) आशिक्षित रह जाता है तो स्वाभाविक है कि उसे अपना पेट भरने के लिए कुछ न कुछ काम तो करना ही है। ज्यादातर बाल श्रमिक होटलों, ढाबों, आतिशबाजी, मचिस उद्योग कांच उद्योग, पत्थर की खानों में तथा गलीचा उद्योग आदि में काम करते हैं।

**V. सख्त कानून न होना-** सख्त कानून न होना भी बाल श्रमिकों की वृद्धि का कारण है यदि बाल श्रमिक रखने वालों के प्रति कड़ी कार्यवाही की जाए और सख्ती से इन कानूनों का पालन किया जाए तो निश्चित ही इनकी संख्या में कमी आयेगी।

#### **20.4.2 बाल श्रम का प्रभाव-**

हमारे देश में बाल श्रमिकों की संख्या सर्वाधिक है निश्चित रूप से इनका प्रभाव निम्न रूपों में पड़ता है।

**विदेशी मुद्रा की प्राप्ति में सहायक-** बाल श्रमिक श्रम का सस्ता साधन है। इनकी संख्या अधिक होने के कारण देश को करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

**अपराधों में कमी-** हमारे देश में बड़ी संख्या में बाल श्रमिक कार्य कर रहे हैं यदि ये कुछ काम नहीं करेंगे तो इनमें आपराधिक प्रवृत्तियाँ बढ़ेंगी। काम इन्हें अपराध की ओर जाने से रोकता है। शारीरिक एवं मानसिक विकास में बाधा छोटी सी उम्र में ज्यादा काम के बोझ से इनका न तो शारीरिक विकास ठीक ढंग से हो पाता है और न ही मानसिक विकास शिक्षा व खेलने की उम्र में ये अपनी दो वक्त की रोटी के लिए पूरे दिन काम पर लगे रहते हैं।

**स्वास्थ्य पर प्रभाव-** बाल श्रमिकों को मशीनों के भयंकर शोर ज्यादा तापमान या एक स्थिति खड़े रहना, या रसायनों के साथ काम करने पर इनके फेफड़ें आंखों पर ज्यादा प्रभाव पड़ता है। साथ ही ये बहरापन असीमित कमरदर्द, जोड़ों का दर्द आदि कई शिकार हो जाते हैं और इनका स्वास्थ्य गिरता चला जाता है। यद्यपि बाल श्रम का प्रभाव बालक एवं समाज दोनों के लिए हानिकारक है बाल श्रम से भले ही देश को विदेशी मुद्रा हो रही हो लेकिन इनका भविष्य अंधकारमय है।

#### **20.4.3 बाल श्रमिकों की संख्या में कमी लाने हेतु सुझाव –**

**जनसंख्या पर नियंत्रण-** बाल श्रमिकों की संख्या में कमी लाने के लिए हमें जनसंख्या नियंत्रण के उपायों पर ध्यान देना होगा। गरीबी- गरीबी कम करके इनकी संख्या में कमी लाई जा सकती है भारत की लगभग 32 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है इनकी गरीबी इन्हें बाल श्रमिक बनने पर मजबूर कर देती है। शिक्षा का प्रसार करके- देश में शिक्षा का जितना प्रचार प्रसार होगा, बाल श्रमिकों की संख्या में उतनी ही कमी आयेगी। शिक्षा द्वारा इन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान होगा और कोई भी इनका शोषण नहीं कर पायेगा। कठोर कानून व्यवस्था- बाल श्रमिक रखने वाले लोगों के प्रति कड़ी कार्यवाही की जानी चाहिए। ताकि ये लोग बाल श्रमिक न रखें।

बच्चों इस शोषण से बचाने के लिए एक समन्वित नीति बनाने की आवश्यकता है। सतत विकास, आधुनिक क्षेत्रों में तेजी से विस्तार, अनिवार्य स्कूली शिक्षा, गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में लगातार कमी बाल श्रम उन्मूलन हेतु आवश्यक है। बाल श्रम का पूर्ण उन्मूलन का लक्ष्य तो अधिकांश देशों की पहुँच से बाहर है किन्तु इसमें सभी के लिए मानवाधिकार आयोग व गैर सरकारी संगठनों के बीच एक साझेदारी बन सकती है। इस दिशा में गैर सरकारी संगठनों का कार्य सराहनीय है। जब तक समाज का हर वर्ग मन से बाल श्रमिकों के विरुद्ध नहीं होगा, बाल श्रमिकों की मुक्ति असम्भव है।

---

## 20.5 सामाजिक / घरेलू हिंसा

---

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि मानव हिंसा की भावना को जन्म से ही अर्जित करता है। माँ की गोद में जब नवजात शिशु को भूख सताती है तो वह माँ की ओर लपकता है माँ की अनिच्छा पर वह उस पर वार करता है। हाथ पैर पटकता है यहीं से क्रोध और फिर हिंसा पनपती है जिस पर यह हिंसा उतारी जाती है। वह कभी न कभी दहशत में इसका शिकार होता है। और दूसरी ओर साधु प्रवृत्ति भी जन्म हम समाज में व्याप्त कुछ ऐसी ही सामाजिक और घरेलू हिंसा के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

### 20.5.1 सामाजिक हिंसा-

सामाजिक रूप से हिंसा की शुरुआत उस समय हुई जब से मनुष्य के मन में तेरे मेरे की भावना ने घर किया बात अगर सुलझ गई तो शान्ति, वरना इसी से घर मोहल्ले, राज्य, देश और फिर विश्व स्तर पर हिंसा पनप उठती है। पुरुष प्रधान समाज में क्योंकि मूलतः पुरुष को ही हिंसा का कारण माना जाता है क्योंकि वह सबसे ताकतवर है इसलिये अपने से कमजोर को दबाने में नहीं चूकता। परिवार में जब पति की हिंसा पत्नी पर हावी होती है तो पूरे परिवार में भय और दहशत पैदा होती है कभी कभी ये स्थिति इसके विपरीत भी होती है। जहाँ पत्नी हावी होती है तब पति को सिर्फ अपनी इज्जत परिस्थितियों और गृहस्थी चलाने की गरज से पत्नी की तुनकमिजाजी सहनी पड़ती है। अन्ततः स्थिति ऐसी भी आती है जब सब्र का बाँध टूट जाता है और बात हिंसा पर आ जाती है तब व्यक्ति में तनाव, कुण्ठा हिंसा व दहशत जनम लेती है।

ज्वैलरी शॉप पर दिन दहाड़े लूटपाट, लड़की के साथ छेड़छाड़ भीषण नरसंहार, बम विस्फोट, लड़की पर कुछ लड़कों द्वारा तेजाब फेकने जैसे घटनाएं हमें प्रतिदिन अखबारों में पढ़ने को मिलती है। ये खबरें आपको पढ़ने में भले ही अच्छी न लगें लेकिन समाज की इस हकीकत से हम सभी वाकिफ हैं, जो हिंसा भय दहशत और कुंठा, तनाव, हिंसा आदि को जन्म दे रही हैं। सामाजिक रूप से यदि हिंसा को देखा जाए ज्यादा हिंसा धर्म और जाति के प्रति हुई है।

(i) **जातिगत हिंसा-** भारत में विभिन्न धर्म और जाति के रहते हैं समस्त जातियों में लगभग 15 प्रतिशत जातियाँ पिछड़ी जातियों के लोग रहते हैं 2008 के आंकड़ों के मुताबिक जातिगत हिंसा के 10,000 से भी ज्यादा मामले दर्ज हुए हैं। भारत में अभी भी उच्च जातियों निम्न जातियों पर हिंसक होती हैं और टकराव होते रहते हैं।

(ii) **भ्रूण हत्या-** भ्रूण हत्या यह एक सामाजिक हिंसा भी है और घरेलू हिंसा भी क्योंकि आज समाज में बड़े पैमाने पर इस तरह की घटना हो रही है और घर के भीतर महिलाओं को भ्रूण हत्या के लिए मजबूर किया जा रहा है। अल्ट्रासाउण्ड की सुविधा, कानून की सख्ती पालन न होना इस हिंसा को बढ़ावा दे रहा है।

(iii) **धार्मिक हिंसा-** भारत विभिन्न धर्मों वाला देश है। यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई चार धर्मों के लोग निवास करते हैं जिसमें हिन्दुओं के बाद सबसे ज्यादा संख्या मुस्लिम निवास करते हैं और सबसे ज्यादा दंगे हिन्दू और मुस्लिमों के बीच हुए हैं। आंकड़ों के अनुसार आजादी के बाद से अब तक लगभग 8000 धार्मिक दंगे हुए हैं। इन दंगों में सैकड़ों लोग बेघर हो जाते हैं। धन और जन दोनों की ही हानि होती है। आतंकवाद, अपहरण, सामूहिक बलात्कार ये सभी सामाजिक हिंसा के अंतर्गत आते हैं। हमारे यहाँ आये दिन अखबार इस तरह की हिंसक घटनाओं से भरे पढ़े होते हैं। बिहार और झारखण्ड में बारबार हो रही भीषण नरसंहार, जम्मू कश्मीर में आतंकवाद दिल्ली में बलात्कार से सम्बन्धित हिंसक घटनाएं आये दिन सुनने को मिलती हैं।

(iv) **हथियार और हिंसा-** विश्व आंकड़ों के अनुसार हथियारों के मामले में अग्रणी अमेरिका में हिंसा की स्थिति सबसे विकट है। यहाँ के नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ के वैज्ञानिकों ने हथियारों को हिंसा का जीवाणु माना है। वैज्ञानिकों ने हथियारों और हिंसा के सम्बन्ध में शोध कार्य किये और उनका मानना है कि यदि समाज में हथियारों की संख्या पर काबू पा लिया जाए तो हिंसा की वारदातों में गिरावट आ जायेगी। हमारे देश में स्थिति यह है कि हथियार केवल अपराधियों के पास ही नहीं आम नागरिकों के पास भी हैं। घरों में ही तैयार कट्टे छर्रों से लेकर, एके 47 तक उपलब्ध हैं। कुछ लोग शौकिया तौर पर भी हथियार रखते हैं। हथियारों के प्रति यह लालसा, शौक और जखीरा समाज में हिंसा को बढ़ायेगा, इसे रोकने के लिए सरकारी प्रयास ही सब कुछ नहीं हैं। हम सबको इस पर काबू करने का प्रयास करना होगा।

(v) **समाज को हिंसा सौंपते धारावाहिक व फिल्म-** बेहद डरावनी, दहशत से भरी, वीभत्स चेहरे, रक्त रंजित हाथ, अजीबो गरीब सन्नाटे से भरी फिल्में व धारावाहिक तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। सर्वेक्षण के मुताबिक इस तरह के धारावाहिक और फिल्में हमारी मानसिकता को विकृत करते हैं। खासकर बच्चों और युवाओं को बर्बाद करते हैं। निर्माता निर्देशक तो अपनी कमाई कर जाते हैं लेकिन कल्पना से युक्त दहशत भरी ये रचनाएं समाज में भय और हिंसा की सौगात दे जाते हैं और युवा अक्सर इन धारावाहिकों और फिल्मों से प्रेरित होकर बड़ी-बड़ी हिंसक वारदातों को भी अंजाम दे जाते हैं।

### 20.5.1 घरेलू हिंसा

घरेलू हिंसा की जड़ें हमारे समाज तथा परिवार में गहराई तक जम गई हैं। इसे व्यवस्थागत समर्थन भी मिलता है। घरेलू हिंसा के खिलाफ यदि कोई महिला आवाज मुखर करती है तो इसका तात्पर्य होता है अपने समाज और परिवार में आमूलचूल परिवर्तन की बात करना। वर्तमान में घरेलू हिंसा के मामले दिनों-दिन बढ़ते जा रहे हैं। परिवार तथा समाज के संबंधों में व्यापत ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, अपमान तथा विद्रोह घरेलू हिंसा के मुख्य कारण हैं। परिवार में हिंसा की शिकार सिर्फ महिलाएं ही नहीं बल्कि वृद्ध और बच्चे भी बन जाते हैं। प्रकृति ने महिला और पुरुष की शारीरिक संरचनाएं जिस तरह की हैं उनमें महिला हमेशा नाजुक और कमजोर रही है, वहीं हमारे देश में यह माना जाता रहा है कि पति को पत्नी पर हाथ उठाने का अधिकार शादी के बाद ही मिल जाता है। हालांकि महिलाओं का संरक्षण अधिनियम (पीडब्ल्यूडीवीए), 2005 से महिलाओं को घरेलू हिंसा से संरक्षण व सहायता प्राप्त हुई है। यह अधिनियम घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं को संरक्षण देने और उनकी सहायता करने के लिए बनाया गया है। इस कानून में जाने-अनजाने में किए गए वे सभी कृत्य जिनसे महिलाओं को शारीरिक, सैक्सुअल या मानसिक स्वास्थ्य को चोट पहुंचती



है और उसमें हिंसा के विशिष्ट रूप जैसे शारीरिक, सैक्सुअल, मौखिक, भावनात्मक और आर्थिक दुरुपयोग किया जाना शामिल है, को परिभाषित करता है। पीडब्ल्यूडीवीए सभी महिलाओं को घर के निजी दायरे में हिंसा से मुक्त जीने के अधिकार को मान्यता देता है। इस कानून का उद्देश्य हिंसा को रोकना और प्रतिवादी के साथ महिला के रिश्ते के बावजूद ऐसी परिस्थितियों में तुरन्त एवं आपातकालीन सहायता प्रदान करना है।

### **घरेलू हिंसा की परिभाषा**

पुलिस - महिला, वृद्ध अथवा बच्चों के साथ होने वाली किसी भी तरह की हिंसा अपराध की श्रेणी में आती है। महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा के अधिकांश मामलों में दहेज प्रताड़ना तथा अकारण मारपीट प्रमुख हैं।

राज्य महिला आयोग - कोई भी महिला यदि परिवार के पुरुष द्वारा की गई मारपीट अथवा अन्यम प्रताड़ना से त्रस्त है तो वह घरेलू हिंसा की शिकार कहलाएगी। घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005 उसे घरेलू हिंसा के विरुद्ध संरक्षण और सहायता का अधिकार प्रदान करता है।

आधारशिला (एन.जी.ओ.)- परिवार में महिला तथा उसके अलावा किसी भी व्यक्ति के साथ मारपीट, धमकी देना तथा उत्पीड़न घरेलू हिंसा की श्रेणी में आते हैं। इसके अलावा लैंगिक हिंसा, मौखिक और भावनात्मक हिंसा तथा आर्थिक हिंसा भी घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम 2005 के तहत अपराध की श्रेणी में आते हैं। (पुलिस, राज्यल महिला आयोग तथा एन.जी.ओ. द्वारा घरेलू हिंसा की जो परिभाषाएं दी गई हैं उनका तात्पर्य लगभग एक जैसा ही है हालांकि भाषा परिवर्तित है।)

### **घरेलू हिंसा-**

विश्व की स्थिति महिलाओं को अधिकारों की सुरक्षा को अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक (1975-85) के दौरान एक पृथक पहचान मिली थी। सन् 1979 में संयुक्त राष्ट्र संघ में इसे अंतर्राष्ट्रीय कानून का रूप दिया गया था। विश्व के अधिकांश देशों में पुरुष प्रधान समाज है। पुरुष प्रधान समाज में सत्ता पुरुषों के हाथ में रहने के कारण सदैव ही पुरुषों ने महिलाओं को दोयम दर्जे का स्थान दिया है। यही कारण है कि पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के प्रति अपराध, कम महत्वह देने तथा उनका शोषण करने की भावना बलवती रही है।

### **शारीरिक हिंसा :**

इस हिंसा के बारे में सभी बहुत भली भांति जानते हैं। जैसे- मारपीट करना, थप्पड़ मारना, ठोकर मारना, दांत काटना, मुक्का मारना, धक्का देना, लात मारना या किसी अन्य तरीके से महिला को शारीरिक चोट पहुँचाना आदि शारीरिक हिंसा के उदाहरण हैं।

### **मानसिक हिंसा :**

बहुत से लोग महिलाओं को मारते पीटते नहीं लेकिन वे उसे इतनी ज्यादा मानसिक पीड़ा देते हैं कि वे अपने हालातों पर मजबूर हो जाती है। मानसिक हिंसा में गाली गलौच करना, कलंक लगाना, बुराई करना, मजाक उड़ाना, दहेज आदि के लिए अपमानित करना, बच्चा या बेटा न होने पर ताना देना, शिक्षा या नौकरी में अवरोध उत्पन्न करना, बाहर

जाने या किसी व्यक्ति से मिलने के लिए रोकना, अपनी पसंद के व्यक्ति से विवाह करने या नहीं करने पर दबाव डालना, आत्महत्या की धमकी देना, चरित्र और आचरण पर दोषारोपण, नौकरी छोड़ने के लिये दबाव डालना आदि सम्मिलित हैं।

## 2. लैंगिक हिंसा

बलात्कार, अश्लील साहित्य और या कोई अन्य, अश्लील तस्वीरों को देखने के लिए विवश करना, दुर्व्यवहार करना, अपमानित करना, अपमानित या नीचा दिखाने की लैंगिक प्रवृत्ति का कोई अन्य कार्य अथवा जो प्रतिष्ठा का उल्लंघन करता हो इस हिंसा के अंतर्गत आता है।

## 3. आर्थिक हिंसा:

ये अक्सर वे ही पुरुष करते हैं जो या तो ठीक से कमा नहीं पाते या उन्हें नौकरी करने में कोई रूचि नहीं होती। ऐसे पुरुष अपने जीवनयापन की वस्तुएं भी महिला के वेतन से खरीदते हैं। घर में खाने, कपड़े, दवाई आदि का खर्च नहीं देना या अगर घर में है तो उनका उपयोग नहीं करने देना, घर का किराया नहीं देना, घर से जबरदस्ती महिला को निकाल देना, नौकरी कर रही महिला का वेतन ले लेना, नौकरी नहीं करने देना, बिलों का भुगतान नहीं करना, घर के किसी भी मौद्रिक कार्य में अपना सहयोग नहीं देना, महिला का वेतन छीनकर शराब आदि पीना आर्थिक हिंसा के उदाहरण है। इसके अतिरिक्त बच्चों के अनुरक्षण के लिये धन उपलब्ध न कराना, बच्चों के लिए खाना, कपड़े और दवाइयाँ उपलब्ध न कराना, रोजगार चलाने से रोकना अथवा उसमें विघ्न डालना, रोजगार करने के अनुज्ञात न करना, वेतन पारिश्रमिक इत्यादि से आय को ले लेना वेतन पारिश्रमिक उपभोग करने की अनुमति न देना, घर से निकलने को विवश करना।

## भारत में घरेलू हिंसा

दिल्ली में स्थित एक सामाजिक संस्था अ द्वारा कराये गये अध्ययन के अनुसार भारत में लगभग पांच करोड़ महिलाओं को अपने घर में ही हिंसा का सामना करना पड़ता है। इनमें से मात्र 0.1 प्रतिशत ही हिंसा के खिलाफ रिपोर्ट लिखाने आगे आती हैं। पालन-पोषण में पितृसत्तात्मक अधिक महत्व रखती है इसलिए लड़की को कमजोर तथा लड़के को साहसी माना जाता है। लड़की के व्यक्तित्व को जीवन की आरम्भ अवस्थाओं में ही कुचल दिया जाता है। घरेलू हिंसा के प्रमुख कारण निम्न माने जाते हैं-

- I. समतावादी शिक्षा व्यवस्था का अभाव।
- II. सामाजिक कुप्रथाएँ
- III. अशिक्षा
- IV. पुरुष प्रधान समाज
- V. महिला के चरित्र पर संदेह करना

VI. शराब की लत

VII. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का दुष्प्रभाव

VIII. महिला को स्वावलम्बी बनने से रोकना।

### घरेलू हिंसा का दुष्प्रभाव

महिलाओं तथा बच्चों पर घरेलू हिंसा के शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक दुष्प्रभाव पड़ते हैं। इसके कारण महिलाओं के काम तथा निर्णय लेने की क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। परिवार में आपसी रिश्तों और आस-पड़ोस के साथ रिश्तों व बच्चों पर भी इस हिंसा का सीधा दुष्प्रभाव देखा जा सकता है। घरेलू हिंसा के कारण दहेज मृत्यु, हत्या और आत्महत्या बढ़ी हैं। वेश्यावृत्ति की प्रवृत्ति भी इसी कारण बढ़ी है। महिला की सार्वजनिक भागीदारी में बाधा होती है। महिलाओं का कार्य क्षमता घटती है, साथ ही वह डरी-डरी भी रहती है। परिणाम स्वरूप प्रताड़ित महिला मानसिक रोगी बन जाती है जो कभी-कभी पागलपन की हद तक पहुंच जाती है। पीड़ित महिला की घर में द्वितीय श्रेणी की स्थिति स्थापित हो जाती है। (<http://www.mediaforrights.org/infopack/hindi-infopack/551>)

### घरेलू हिंसा से बचाव

मनोवैज्ञानिक और समाज सुधारक अनुजा कपूर कहती हैं, “हमारे समाज की सब से बड़ी समस्या यही है कि महिलाओं को लगता ही नहीं कि उन के साथ घरेलू हिंसा हो रही है। समाज में यही धारणा व्याप्त है कि पति हमेशा सही होता है, वह कुछ भी कर सकता है। “समाज को बदलने के लिए हमें स्वयं को बदलना होगा। अब पिता की संपत्ति में बेटी को बराबर की हिस्सेदारी मिलती है। वह अलग हो सकती है। शोषित होने से इनकार कर सकती है। बच्चे मां-बाप को रोल मॉडल मानते हैं। पर जब वे देखते हैं कि कोई व्यक्ति आपका हाथ मोड़ रहा है, कपड़े फाड़ रहा है, धक्के दे रहा है या फिर गालियां बक रहा है। फिर भी महिला उसे सही कहती हैं, क्योंकि वह पति है, यही हम बच्चों को अप्रत्यक्ष रूप से सिखा रहे होते हैं। यह वूमन ऐंपावरमेंट नहीं है। “महिला अन्याय का विरोध करेंगी तो कानूनों की कमी नहीं। महिला के हित में सरकार ने कानून बनाए हैं। ऐसे एनजीओ की भी कमी नहीं जो महिला को सहयोग देते हैं।”

यदि घरेलू हिंसा से भारत की लड़कियों को बचाना है, तो जरूरी है कि घर में बच्चों को शुरू से ही सही संस्कार दिए जाएं। उन्हें बताया जाए कि लड़के लड़की में कोई फर्क नहीं और ऐसा कतई सही नहीं है कि भाई अपनी बहनों के साथ मारपीट करें या उन्हें दबा कर रखें। जब तक वे बचपन से महिलाओं का सम्मान करना नहीं सीखेंगे, आगे चल कर भी बीवी पर हाथ उठाने की उन की आदत नहीं जाएगी। लड़कों को बचपन से जो यह सिखाया जाता है कि “लड़के रोते नहीं हैं” उस की जगह यह सिखाया जाए कि लड़के रुलाते नहीं हैं।

यद्यपि घरेलू हिंसा का कोई कारण बता पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। पितृ सत्तात्मक समाज होने के कारण भारतीय समाज में इस प्रकार की हिंसा निरन्तर बढ़ती जा रही है। घरेलू हिंसा को रोकने या कम करने के लिए निम्न सुझाव अपनाए जाने आवश्यक हैं।

I. शिक्षा की सतुचित व्यवस्था हो

- II. रोजगार की व्यवस्था हो
- III. आश्रम की व्यवस्था हो
- IV. महिला न्यायालयों की स्थापना
- V. बैचारिक परिवर्तन की आवश्यकता
- VI. अधिकारों के प्रति चेतना

यद्यपि भारत में महिला संगठन घरेलू हिंसा के विरोध में समय-समय पर अपनी आवाज बुलन्द करते रहे हैं। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा रोकने, इनके स्तर में सुधार करने एवं पुरुषों के समान दर्जा देने हेतु वर्ष 2002 में बनाई राष्ट्रीय नीति में महिला हिंसा रोकने के लिए निम्न संकेत दिए गए हैं -

- I. राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी निर्धारित की गई
- II. शिक्षा, स्वास्थ्य, सम्पत्ति का समान अधिकार
- III. लैंगिक मामलों में पुरुष के समान अधिकार
- IV. वैधानिक प्रक्रिया में परिवर्तन
- V. महिला हिंसा एवं उत्पीड़न रोकने हेतु समुचित विकास

संसार के सभी सभ्य देश और समाज इस दिशा में कार्यरत हैं। यद्यपि पहले की अपेक्षा मानव चेतना का विकास भी हुआ है, किन्तु विकास की गति ने संस्थाओं को कमजोर किया है जिससे सामाजिक असंतुलन बढ़ा है और लिंग आधारित हिंसा में शर्मनाक बढ़ोत्तरी हुई है।

भारत में महिलाओं के विरुद्ध अपराध

क्र० सं०	अपराध की प्रकृति	वर्ष			
		1998	2000	2002	2004
1	बलात्कार	15151	16469	16827	18233
2	अपराध	16351	15023	1620	15578
3	दहेज हत्या	6975	6712	6915	7026
4	उत्पीड़न (घरेलू हिंसा)	41376	45778	46417	58121
5	देड़छाड़	30959	32940	35647	34567
6	यौन शोषण	8054	11024	9145	10001

7	लड़कियों की खरीद फरोख्त	146	64	-	89
8	अनैतिक व्यापार	8695	9515	9544	5748
9	अश्लील प्रदर्शन	190	662	412	1378
10	दहेज उन्मूलन	3578	2876	4042	3592

## 20.6 कार्य स्थल पर शोषण

विभिन्न कार्य स्थलों पर काम करने वाले लोग प्रायः तीन प्रकार के होते हैं जिनका शोषण किया जाता है

1. पुरुष
2. महिला
3. बच्चे

उच्च जाति द्वारा निम्न जाति पर, धनी व्यक्तियों द्वारा निर्धन व्यक्तियों पर, मालिक द्वारा श्रमिकों पर, पुरुषों द्वारा महिलाओं पर। शोषण अत्याचार प्राचीन समय से चला आ रहा है आज भी शोषण होता है ऐसे कार्य स्थल को हम निम्न भागों में बाँट सकते हैं।

- I. परिवार
- II. ऑफिस
- III. कारखाने या उद्योग धन्धे
- IV. शिक्षण संस्थान
- V. होटल या ढाबे

परिवार में सबसे ज्यादा शोषण महिलाओं का होता है। परिवार में प्रायः सास, पति, जेठानी या ननद द्वारा बहू पर अत्याचार होता है। ज्यादातर केस में अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष ही महिलाओं को ऐसे उत्पीड़न का शिकार बनाते हैं। ऑफिस में बॉस द्वारा महिला और पुरुष दोनों का ही शोषण किया जाता है। महिलाओं से काम पूरा लिया जाता है और पैसा बहुत कम दिया जाता है। बात बात पर उन्हें निकाल देने व दूसरे व्यक्ति को काम पर रखने की धमकी भी दी जाती है। ऑफिस में प्रमोशन आदि को लेकर परेशान करना, महिलाओं पर छिंटाकशी द्वारा महिला कर्मचारी को बार-बार बिना किसी काम के अपने केबिन में बुलाना, उसके साथ अभद्र व्यवहार करना आदि कार्य स्थल पर देखे जा सकते हैं।

ऑफिस में महिलाओं के खिलाफ सभी तरह के उत्पीड़न या हिंसा के पीछे का सामान्य कारण हमारे समाज में प्रचलित पितृसत्तात्मक संरचना है, जहां एक पुरुष सदैव अपने आप को जीवन के हरेक पहलू में महिलाओं से अधिक सर्वशक्तिमान समझता है। ये श्रेष्ठता अपने आप में महिलाओं और कार्यशील महिलाओं के खिलाफ विभिन्न प्रकार के जटिल भेदभावों को व्यवहार में प्रकट करती है। इस प्रकार, एक पुरुष कर्मचारी ये कभी नहीं चाहता कि उसके साथ

कोई महिला सहयोगी बराबरी के साथ काम करे, वो कार्यालय में उससे ऊँचे स्तर पर पहुँचो वे उसे असहज बनाने, नीचा दिखाने के लिये उसका उत्पीड़न करते हैं।

यद्यपि हमारे पास कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचार को रोकने के लिए विशेष प्रावधान है। इसके अलावा भारत के सुप्रीम कोर्ट द्वारा पहले से दिये गये ऐतिहासिक दिशा निर्देश भी हैं लेकिन इस बुराई को तब तक नियंत्रित नहीं किया जा सकता जब तक कि पुरुषों की सोच को नहीं बदला जा सकता। जब तक पुरुषों के द्वारा महिलाओं की बुनियादी मानवता को सम्मान नहीं दिया जायेगा, कोई भी कानून प्रभावी नहीं हो सकेगा।

कारखाने और उद्योग धन्धों में भी मजदूरों और कर्मचारियों का शोषण होता है- जैसे काम के घण्टे ज्यादा होना, बीमारी में छुट्टी लेने पर वेतन काट लेना, ज्यादा से ज्यादा काम लेना और कम वेतन देना, निश्चित मजदूरी न देना। कहीं-कहीं तो कारखानों में (जैसे चूड़ी उद्योग, कालीन उद्योग आदि) बाल श्रमिकों को रखा जाता है उनसे ये ज्यादा से ज्यादा काम लेते हैं और बहुत कम पैसे देते हैं, उन्हें डराया धमकाया भी जाता है जिससे ये उनके खिलाफ आवाज न उठाये।

प्राइवेट शिक्षण संस्थाएं भी लोगों का शोषण करने से नहीं चूकती। हमारे यहाँ शिक्षित बेरोजगारी की वजह से इन्हें शिक्षक आसानी से मिल जाते हैं। ये इनसे 8 घण्टे काम करवाते हैं और पैसा बहुत कम देते हैं। ज्यादातर कॉन्वेंट स्कूल भिन्न-भिन्न फण्ड या अन्य चीजों के नाम पर पैसे वसूलते रहते हैं। पैसा न जमा करने पर वे बच्चों को बेइज्जत या दण्ड देने से नहीं चूकते और अविभावक बच्चों की वजह से चुपचाप इनकी मनमानी सहते रहते हैं। होटल या ढाबों में सबसे ज्यादा शोषण बाल श्रम का होता है। उन्हें सुबह जल्दी ही उठा कर काम पर लगा दिया जाता है और खाने के नाम पर -सूखा भोजन दिया जाता है। उनके पास तन ढकने के लिए ठीक से कपड़े भी नहीं होते हैं। उन्हें वेतन भी बहुत कम देते हैं। कभी कप या प्लेट टूट जाए तो उसकी पूर्ति वे उनके वेतन से काटकर करते हैं। उन्हें हर समय अपशब्द बोलकर अपमानित करने से भी नहीं चूकते हैं।

---

## 20.7 सामाजिक समस्यायें एवम उनके विभिन्न समाधान

---

भारत एक प्राचीन देश है, इसका समाज भी बहुत पुराना और जटिल प्रकृति का है। अपनी लम्बी ऐतिहासिक अवधि के दौरान, भारत बहुत से उतार-चढ़ावों और अप्रवासियों के आगमन का गवाह हैं; जैसे: आर्यों का आगमन, मुस्लिमों का आगमन आदि। ये लोग अपने साथ अपनी जातिय बहुरूपता और संस्कृति को लेकर आये साथ ही भारत की विविधता, समृद्धि व जीवन शक्ति में अपना योगदान दिया। लेकिन यही जटिलता अपने साथ बहुत सी सामाजिक समस्याओं और मुद्दों की जटिल प्रकृति को सामने लाती है। भारतीय समाज बहुत गहराई से धार्मिक विश्वासों से जुड़ा है। यहाँ विभिन्न धार्मिक विश्वासों को मानने वाले लोग रहते हैं जैसे- हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, पारसी आदि। सामाजिक समस्यायें भी लोगों की धार्मिक प्रथाओं और विश्वासों में निहित है। ये सामाजिक समस्यायें बहुत लम्बे समय से विकसित हुई हैं और अभी भी अलग अलग रूप में विद्यमान हैं। कुछ सामाजिक समस्यायें इस प्रकार हैं-

- I. गरीबी या निर्धनता की समस्या
- II. वंचन की समस्या

- III. जनसंख्या विस्फोट की समस्या
- IV. बेरोजगारी
- V. भिक्षावृत्ति
- VI. भ्रष्टाचार
- VII. अपराध
- VIII. बाल अपराध
- IX. महिलाओं पर अत्याचार
- X. बाल शोषण
- XI. वृद्धजनों की समस्यायें
- XII. एड्स
- XIII. पर्यावरण प्रदूषण
- XIV. निम्न आय वर्ग में बढ़ती कुंठा
- XV. यौन जनित समस्यायें
- XVI. आत्महत्या
- XVII. मादक पदार्थों का सेवन
- XVIII. आतंकवाद
- XIX. वेश्यावृत्ति
- XX. जातिवाद
- XXI. क्षेत्रवाद
- XXII. भाषावाद

पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित समस्यायें, विवाह विच्छेद, टूटते परिवार, बंधुआ मजदूर आदि जैसी अनेक सामाजिक समस्यायें हमारे समाज में व्याप्त हैं जिनका समाधान अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ये सभी समस्यायें हमारे देश के विकास से जुड़ी हैं। विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के प्रति मनुष्य में प्रारम्भ से ही चेतना रही और समय समय पर इनकी समाधान होता रहा है। ऐसी समस्याओं का समाधान निम्न रूपों में बाँट कर किया जा सकता है।

1. उपचारक विधियाँ

2. निरोधक विधियाँ

### 1. उपचारक विधियाँ

उपचारक विधियों में उन विधियों को सम्मिलित किया जाता है जिसमें सामाजिक समस्या के परिणामों या लक्षणों की पहचान करके उस समस्या को दूर करने की कोशिश की जाती है।

### 2. निरोधक विधियाँ

निरोधक विधि से तात्पर्य उन विधियों से होता है जिसमें सामाजिक समस्याओं के कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर करने के उपाय सोचे जाते हैं जैसे- गरीबी या निर्धनता से उत्पन्न तंगी की पहचान करके यदि इन समस्याओं को दूर करने का उपाय किया जाता है तो इसे उपचारक विधि कहा जायेगा परन्तु यदि इनके कारणों को ध्यान में रखकर उसे दूर करने का उपाय किया जाता है तो इसे निरोधक विधि कहा जाता है।

सामाजिक समस्याओं का समाधान हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

1. अधिकांश लोगों का मानना है कि अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली ही अधिकांश समस्याओं की जड़ है अतः उपयुक्त शिक्षा प्रणाली द्वारा अधिकांश समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।
2. कुछ सामाजिक समस्याएँ ऐसी हैं (जैसे निर्धनता, बेकारी आदि) जिनके समाधान के रास्ते में धन की कमी होने से अवरोध उत्पन्न हो जाता है। विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए पर्याप्त मात्रा में धन उपलब्ध हो।
3. सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए लोग खुलकर अपनी मनोवृत्ति चिन्तन भाव आदि की अभिव्यक्ति करें जिससे समस्या का समाधान ठीक तरीके से हो सके।
4. पुलिस और न्याय व्यवस्था में सुधार करके क्योंकि पुलिस एवं न्याय व्यवस्था की सामाजिक समस्याओं के समाधान में अहम् भूमिका होती है।
5. लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना अत्यन्त आवश्यक है।
6. मानसिकता में परिवर्तन- किसी वर्ग जाति व धर्म के प्रति लोगों में जो भेदभाव है उसके लिए उनकी मानसिकता में परिवर्तन करके हम काफी हद तक सामाजिक समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं।
7. मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका- विभिन्न सामाजिक समस्याओं में मीडिया को अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझनी चाहिए।
8. विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए कानून और समाज दोनों के समन्वित प्रयासों की आवश्यकता होती है। प्राचीन समस्याओं के समाधान में इन दोनों कारकों का समन्वित सहयोग रहा है।



9. सामाजिक समस्याओं के विरोध में अधिनियम को पारित करके सख्ती पूर्वक उसे समाज पर लागू किया जाए। समय समय पर उस अधिनियम से प्राप्त परिणामों का मूल्यांकन किया जाए और आवश्यकता पड़ने पर पूर्व में पारित अधिनियम में संशोधन किया जाए और नवीन परिस्थितियों के अनुरूप नये अधिनियम का निर्माण किया जाए।
10. सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए सरकार द्वारा जो कानून बनाये गये हैं उनका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।
11. सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए जो भी सरकारी व गैर सरकारी उल्लेखनीय कार्य करती है। उन्हें समय-समय पर पुरस्कृत करके प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
12. आर्थिक विकास होने से व्यक्ति की उपलब्धि में वृद्धि होती है तथा सामाजिक समस्याएँ घटती हैं।

---

## 20.8 सारांश

---

सामाजिक शोषण व सामाजिक समस्याओं के फलस्वरूप हिंसा की प्रवृत्ति जन्म लेती है ये समस्या सिर्फ भारत के लिए ही नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व के लिए चिन्ता का विषय है। सामाजिक शोषण हो या बाल श्रम, सामाजिक हिंसा हो या घरेलू हिंसा इन सभी समस्याओं के समाधान हेतु निरन्तर प्रयास होते रहे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि बढ़ती हुई हिंसा ने द्वार-द्वार भय और फिर दहशत की दस्तक दी है। इस पर काबू पाना सहज प्रक्रिया नहीं है अपने आप पर काबू पाने में मानव जिस हद तक सफल हो जायेगा हिंसा उसी हद तक रुक जायेगी। कभी-कभी इन हिंसक वारदातों के कारण व्यक्ति अनेक मानसिक रोगों का शिकार भी जो जाता है।

विभिन्न सामाजिक पहलुओं चाहे वह सामाजिक शोषण या सामाजिक हिंसा हो या घरेलू हिंसा, स्वयं हमारी जागरूकता और प्रयास द्वारा ही इस पर अंकुश लगा सकते हैं।

---

## 20.9 शब्दावली

---

स्वावलंबी: आत्म निर्भर

परिश्रमिक: वेतन

प्रताड़ना: पीड़ा कष्ट उत्पीड़न

---

## 20.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

---

किसी एक पर सही का निशान लगाएं –

1. कितने वर्ष तक की आयु वाले बच्चे बाल श्रम के अन्तर्गत आते हैं।

(अ) 12 वर्ष      (ब) 16 वर्ष

- (स) 14 वर्ष (द) 18 वर्ष
2. बाल श्रम का मुख्य कारण नहीं है।  
 (अ) गरीबी (ब) अच्छी शिक्षा  
 (स) अति जनसंख्या (द) सरकारी प्रयासों में कमी
3. बाल श्रम उन्मूलन का उपाय है -  
 (अ) जनसंख्या नियंत्रण (ब) अशिक्षा का दूर करना  
 (स) कठोर कानूनों का निर्माण (द) बाल विवाह को प्रोत्साहन
4. निम्नलिखित में से कौन सा कारण घरेलू हिंसा के अन्तर्गत आता है -  
 (अ) शारीरिक दुर्व्यवहार (ब) बेमेल विवाह  
 (स) पारिवारिक समन्वय (द) बाल विवाह को प्रोत्साहन
5. भारत में दहेज निरोधक अधिनियम कब पारित किया गया -  
 (अ) 1960 में (ब) 1961में  
 (स) 1962 (द) 1970में

उत्तर : 1) 14 वर्ष 2) अच्छी शिक्षा 3) उपर्युक्त सभी 4) शारीरिक दुर्व्यवहार 5) 1961 में

सत्य/असत्य बताइये-

- |   |              |
|---|--------------|
| 1. बाल श्रम का मुख्य कारण गरीबी है।   | (सत्य/असत्य) |
| 2. कार्य स्थल पर सबसे ज्यादा शोषण पुरुषों का होता है।                         | (सत्य/असत्य) |
| 3. सामाजिक क्रोध, भय, दहशत के फलस्वरूप हिंसा की उत्पत्ति होती है।             | (सत्य/असत्य) |
| 4. शोषण आर्थिक विषमता का परिणाम है।   | (सत्य/असत्य) |
| 5. घर के भीतर महिलाओं पर होने वाले अत्याचार सामाजिक हिंसा के अन्तर्गत आता है। | (सत्य/असत्य) |
| 6. अनुपयुक्त एवं दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली सामाजिक समस्याओं की जड़ हैं।         | (सत्य/असत्य) |
| 7. सामाजिक समस्याओं का समाधान में मीडिया की कोई भूमिका नहीं होती है।          | (सत्य/असत्य) |

8. सामाजिक समस्याओं का समाधान अपचारक और निरोधक विधि की सहायता से किया जाता है।  
(सत्य/असत्य)

---

### 20.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

1. डा0 अरुण कुमार सिंह- समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन मोती लाल बनारसी दस नई दिल्ली।
2. डा0 एम0एम0 लवानिया- भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र प्रकाशन रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर।
3. डा0 रविन्द्र नाथ मुखर्जी डा0 भरत अग्रवाल व्यावहारिक समाज शास्त्र विवेक प्रकाशन दिल्ली ।
4. <http://www.mediaforrights.org/infopack/hindi-infopack/551>
5. [www.google.com](http://www.google.com)

---

### 20.12 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. प्रमुख सामाजिक समस्याएँ क्या हैं?
2. घरेलू हिंसा क्या है?
3. कोई दो कार्य स्थल बताइये जहाँ बाल श्रम का सर्वाधिक शोषण होता है।
4. हिंसा का मुख्य कारण क्या है?
5. बाल श्रमिकों की संख्या में कमी लाने हेतु कुछ सुझाव दीजिए।
6. विभिन्न कार्य स्थलों पर होने वाले शोषण का वर्णन कीजिए।
7. विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए अपने कुछ सुझाव दीजिए।